ब्रह्मनेमिदत्त विरचित
श्रीपाल–चरित्र

शोध निर्देशिका

डॉ. महिमा बासल्ल
आचार्य (संस्कृत)
आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा राजस्थान,
जयपुर (राजस्थान)

शोधार्थी

आशीष जैन
संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राजस्थान)

संस्कृत विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

2023

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	पृ.सं.
प्राक्कथन	**i-iv**
1. प्रथम अध्याय – जैन चरितकाव्य तथा श्रीपालचरित्र : एक परिचय	**1–37**
1.1. जैन चरितकाव्य : परम्परा एवं परिचय	1
1.2. श्रीपालचरित्र : पाण्डुलिपियों का परिचय	6
1.3. श्रीपालचरित्र : दार्शनिक परिचय	12
1.4. श्रीपालचरित्र : साहित्यिक परिचय	22
1.5. श्रीपालचरित्र : पात्र परिचय	36
2. द्वितीय अध्याय– ब्रह्मनेमिदत्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**38–59**
2.1. व्यक्तित्व	38
2.2. कृतित्व	45
3. तृतीय अध्याय – श्रीपालचरित्र : कथावस्तु, मूलस्रोत, परम्परा एवं अन्य साहित्य	**60–82**
3.1. कथावस्तु	60
3.2. मूलस्रोत	72
3.3. परम्परा एवं श्रीपाल विषयक अन्य साहित्य	75
4. चतुर्थ अध्याय – पाण्डुलिपि सम्पादन की आवश्यकता तथा पाठभेदों की समीक्षा	**83–108**
4.1. पाण्डुलिपि सम्पादन की आवश्यकता	83
4.2. पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठभेदों की समीक्षा	91
5. पंचम अध्याय – श्रीपालचरित्र (पाठभेद सहित मूल)	**109–252**
5.1. प्रथमोऽधिकारः	109

5.2. द्वितीयोऽधिकारः	126
5.3. तृतीयोऽधिकारः	140
5.4. चतुर्थोऽधिकारः	162
5.5. पञ्चमोऽधिकारः	176
5.6. षष्ठमोऽधिकारः	193
5.7. सप्तमोऽधिकारः	208
5.8. अष्टमोऽधिकारः	216
5.9. नवमोऽधिकारः	238
परिशिष्ट	**253—295**
• सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	253
• सूक्त्यनुक्रमणी	261
• श्लोकानुक्रमणी	265
• पाण्डुलिपि छायाचित्र	292

प्रथम अध्याय

जैन चरितकाव्य तथा श्रीपालचरित्र : एक परिचय

प्रथम अध्याय

जैन चरितकाव्य तथा श्रीपालचरित्र : एक परिचय

विश्व वाङ्मय परम्परा में भारतीय वाङ्मय अद्वितीय, परिपूर्ण एवं अक्षुण्ण रसामृत का अनवरत प्रवाहमान पारावार है। यह विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध परम्परा रही है। सम्पूर्ण विश्व में यही एक ऐसी परम्परा रही जिसने समग्र जगति को सर्वप्रथम अध्यात्म और दार्शनिकता के दिग्दर्शन कराये। भारतीय वाङ्मय में अनेक प्रकार का साहित्य एवं भाषाएँ प्रवाहमान हैं। जिसमें संस्कृत साहित्य व उसकी भाषा का अपना एक पृथक् व गौरवपूर्ण स्थान है।

यह वही साहित्य है जो **न हिज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते**[1] इत्यादि कथन से ज्ञान को पूज्यत्व प्रदान करता है। **अयं निजः परोवेति** इस दुराग्रह को त्यागकर **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना से युक्त विश्वक्षेम की आकांक्षा करता है तथा **पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्**[2] इस प्रकार के कथनपूर्वक पूर्वाग्रह को छोड़कर, उन्मुक्त दृष्टिकोण के साथ मनोरंजन मात्र को छोड़कर, चतुर्वर्ग फल प्राप्ति और आध्यात्मिक प्रयोजन को साधता है।

1.1 जैन चरितकाव्य : परम्परा एवं परिचय

जिस साहित्य सन्दोह में भारतीय संस्कृति के अंग–उपांगों का बिम्बन एवं प्रतिबिम्बन हुआ है उसमें पौराणिक वाङ्मय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। पुराण भारतीय इतिहास के अजस्र स्रोत हैं इनमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पक्षों की सामग्री उपलब्ध होती है। इस कारण से पुराणों को भारतीय संस्कृति के विश्वकोश की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

---

[1]श्रीमद्भागवद्गीता 4.38
[2]मालविकाग्निमित्रम्1.2

भारतीय साहित्य परम्परा का पल्लवन एवं सम्पोषण समग्र भारतीय दर्शनों ने किया है। जिसमें जैनदर्शन का स्थान अग्रगण्य है। जैनदर्शन समस्त भारतीय दर्शनों में एक विशिष्ट दर्शन है जिसका साहित्य सृजन मुख्यतया दो भाषाओं में हुआ है संस्कृत और प्राकृत। इस बहुआयामी दर्शन में जीव–पुद्गल आदि छः द्रव्यों की कारण–कार्य सहित तर्काधारित व्यवस्था (व्याख्या) की गई है। विश्व के अनाद्यनन्त स्वरुप, वस्तु के स्वभाव और धर्म को निरूपित करनेवाला जैनधर्म भी अनाद्यनन्त है। इसका प्रतिपादन जैनदर्शन में तीर्थंकर संज्ञा को प्राप्त महापुरुषों द्वारा समय एवं परिस्थित्यानुसार किया जाता रहा है।

प्रवर्तमान युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर थे; जिनके उपदेश को परवर्ती आचार्यों ने चार अनुयोगों/भागों में विभक्त किया – चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग एवं प्रथमानुयोग। इसमें चरणानुयोग का सम्बन्ध आचरण, द्रव्यानुयोग का सम्बन्ध तत्त्वज्ञान एवं अनुभूति, करणानुयोग का सम्बन्ध गणितात्मक कर्म–सिद्धान्त एवं विश्वदर्शन तथा प्रथमानुयोग का सम्बन्ध तीर्थंकरों एवं अन्य शलाकापुरुषों (महापुरुषों) के जीवनचरित से है।

प्रथमानुयोग में ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र का वर्णन है जिसका उद्देश्य महापुरुषों के चरित्र के माध्यम से पुण्य और पाप के फल को प्रतिपादित कर संसारी जीवों को धर्ममार्ग में लगाना है। महापुरुषों की भाँति हमारा जीवन भी धार्मिक, सात्विक, नैतिक, संयमित और व्यावहारिक हो यही पुराणों का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

भारतीय साहित्य के इतिहास में परम्परागत पुराणों के समानान्तर जैन पुराणों की एक बृहद् और अविच्छिन्न धारा दृष्टिगोचर होती है। जिसमें तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण सम्बन्धित इतिवृत का वर्णन समाविष्ट है।

जैन पुराण के भेद

जैन पुराणों के अनुसार पुराण के दो भेद प्राप्त होते हैं – पुराण और महापुराण।

पुराण – जिसमें किसी एक शलाकापुरुष के चरित का वर्णन हो उसे पुराण कहते हैं।

महापुराण– जिसमें त्रेसठ शलाकापुरुषों के चरित का वर्णन हो उसे महापुराण कहते हैं।

24 तीर्थंकर, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र और 12 चक्रवर्ती इन त्रेसठ महापुरुषों की जैनसाहित्य में **शलाका** संज्ञा है। शलाका शब्द प्राचीन काल में प्रमाण बोधक वस्तु के लिए प्रयुक्त होता था। अतएव शलाकापुरुष से तात्पर्य उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों से है, जो समाज में प्रमाण माने जाते थे, गणमान्य थे, जिनका समाज में रहना अनिवार्य था।[1]

पुराणों में सत्पुरुषों के चरित्र सम्बन्धी कथावस्तु का वर्णन होने से इन्हें चरित्र या चरित भी कहा जाता है। महापुरुषों से सम्बन्धित इन ग्रन्थों की दिगम्बर परम्परा में पुराण और चरित्र दोनों संज्ञायें प्राप्त हैं तथा श्वेताम्बर परम्परा में चरित्र या चरित नाम से अभिहित है।[2] जैन चरितसाहित्य की विषयवस्तु वस्तुतः विशाल है। जैन चरितकाव्यों में प्रायः 63 शलाका पुरुष और 24 कामदेव तथा कतिपय अन्य पुण्यशाली महापुरुषों का वर्णन मिलता है।

इनके अतिरिक्त चरितसाहित्य में काल्पनिक पुरुषों, अनेक नरेशों के विविध प्रकार के आख्यान, साधु–साध्वियों, राजा–रानियों, ब्राह्मण और श्रमणों, सेठ–सेठानियों, धनिक तथा दरिद्रों, चोर और जुआरियों, धूर्त और गणिकाओं तथा विभिन्न प्रकार के मानवों को उद्देश्य कर लिखे गये ग्रन्थ हैं।[3]

काव्य निर्माण की दृष्टि से संस्कृत के आद्य जैन कवि समन्तभद्र हैं, जिन्होंने द्वितीय शताब्दी में स्तुति–काव्य का सृजन कर जैनों के मध्य संस्कृतकाव्य की परम्परा का शुभारम्भ किया। महाभारत और रामायण के कथानक वैदिक सम्प्रदाय की तरह इतर सम्प्रदायों को भी प्रिय रहे हैं। अनेक

[1]पार्श्वनाथ चरित्र का समीक्षात्मक अध्ययन पृष्ठ संख्या – 1
[2]ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 491
[3]पार्श्वनाथ चरित्र का समीक्षात्मक अध्ययन पृष्ठ संख्या –1

कवियों ने अपने–अपने सम्प्रदाय (परम्परा प्राप्त सिद्धान्त) की मान्यताओं के अनुरूप रामायण और महाभारत को आश्रय मानकर बहुधा काव्यों की रचना की है।

जैन साहित्य में महापुरुषों के चरित को काव्यात्मक शैली में लिखने का शुभारम्भ प्राकृत भाषा में निबद्ध विमलसूरि (प्रथम शताब्दी) के 'पउमचरियं' से होता है, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सम्पूर्ण जीवन परिचय वर्णित है।[1] जैन परम्परा में राम का नाम 'पद्म' भी उल्लिखित है। इसकी शैली रामायण और महाभारत जैसी है। संस्कृत भाषा में भी जैन चरितकाव्यों का प्रारम्भ प्राकृत भाषा की तरह श्रीराम के चरित के साथ हुआ है। 'आचार्य रविषेण' (सप्तम शताब्दी) का 'पद्मपुराण' संस्कृत भाषा में निबद्ध आद्य जैन चरितकाव्य है।

अपभ्रंश भाषा के प्रथम महाकवि होने का श्रेय 'स्वयंभू' (अष्टम शताब्दी) को प्राप्त है। राहुल सांकृत्यायन जैसे महारथियों ने स्वयंभू को हिन्दी का प्रथम महाकवि और उनके 'पउमचरिउ' को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया है।[2]

डॉ. जयकुमार जैन ने जैन चरितकाव्यों के आन्तरिक अनुशीलन के आधार पर कुछ विशेषताओं का निर्देश किया है,[3] जो इस प्रकार है–

1. जैन चरितकाव्यों में नायक, प्रतिनायक और उनसे सम्बद्ध प्रमुख व्यक्तियों के अनेक जन्म–जन्मान्तरों का वर्णन किया जाता है। इनमें नायक को उत्तरोत्तर उन्नत और प्रतिनायक को जन्म–जन्मान्तर में नायक से शत्रुता करते हुए दिखाया जाता है।

   अन्ततः प्रतिनायक नायक के समक्ष अपनी हार स्वीकार करता है और नायक के मार्ग पर चलने लगता है, किन्तु ऐतिहासिक चरितकाव्यों में नायक के जन्म–जन्मान्तर का वर्णन नहीं किया जाता है।

---

[1]जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ संख्या 87
[2]ब्र. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ संख्या 413
[3]पार्श्वनाथ चरित्र का समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 45

2. इन काव्यों का आधार प्रायः जैन पौराणिक आख्यान हैं। अवान्तर कथानकों में अनेक काल्पनिक या लोकप्रसिद्ध कथाओं का भी समावेश हुआ है, परन्तु ऐतिहासिक चरितकाव्यों में समय, स्थान आदि के निश्चित तथ्यों को प्रकट करने के कारण कल्पना को अधिक स्थान नहीं मिल सका है।

3. जैन चरितकाव्यों का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। अतएव इन काव्यों में भोग पर त्याग की विजय दिखलायी जाती है ।

4. भारत का प्राचीन साहित्य धार्मिक एवं दार्शनिक भावनाओं से ओतप्रोत पाया जाता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य इसका साक्षी है। अतएव इन काव्यों में भी प्रसंगतः दार्शनिक एवं धार्मिक तत्त्वों का समावेश पाया जाता है। इसी कारण कहीं–कहीं कोई काव्य नीरस भी लगने लगता है।

5. जैन चरितकाव्यों में प्रायः अंगीरस शान्त है। किन्तु शृंगार रस के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों पक्षों एवं अन्य सभी रसों का यथेष्ट वर्णन इन काव्यों में हुआ है।

6. जैन चरितकाव्यों में प्रायः ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्तियाँ लिखी गई हैं। इन प्रशस्तियों में ग्रन्थ रचना का समय, तत्कालीन राजा एवं अन्य ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया गया है। इन ग्रन्थों में मंगलाचरण में भी कहीं–कहीं पूर्व कवियों की प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं और कहीं–कहीं तो यह कालानुक्रमिक भी है। अतएव जैन चरितकाव्यों के मंगलाचरण और अन्तिम प्रशस्तिपद्यों का ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा ही महत्त्व है।

इसी परम्परा में मेरे द्वारा चयनित शोध विषय श्रीपालचरित्र भी उपर्युक्त विशेषताओं से सम्पन्न होने से भारतीय संस्कृत साहित्य की गरिमा को विशिष्टता प्रदान करता है। श्रीपालचरित्र के कर्ता नन्दिसंघ के भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य 'ब्रह्मनेमिदत्त' संस्कृत भाषा के श्रेष्ठ कवि हैं जिनकी नेमिनाथ पुराण, धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचारादि अनेक रचनाएँ हैं। इनका स्थितिकाल लगभग सं. 1575–85 विक्रमी उल्लिखित है।

श्रीपालचरित्र काव्य के नायक चम्पापुर नरेश अरिदमन के पुत्र 'श्रीपाल' हैं। काव्य के प्रारम्भ में कवि ने मंगलाचरण के रूप में जिनेन्द्र देव को नमस्कार करते हुए श्रीपालचरित्र को कहने की प्रतिज्ञा की है तत्पश्चात् चतुर्विंशति तीर्थंकर की स्तुति की है–

नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशार्चितक्रमम्।
श्रीपालचरितं वक्ष्ये सिद्धचक्रार्चनोत्तमम् ।।1.1।।

यह काव्य नव अध्यायों में विभक्त तथा अध्यायान्त में छन्द परिवर्तन से युक्त मुख्यतया अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है।

1.2 श्रीपालचरित्र : सम्पादन हेतु प्राप्त पाण्डुलिपियों का परिचय –

श्रीपालचरित्र को अपने शोध का विषय चुनने के पश्चात् उसकी पाण्डुलिपियों को प्राप्त करना अत्यन्त महत्वपूर्ण, आवश्यक एवं चुनौतीपूर्ण कार्य था। राजस्थान के जयपुर में पाण्डुलिपियों का ना केवल भण्डार है, अपितु पाण्डुलिपियों के संरक्षण व संकलन का भी अद्भुत कार्य किया जाता है।

श्रीपालचरित्र की पाण्डुलिपियों के अन्वेषण में ज्ञात हुआ की जयपुर में भट्टारक जी की जैन नसियाँ नामक जैन मन्दिर के संकुल में पाण्डुलिपियों के संरक्षण का कार्य होता है जहाँ अनेक ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों की प्राप्ति हो सकती हैं। एतदर्थ वहाँ के सूचीपत्र में पाण्डुलिपि को खोजने का प्रयास किया। इसीप्रकार जयपुर में ही अन्य जगह भी पाण्डुलिपियों को खोजने का प्रयास किया। फलस्वरूप श्रीपालचरित्र की पाण्डुलिपि की विभिन्न स्थानों से तीन प्रतियाँ प्राप्त हुईं।

यद्यपि ब्रह्मनेमिदत्त विरचित मूल पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं हो सकी, न ही प्राप्त पाण्डुलिपि में किसी प्रतिलिपिकार ने यह उल्लेख किया है कि उनकी आधारभूत पाण्डुलिपि क्या थी तथापि पाण्डुलिपि की प्राप्त तीन प्रतियों के माध्यम

से ग्रन्थ का सम्पादन कार्य मेरे द्वारा किया गया है। उक्त प्राप्त पाण्डुलिपियों का परिचय निम्नलिखित है –

क प्रति का परिचय –

ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा संस्कृत भाषा में रचित श्रीपालचरित्र पद्यात्मक शैली में लिखी गई रचना है। मुझे प्राप्त तीन प्रतियों में से यह प्रति जयपुर स्थित श्री दिगम्बर जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर से प्राप्त हुई। इस प्रति की क्रम संख्या 749 एवं वेष्टन संख्या 699 है तथा इस पर प्रतिलिपि का काल 1846 वि. सम्वत् प्राप्त होता है। प्रतिलिपिकार का नामोल्लेख प्रति में नही है। यह प्रति कागज पर अंकित है तथा इसका आकार 28X13 से.मी. है। कुल 66 (66X2 =132) पत्रों में पूर्ण इस प्रति में कुल 1471 श्लोक हैं। प्रत्येक पत्र में लगभग 10 पंक्तियाँ हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में औसतन 37 शब्द हैं।

प्रति की विशेषताएँ निम्न हैं–

1. यद्यपि यह पाण्डुलिपि जीर्ण अवस्था में है। कहीं–कहीं पृष्ठ भी फटे हुए हैं, तथापि सरलता से पठनीय है।
2. पाण्डुलिपि के पत्रों का वर्ण हल्का भूरा है। लेखन में कृष्ण वर्ण की स्याही का प्रयोग किया गया है। पृष्ठ के दाहिनीं ओर पृष्ठ संख्या लिखी गयी है।
3. प्रारम्भ के अधिकार व्यवस्थित एवं सुसज्जित हैं, जिसमें श्लोक संख्या और पूर्णविरामादि के लिये लाल रंग की स्याही का प्रयोग है, परन्तु बाद में सब कुछ कृष्णवर्ण की स्याही से ही लिखा है।
4. अशुद्ध वर्णों/अक्षरों और मात्राओं को पीला–सा पदार्थ लगाकर मिटाया गया है कहीं–कहीं पर अशुद्ध पंक्ति आदि पर काली स्याही से मोटी रेखा खींची गई है।

प्रति का प्रारम्भ इस प्रकार है –

> **ऊं नमः सिद्धेभ्यः**
> **नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशार्चितक्रमम् ।**
> **श्रीपालचरितं वक्ष्ये सिद्धचक्रार्चनोत्तमम् ।।1।।**

प्रति का अन्त इस प्रकार है –

प्रशस्ति– सम्वत् 1846 मासोत्तममासे मांगशिरमासे शुक्लपक्षे 13 सोमवारे ग्रन्थ सम्पूर्णः समाप्ताः।

ख प्रति का परिचय–

ख प्रति की प्राप्ति श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ जी (खोनियान) जयपुर से हुई है। प्रति के वेष्टन पत्र पर इसकी वेष्टन संख्या 8 अंकित है। प्रतिलिपि का काल संवत् 1826 है। यह प्रति आकार में 31X14 से.मी. है। यहप्रति कुल 1469 श्लोकों में निबद्ध है। कुल 44 (44X2=88) पत्रों में पूर्ण यह प्रति आंशिक जीर्ण होते हुये भी स्पष्टतया पठनीय है। इस प्रति के प्रतिलिपिकार श्री सवाईराम है। प्रत्येक पत्र में 13 पंक्तियाँ हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में औसतन 46 शब्द हैं। यह प्रति कागज में लिखित है। अत्यन्त सुन्दर अक्षरों में लिखी होने से इस प्रति को दूसरे स्थान पर रखा गया।

प्रति की विशेषताएँ निम्न हैं–

1. काली स्याही में लिखी गई इस प्रति में श्लोक संख्या और अधिकारान्त पुष्पिकावाक्य भी काली स्याही से ही लिखा गया है, जिसे विशेष रंग से प्रकाशित किया गया है।
2. पाण्डुलिपि के पत्र का वर्ण हल्का भूरा है।
3. पाण्डुलिपि में भूल वश या भ्रम वश छूटे हुए अक्षरों, शब्दों और श्लोक की पंक्तियों को हंसपाद (^) देकर पृष्ठ के ऊपर–नीचे या हाशिये पर लिखा गया है यदि छूटा हुआ अंश ऊपर का है तो ऊपरी तथा नीचे का है तो

नीचे के हिस्से में लिखा गया है। वहाँ सन्दर्भ सूचक पंक्ति की संख्या अंकित कर दी गयी है जिसके साथ धन (+) चिन्ह भी अंकित किया गया है।

4. हाशिये पर व्याकरण सम्बन्धी सुधार अथवा व्याख्यापरक अर्थ भी कहीं–कहीं परिलक्षित होते हैं, वहाँ पर बराबर (=) का चिह्न लगाया गया है।
5. इस प्रति का एक पृष्ठ अनुपलब्ध होने के कारण से प्रथम अधिकार के श्लोक संख्या 18–36 तक के श्लोक अनुपलब्ध हैं।
6. पाण्डुलिपि के प्रत्येक पृष्ठ पर ग्रन्थ का नाम **श्रीपाल च.** और हाशिये पर दोनों तरफ पृष्ठ संख्या लिखी हुई है।
7. प्रति में अक्षरों की लिखावट सघन है और कहीं–कहीं पर शब्दों को पढ़ने में आँखों पर बहुत जोर देना पड़ता है।

प्रति का प्रारम्भ इस प्रकार है –

नमो वीतरागाय नमः
नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशार्चितक्रमं ।
श्रीपालचरितं बक्ष्ये सिद्धचक्रार्चनोत्तमं ।।1।।

प्रति का अन्त इस प्रकार है –

प्रशस्ति – सम्वत् 1826 मितिमाह सुदि 8 शनीसरवारे पंडितोत्म पंडितजी श्रीचोषचन्द जी तत्सिष्य पंडिततोत्म पंडितजी श्रीरायचन्द्रजी तत्सिष्य सेवक सवाईरामेण। इदं पुस्तकं लिपी कृतं। शुभं भवतु।

ग प्रति का परिचय –

ग प्रति की प्राप्ति श्री दिगम्बर जैन भट्टारक जी की नसिया में स्थापित श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान जयपुर से हुई है। इसका मूल प्राप्ति स्थल आमेर शास्त्र भण्डार है। उक्त प्रति की वेष्टन संख्या 1285 है। प्रतिलिपि का काल संवत् 1714 प्राप्त होता है। जीर्ण अवस्था में होते हुये भी यह प्रति पूर्ण है। 133 पृष्ठों में पूर्ण इस प्रति में कुल 1469 श्लोक हैं। प्रति का आकार 32X15 से.मी. है। प्रत्येक पत्र में 8 पंक्तियाँ हैं

तथा प्रत्येक पंक्ति में लगभग 28 शब्द लिखे गये हैं। इस प्रति के लिपिकार ब्रह्म कल्याण सागर हैं।

प्रति की विशेषताएँ निम्न हैं–

1. कागज पर अंकित यह पाण्डुलिपि हल्के भूरे रंग की है।
2. काली स्याही में लिखी गई इस प्रति में श्लोक संख्या और अधिकारान्त पुष्पिकावाक्य को लाल रंग से लिखा गया है।
3. प्रत्येक पृष्ठ के दायीं ओर पृष्ठ संख्या लिखी गयी है।
4. यद्यपि क और ख प्रति से अपेक्षाकृत स्पष्टता और सरलता से पठनीय है तथापि इसमें अशुद्धियों का बाहुल्य होने से इस प्रति को ग प्रति नाम देकर तीसरे स्थान पर रखा गया है।

प्रति का प्रारम्भ इस प्रकार है –

श्री वीतरागाय नमः
नत्वा श्रीमज्जिनाधीसं सुराधीशार्चितक्रमं।
श्रीपालचरितं वक्षे सिद्धचक्रार्चनोत्तमं।।1।।

ग्रंथ के अन्त में दीर्घ प्रशस्ति दी गयी है जो कि निम्न प्रकार है –

श्री मद्गोतान्वये यो गोत्रे गोयल्ले मण्डितः।
सा श्री रामदासाख्यो तत्र नूजो गुनाग्रणी।।1।।

सुरापगादि तीर्थेषु स्नानेषु यः सदा रतः।
सः श्रीमान् क्षेमदासोभूत् क्षमादिगुणसागरः।।2।।

हरेरर्चा गुरोः भक्तिः दानतत्परमानसः।
नृपानां ह्रदयी द्वाती सौ धीयया सुखावहा।।3।।
महागुनवती रम्या सुचरित्रा पतिव्रता।
क्षेमश्री नाम तस्यासीत् भार्या लावन्य सुन्दरी।।4।।

तयोः पुत्राः समुत्पन्नाः त्रयः रत्नत्रयोपमा।
निज वृत्तेषु ये लीना भूय सान्मानितः सदा।।5।।

जयेष्टोति च गुणश्रेष्ठो धर्मज्ञो धर्म वत्सलः।
निजाचारेषु यो लीनो सः श्री केशवनामभाक्।।6।।

प्रिद्वांगी कोमला पीमानसेकरुणान्विता।
दानेन कल्पवल्ली वा तद्रा माराजमत्यपि।।7।।

तयोः पुत्र वासुदेवः गुणज्ञो गुण सागरः।
तत्भार्या गुणग्रामा नाम्ना परिमलदेसती ।।8।।

शीलवर्त्ति तपः स्नेह द्वौकुले द्योति दीपिका।।9।।

विप्लुदासः द्वितीयः स्यात् विप्लोर्भक्तितत्परः।
तद्मामातूर मत्याख्यः शीलादि गुणमण्डिताः।।10।।

तयोः पुत्रो वभूवासौ श्रीमच्चहर नामभाक्।
कुलांगणा महागाणैः पयः पाणैश्च वर्द्धितः।।11।।

त्रितीयस्तु महाविज्ञो गुणज्ञो गुणभूषणः।
श्रीमन्मोहनदासाख्यो विनायादिगुणलङ्कृतः।।12।।

तद्रामागुण धामश्च सुन्दरि शुभलक्षणः।
तयोः सूनुर्वभूवासौ देवीदास गुणाधिकः ।।13।।

तद्मार्या च भवेत्साध्वी नाम्ना भोगमती मता।
तयो पुत्रौ समुत्पन्नौ बाललीला विराजितौ ।।14।।

प्रथमः सुतानन्दा द्वितीयो हेमराज भाक्।
शुभपुण्यफलं पुत्राः पुण्यात् किं किं जायते ।।15।।

चक्रे महोत्सवं रम्यं जगज्जनमनः प्रियं।
सत्यं सत्पुण्यसम्प्राप्तौ किं न कुर्वन्ति साधवः ।।16।।

एतेषां मध्ये शीलतोयतरंगिणी दानगुणचेलनाकल्पवल्लीवतूरमृता इदं पुस्तकं श्रीपालनामचरितं सम्पूर्णम् ।। भगवा ।।

सम्वत् 1714 वर्षे श्रावण मासे शुक्लपक्षे पार्वणी द्वितीया दिवसे भृगुवासरे श्रीमत्काष्टा संघे माथुरगच्छे भ. आचार्य श्री श्री श्री श्री केशवसेनजी तत्पट्टे

भट्टारक श्रीदेवेन्द्रकीर्ति जी आचार्य श्री श्री श्री श्री जशकीर्ति जी ब्रह्म श्री पद्मसार जी ब्र. श्री दयासागर जी ब्र. श्री कल्याणसागरेण इदं पुस्तकं लिषितं।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृसं लिषतं मया ।
यदि सुधमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते।।

1.3 श्रीपालचरित्र : दार्शनिक परिचय

मूलतः नैतिक, धार्मिक, सामजिक और व्यावहारिक आचरण की शिक्षा प्रदान करना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। प्रकृत ग्रन्थ में हृदयी जनों के चित्त में उत्साह, आनन्द, रुचि, उल्लास और धार्मिक विश्वास का संचार कर देने वाला कथानक वर्णित है। यद्यपि यह ग्रन्थ दार्शनिक तत्त्वों का प्रतिपादक नहीं है तथापि इसमें अनेक दार्शनिक तत्त्वों का प्रतिपादन अनायास ही हो गया है, जो कि आत्मोत्थान के इच्छुक भव्य जीवों के लिए प्रेरक एवं अनुकरणीय है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से इसमें षट् द्रव्य, कर्मसिद्धान्त, रत्नत्रय, गुणस्थान एवं प्रायोगिक दृष्टि से श्रावक के बारह व्रत, दाता के गुण, 28 मूलगुण आदि अनेक विषयों का सारगर्भित वर्णन है। इन्हीं का संक्षिप्त परिचय यहाँ दृष्टव्य है–

प्रथम अध्याय में भगवान महावीर की दिव्यध्वनि का वर्णन है। समवशरण में तीर्थंकर प्रभु द्वारा श्रावकोत्तम राजा श्रेणिक एवं अन्य भव्य जीवों के लिए षट् द्रव्य, सप्त तत्त्वादि का स्वरुप वर्णित किया गया है –

1. षट् द्रव्य स्वरूप –

षट् द्रव्यात्मक लोक अपनी अनाद्यनन्त सत्ता लिये हुए प्रवर्तमान है जिसमें प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव और लक्षण से युक्त हैं। इनका स्वरूप आचार्य उमास्वामी ने कहा है– **अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः। द्रव्याणि। जीवाश्च। कालश्च।**[1]

---

[1] तत्त्वार्थसूत्र 5.1–3,39

इसी स्वरुप को ब्रह्मनेमिदत्त ने इस काव्य में प्रस्तुत किया है –

निश्चयाज्जीवितः पूर्वं जीवतीह पुमानयम्।
जीविष्यतीति जीवोऽसौ प्रोच्यते मुनिपुङ्गवैः।।

चेतना लक्षणो जीवः सोपयोगद्वयोऽनिशम्।
प्रोक्तः सोऽपि द्विधा जीवः संसारी मुक्त एव च।।

संसारे संसरन्नित्यमष्टकर्मारिवेष्टितः।
कर्ता भोक्ता स संसारी कर्मणां भवकारिणाम्।।

सोऽपि संसारिको द्वेधा भव्याभव्यप्रभेदतः।
रत्नत्रयोचितो भव्यस्तद्विपक्षः परोमतः।।

गत्यादि मार्गणाभेदैर्गुणस्थानैः सभूतकैः।
नानाविधो जिनेन्द्रेण प्रोक्तोऽसौ भुवनेशिना।।

मुक्तो जीवो भवेत्सिद्धो निराबाधो निरञ्जनः।
दुष्टाष्टकर्मनिर्मुक्तः त्रैलोक्यशिखरे स्थितः।।[1]

अजीवः पुद्गलः प्रोक्तः षट्प्रकारस्वभावतः।
तद्भेदाश्च परेः स्पर्शरसगन्धाः सवर्णकाः ।।

पृथ्वी जलं तथा छाया चतुःख विषयस्तथा ।
कर्माणुः परमाणुश्च षड्भेदाः पुद्गलेष्वतः।।

धर्मद्रव्यं तयोर्नूनं गतिकारणलक्षणम्।
हठान्न प्रेरकं लोके मत्स्यानां च जलं यथा ।।

अधर्मस्तु स्थितेर्हेतुर्जीवपुद्गलयोर्मतः।
तरुच्छायेव पान्थानां न तयोः स्थायिकः हठात्।।

कालाणवो मता नित्यं नवजीर्णत्वकारकाः।
रत्नराशिरिव प्रोच्चैः पृथग्भूता जगत्त्रये ।।

आकाशोऽप्यवकाशस्य दाता तेषां प्रकीर्तितः।
स्वस्वभावेन पञ्चानां जीवादीनां निरन्तरम् ।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.133–138

मूर्तिमान् पुद्गलस्तेषु परे मूर्तिविवर्जिताः।
धर्माधर्मनभः कालाः सजीवा जिनभाषिताः ।।
जीवपुद्गलकौ प्रौक्तौ कुर्वन्तौ च परिणतिम् ।
धर्माधर्मनभः कालास्तिष्ठन्त्येव स्वभावतः ।।

इत्यादिकं जगत्स्वामी विस्तरेण तदा जिनः ।
भव्यानां भाषयामास प्रोच्चैः षड्द्रव्यसङ्ग्रहम् ।।[1]

2. कर्म सिद्धान्त –

अपने द्वारा किये गए कर्म ही जीव को सुख–दुःख के कारण हैं, कोई अन्य द्रव्य नहीं, ऐसा जैनदर्शन का कर्म सिद्धान्त है। आचार्य अमृतचन्द्र देव ने कहा है –

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय–
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य,
कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।।[2]

उक्त इसी सिद्धान्त को ब्रह्मनेमिदत्त ने प्रायोगिक दृष्टि से श्रीपालचरित्र में वर्णित किया है। इस चरित्र का मूल उद्देश्य भी इसी सिद्धान्त को प्रतिपादित करना है। उज्जयिनी नगरी के राजा प्रजापाल पुत्री मदनसुन्दरी को अपने लिए वर माँगने को कहते हैं, तब पुत्री मदनसुन्दरी पिता के समक्ष कर्म सम्बन्धी विचार रखती है।

अतः पूर्वं प्रमाणं मे त्वमेवात्र विचक्षणः।
पश्चान्मे कर्मपाकेन यद्भावीह भविष्यति।।

पुनर्जैनमते दक्षा जगौ मदनसुन्दरी।
जन्तूनां कर्मणा सर्वं भवेद्देव! शुभाशुभम्।।

शुभाशुभं भवत्युच्चैर्भो माता! कर्मणा कृतम्।
जन्तोऽस्मान्ममैवात्र शरण्यं जिनशासनम् ।।[3]

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.139,140,143–149
[2]समयसार कलश 168
[3]श्रीपालचरित्र 2.89,108,120

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य[1] ऐसे शुभाशुभ परिणाम में पुण्य–पाप का निरूपण आचार्य देव ने किया है उसी के अनुसार इस ग्रन्थ में भी कोढ़ी पति से ब्याह दिए जाने पर शोक से व्याकुल अपनी माँ को समझाती हुई मैना सुन्दरी कहती है कि –

शुभाशुभं भवेन्नित्यं जन्तूनां कर्मपाकतः।
किं करोत्यथवा लोके पितामाता च बान्धवाः।।[2]

इसी बात को सुगुप्ताचार्य मुनि भी मैना सुन्दरी को उपदेश देते हुए कहते हैं–

मुनिर्जगाद भो पुत्री यत्त्वया सुखदुःखयोः।
कर्मबीजं कृतं तच्च सम्यक्त्वं स्थापितं त्वया।।[3]

जीव स्वोपार्जित कर्मफल को ही भोगता है अन्यकृत नहीं। यदि जीव दूसरों द्वारा किए हुए कर्मों के फल को भोगे तो स्वयं किये कर्म निष्फल हो जायेगें। अमितगति आचार्य ने कहा है–

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ।।[4]

राजा श्रीपाल के समुद्र में गिरने पर अपने पति से बिछुड़ी मदनमंजूषा अपने पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के सम्बन्ध में विचार करती है –

हा मया मुनिं सन्तापः कृतो वा पूर्वजन्मनि।
तेन पापेन मे नाथ! वियोगस्तेऽजनि ध्रुवम् ।।

---

[1]तत्त्वार्थसूत्र 6.3
[2]श्रीपालचरित्र 2.131
[3]श्रीपालचरित्र 3.15
[4]भावना द्वात्रिंशतिका 30,31

किं वा कस्याश्च कामिन्या वियोगो विहितो मया।
मिथ्याभावेन वा दग्धं काननं वह्निना घनम्।।[1]

3. धर्म का स्वरूप –

भारतीय दर्शन साहित्य में चतुर्वर्ग प्राप्ति का उपदेश सर्वत्र है। अर्थ और काम के निरूपण के साथ धर्म और मोक्ष की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य बताया है। जैनदर्शन में तो धर्म और मोक्ष को ही मुख्य पुरुषार्थ कहा है। जिनागम में धर्म शब्द को अनेक तरह से व्याख्यायित एवं प्ररुपित किया गया है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है कि–

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।।[2]

इस काव्य में भी कवि ने अनेक जगह धर्म धारण करने की प्रेरणा देते हुये धर्म का स्वरूप वर्णित किया है। ग्रन्थकार ने धर्म के स्वरूप के निरूपण में आचार्य समन्तभद्र का ही अनुसरण किया है–

संसारसागरान्नूनं समुद्धृत्य सदा नरान्।
योधरत्येव सत्सौख्ये सद्धर्मो जिनभाषितः।।[3]

4. रत्नत्रय–

रत्नत्रय ही सच्चे सुख का एक मात्र उपाय है ऐसा जिनागम में वर्णित है और वह रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है। आचार्य उमास्वामी कहते हैं– **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।**[4] अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग है। इसी मोक्षमार्ग का विस्तृत वर्णन श्रीपालचरित्र के तृतीय अधिकार में किया गया है –

देवोऽर्हन् दोषनिर्मुक्तो धर्मोऽयं दशधास्मृतः।
निर्ग्रन्थोऽसौ गुरुश्चेति श्रद्धा सम्यक्त्वमुच्यते ।।
जिनोक्तसप्ततत्त्वानां ज्ञातुमिच्छा भवेद्रुचिः।
या सा श्रद्धा तदेव स्यात्सम्यक्त्वं भव्यदेहिनाम्।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 5.70,71
[2]श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक संख्या 2
[3]श्रीपालचरित्र 8.22
[4]तत्त्वार्थसूत्र 1.1

यज्ज्ञानं श्रीजिनेन्द्रोक्तं विरोधपरिवर्जितम्।
तज्ज्ञानं शर्मदं नित्यं समाराध्यं बुधोत्तमैः ।।
सञ्ज्ञानं लोचनप्रायः सततं सर्वदेहिनाम् ।
तत्प्रमादं समुत्सृज्य संश्रयन्तु सुखार्थिनः ।।

हिंसादिपञ्चपापानां सर्वथा त्यागतो महत्।
मुनीनां शुद्धचारित्रमुत्कृष्टं मुक्तिसाधनम् ।।
एकदेशेन हिंसादि त्यागादणुसमाहूतम् ।
श्रावकाणां व्रतं पूतं स्वर्गादिसुखदायकम् ।।[1]

5. प्रतिमाएँ–

जैनदर्शन में धर्मसाधन के भूमिकानुसार दो मार्ग बताये गये हैं– श्रमणमार्ग और श्रावकमार्ग। प्रथम श्रमणमार्ग साधना का सर्वोत्कृष्ट रूप है जो कि मनुष्य को सच्चा सुख अर्थात मुक्ति दिलाता है। द्वितीय श्रावकमार्ग जो कि परम्परा से सच्चे सुख और मोक्ष को प्रदान करने वाला है। यह श्रमणमार्ग का प्रथम सोपान है। श्रावक के रूप में धर्ममार्ग पर अग्रसर जीव की ग्यारह प्रतिमायें होतीं है। आचार्य समन्तभद्र देव ने ग्यारह पदों अर्थात् प्रतिमाओं का वर्णन किया है–

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ।।[2]

राजा श्रीपाल के आग्रह करने पर श्रुतसागर मुनिराज ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरुप वर्णित किया है –

जिनोक्तसप्ततत्त्वानां श्रद्धानं दर्शनं मतम्।
पञ्चविंशतिदोषाद्यैः परित्यक्तं च तच्छुभम् ।।
दयाधर्मरतो नित्यं सुधी संज्ञानसंयुतः।
सः स्याद्दर्शनिको भव्यः प्रथमः श्रावको भुवि ।।

अणुव्रतानि पञ्चैव त्रिप्रकारं गुणव्रतम् ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि यो धत्ते सः द्वितीयकः ।।

सामायिकं त्रिसन्ध्यं यः सङ्करोति च शुद्धधीः।
रागद्वेषं परित्यज्य श्रावकः सः तृतीयकः।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 3.30,31,38,39,47,48
[2]रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक संख्या 136

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां चतुः पर्वसु सर्वदा ।
उपवासव्रती योऽसौ श्राद्धो लोके चतुर्थकः।।

फलं दलं जलं बीजं पत्रशाकादिकं तथा ।
नैव भुङ्क्ते सचित्तं यो दयामूर्तिः सः पञ्चमः।।

दिवामैथुननिर्मुक्तः सदा सन्तोषसंयुतः ।
षष्ठ सः श्रावको रात्रौ चतुर्धाहारवर्जितः।।

विरक्तः स्त्रीसुखे नित्यं ब्रह्मचर्यव्रतं शुभम् ।
यो विद्यत्ते विशुद्धात्मा सदाऽसौ सप्तमो मतः।।

सेवाकृष्यादि वाणिज्यं प्रारम्भं न करोति यः।
हिंसाहेतु दयामूर्तिः स भवेदष्टमः सुधीः ।।

बाह्येषु दशसु प्रोक्तं परिग्रहगणेषु च ।
अन्तश्चतुर्दशष्वेव विरक्तो नवमो मतः ।।

सावद्यारम्भकेषूच्चैर्विवाहादिषु कर्मसु ।
ददात्यनुमतिर्नैव स च स्याद्दशमो गृही ।।

गृहं त्यक्त्वा गुरोः पार्श्वे ब्रह्मचारी शुचि व्रती।
भिक्षाचारी सुधीरेक वस्त्रश्चैकादशप्रमः।।

तस्य भेदद्वयं प्राहुर्मुनयः श्रुतसागराः।
एकवस्त्रधरः पूर्वो यः कौपीनधरः परः ।।

यः कौपीनधरो भव्यो जिनपादद्वये रतः।
रात्रौ च प्रतिमायोगं सदा धत्ते स्वशक्तितः।।

पिच्छं गृह्णाति पूतात्मा स भुङ्क्ते चोपविश्य च।
पाणिपात्रेण चोदण्ड–भिक्षायां श्रावकालये ।।

इत्यादिकं जिनैः प्रोक्तं श्रावकाचारमुत्तमम् ।
यो भव्यो भावतो नित्यं पालयत्येव दृष्टिभाक्।।[1]

---

[1]श्रीपालचरित्र 8.77, 84–96

6. दाता के गुण–

भारतीय दर्शन में दान का विशेष महत्त्व माना गया है। जैनदर्शन में तो दान को श्रावक का दैनिक कर्तव्य कहा गया है–

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानञ्चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने।।[1]

दान का स्वरुप आचार्य उमास्वामी ने बतलाया है– **अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।**[2] अपने और दूसरे के उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। **परानुग्रहबुद्ध्या स्वस्यातिसर्जनं दानम्।**[3] दूसरे का उपकार हो इस बुद्धि से अपनी वस्तु अर्पण करना दान है। दान के स्वरूप का वर्णन करते हुए ब्रह्मनेमिदत्त ने पात्र दाता के श्रद्धा, भक्ति, सन्तुष्टि, सद्ज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और सत्व इत्यादि गुणों का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है–

श्रद्धा भक्तिश्च तुष्टिश्च सद्विज्ञानमलुब्धता ।
क्षमा सत्वं च सप्तेति गुणा दातुः प्रकीर्तिताः।।

पात्रं मे गृहमायातु तस्मै दानं ददाम्यहम् ।
इत्याशयो भवेदत्र श्रद्धावान् स प्रकीर्तितः।।

सम्पूर्णाहारपर्यन्तं भक्तिं कुर्वन् गुरोः सुधीः ।
पार्श्वे सन्तिष्ठते योऽसौ भक्तिमान् श्रावकोत्तमः।।

समायाते महापात्रे सन्तुष्टो यो भवेत्तराम् ।
सम्प्राप्ते या निधाने च स दाता तुष्टिवान् मतः ।।

अभिप्रायं सुपात्रस्य कालदेशवयो गुणम् ।
जानाति यो दयायुक्तः स दाता ज्ञानवान् भवेत् ।।

कार्यं राज्यादिकं मेऽयं करिष्यति महामुनिः ।
वाञ्छेति दानकेनैव यस्य सः स्यादलुब्धकः ।।
दानकाले कृते दोषे सुताकान्तादिभिश्च यः ।
नैव कुप्यति पूतात्मा क्षमावान् स बुधैर्मतः ।।

---

[1]पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक संख्या 6.7
[2]तत्त्वार्थसूत्र 7.38
[3]तत्त्वार्थ राजवार्तिक 6.12.4.522

साधिके च व्यये जाते यो गम्भीरः समुद्रवत् ।
स दाता सत्ववान् सूरिः सत्तमैः परिकीर्तितः ।।[1]

7. बारह भावनाएँ –

बारह भावनाएँ या अनुप्रेक्षा जिनागम का सबसे चर्चित विषय है। यह मुक्तिपथ के लिए तो पाथेय हैं ही, साथ ही लौकिक जीवन में भी अत्यन्त उपयोगी हैं। प्रथमानुयोग में इनका वर्णन होने के अलावा इस विषय पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। आचार्य कुन्दकुन्द इनका माहात्म्य व्यक्त करते हुए कहते हैं –

किं पलवियेण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तज्जाणह तस्य माहप्पं।।[2]

शुभचन्द्राचार्य भी बारह भावनाओं के चिन्तन के लाभ लिखते हैं–

विध्याति कषायाग्नि विगलित रागो विलीयते ध्वान्तम्।
उन्मिषति बोधदीपो हृदि पुंसां भावनाभ्यासात् ।।[3]

ब्रह्मनेमिदत्त ने भी इस काव्य में बारह भावनाओं का विशद वर्णन किया है जिनमें से कतिपय श्लोक यहाँ दृष्टव्य हैं –

अध्रुवं दृश्यते सर्वं यत्किञ्चित् परमार्थतः।
धनं धान्यं सुवर्णं च मणिमुक्ताफलादिकम्।।
शरणं नास्ति संसारे जन्तूनां दुःखसागरे।
इन्द्रो वा धरणेन्द्रो वा चक्री वा कः परो नरः।।

दर्शनज्ञानचारित्रं पवित्रं भुवनत्रये।
केवलं शरणं जन्तोर्नान्यं मान्यं बुधोत्तमैः।।

संसारो दुःसहो ज्ञेयश्चतुर्गतिसमन्वितः।
यत्र जीवाः स्वकृत्येन संसरन्ति निरन्तरम्।।

एको जीवोऽत्र पापेन दुःखमश्नाति नित्यशः।
एकः स्वर्गादिजं सौख्यं स्वपुण्यपरिपाकतः।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 8.45–52
[2]वारसाणुवेक्खा, गाथा 90
[3]ज्ञानार्णव, भावना अधिकार, छन्द 192

गत्यन्तरं प्रयात्येव जीवत्येकोऽपि कर्हिचित्।
नापरः कोऽपि तस्यास्ति निश्चयेन द्वितीयकः।।

अन्यत्वं चात्मनो नित्यं ततो भव्यैर्जिनोक्तिभिः।
सावधानैर्विरागेण चिन्तनीयं स्वचेतसि ।।[1]

कथं सन्तः प्रकुर्वन्ति प्रीतिमत्र शरीरके।
चर्मास्थिसम्भवे नित्यं चाण्डालगृहसन्निभे।।

आस्रवः कर्मणां जन्तोर्जायते दुःखराशिदः।
मिथ्यात्वपञ्चकैः कष्टैरव्रतैर्द्वादशप्रमैः।।
कषायैः पञ्चविंशत्या योगैः पञ्चदशात्मकैः।
भग्ननौरिव जीवोऽसौ नीयते तै रसातलम्।।

संवरोऽपि भवेन्नित्यं भव्यानां शर्मकारणम्।
निर्जितेषु तथा तेषु मिथ्यात्वादिकशत्रुषु ।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जैनतत्त्वविदाम्बरैः।
जित्वा नानास्रवानाशु संवरः संविधीयते।।

निर्जरा कर्मणां कार्या तपोभिर्द्वादशात्मकैः।
बाह्याभ्यन्तरभेदाभ्यां जिनोक्तैः शर्मकारिभिः।।

लोकोऽयं पुरुषाकारो वर्तते शाश्वतः सदा।
न केनाऽपि कृतश्चास्य हर्ता नैव कदाचनः।।
सप्तरज्जुरधोभागे मध्ये रज्जुप्रमः प्रथुः ।
ब्रह्मान्ते पञ्चरज्जुश्च मस्तके रज्जुमानभाक्।।

बोधिः स्याद्दर्शनज्ञानचारित्रप्राप्तिरञ्जसा ।
सः दुर्लभाऽत्र संसारसागरे सरतां नृणाम् ।।

रत्नत्रयं भवेद्धर्मो धर्मोऽपि दशधा स्मृतः।
धर्मो वस्तुस्वभावश्च जीवानां रक्षणं च सः।।

इत्यादिकं द्विषट्भेदैरनुप्रेक्षाः समग्रधीः।
भावयित्वा गुरोः शिक्षास्त्रिधा वैराग्यतत्परः ।।[2]

---

[1]श्रीपालचरित्र 9.38,42,45,46,51,52,56,59
[2]श्रीपालचरित्र 9.59–64, 66,67,75,79,80

1.4 श्रीपालचरित्र : साहित्यिक परिचय

संस्कृत साहित्य में काव्य की उत्पत्ति के साथ ही काव्य के लक्षण पर विमर्श हुआ है। अनेक मनीषियों ने काव्य के लक्षण पर अपने मत प्रस्तुत किये हैं। **कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्** ऐसी व्युत्पत्ति करने पर कवि शब्द से **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च**[1] सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय होकर काव्य शब्द निष्पन्न हुआ अर्थात् कवि के भाव या कर्म को काव्य कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम काव्य का व्यवस्थित लक्षण भामह ने दिया – **शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा**[2] अर्थात् शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य कहते हैं जो कि गद्य और पद्य के भेद से दो प्रकार का है। अनन्तर **शब्दार्थयोः सहितयोर्भावः साहित्यमिति** ऐसा कहा गया। उसके बाद काव्य या साहित्य शब्द की अनेक बार और अनेक प्रकार से व्याख्या की गई। मूलतः **दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।**[3] वहाँ श्रव्यकाव्य **श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्पद्यगद्यमयं द्विधा**[4] आचार्य विश्वनाथ के द्वारा दो प्रकार का माना गया है। गद्यकाव्य के अन्तर्गत कथा, आख्यायिकादि और पद्यकाव्य में महाकाव्य, मुक्तक काव्यादि समाहित है।

श्रीपालचरित्र का महाकाव्यत्व

महाकाव्य की परिगणना श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत होती है। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य इन दो सार्थक पदों के समास से बना है। आचार्य भामह ने महाकाव्य का लक्षण कहा है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्द्यमर्थ्यं च सालङ्कारं सदाश्रयम् ।।

मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।।

---

[1]अष्टाध्यायी 5.1.124
[2]काव्यालङ्कार 1.16
[3]साहित्यदर्पण 6.1
[4]साहित्यदर्पण 6.313

चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयासार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ।।[1]

आचार्य दण्डी ने कुछ नवीन विशेषताएं जोड़ते हुए महाकाव्य का लक्षण कहा कि जिसका कथानक नितान्त काल्पनिक न होकर इतिहास सम्मत अर्थात् प्रसिद्ध हो, नायक चतुर और उदात्त हो, जो विविध अलंकारों तथा रसों से पूर्ण हो, बृहद् तथा पंचसन्धियों से युक्त हो, उसे महाकाव्य कहते है।

आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में कहा महाकाव्य संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की ग्राम्य भाषा में निबद्ध, सर्गान्त में विभिन्न वृत्तों का प्रयोग, स्कन्ध–बद्ध, सन्धियुक्त तथा शब्दार्थ–वैचित्र्य से पूर्ण होता है। आचार्य कुन्तक ने काव्यमर्मज्ञों को आह्लादित करने वाली वक्रतामय, शब्दार्थ युक्त रचना को महाकाव्य कहा है।

आनन्दवर्धन ने महाकाव्य के आन्तरिक पक्ष रस को महत्त्वपूर्ण मानते हुये महाकाव्य का लक्षण कहा है। विश्वनाथ ने सभी आचार्यों के विविध लक्षणों को संगृहीत करके महाकाव्य का साङ्गोपाङ्ग लक्षण प्रस्तुत किया है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा ।।

शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वकं च फलं भवेत्।।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सताञ्च गुणकीर्तनम्।।

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।

---

[1]काव्यालङ्कार 1.19–21

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।

सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।

सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।।

वर्णनीया यथायोगं सङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।[1]

आचार्य विश्वनाथ के लक्षणानुसार महाकाव्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. महाकाव्य में सर्गों का निबन्धन होता है।
2. महाकाव्य में देवता या सद्वंशीय, क्षत्रिय एवं धीरोदात्तादि गुणों से युक्त नायक होता है। कहीं एक वंश के अनेक सत्कुलीन राजा भी नायक होते हैं।
3. महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक अंगीरस होता है तथा अन्य सभी रस अंग रूप होते हैं।
4. महाकाव्य में सभी नाटक संधियाँ रहती हैं।
5. महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होती है।
6. चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एकवर्ग महाकाव्य का फल होता है।
7. आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तु निर्देश होता है।
8. महाकाव्य में सज्जनों का गुणकथन तथा खलों की निन्दा का कथन होता है।
9. महाकाव्य में न अत्यल्प और न अतिदीर्घ; अष्टाधिक सर्ग होते हैं जिनकी रचना एक ही छन्द में की जाती है और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन होता है। कहीं–कहीं एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी होते हैं।

---

[1]साहित्यदर्पण 6.315–325

10. महाकाव्य के सर्गान्त में आगामी कथा की सूचना होती है।

11. महाकाव्य में प्रातः, मध्याह्न, दिन–रात, सन्ध्या, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, वन, सागर, मृगया, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, संयोग, विप्रलम्भ, यात्रा, विवाह और पुत्रादि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होता है।

श्रीपालचरित्र में महाकाव्य की प्रायः सभी विशेषतायें परिलक्षित होतीं हैं। महाकाव्य होने पर भी इस काव्य में जैनाचार और दर्शन रूपी समुद्र के मन्थन से प्रसूत नवनीत कुशलता से समाहित है जिससे इस काव्य की कान्तासम्मित उपयोगिता स्वयमेव मूर्तिमयी होकर दिखाई देती है।

काव्य के नायक के सन्दर्भ में आचार्य भामह लिखते हैं–

नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।[1]

प्रस्तुत काव्य के नायक राजा श्रीपाल वीर, क्षत्रिय और धीरोदात्त है। धनंजय कृत दशरूपक में वर्णित धीरोदात्त नायक की विशेषताएँ श्रीपाल में विद्यमान हैं।

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।[2]

साहित्य दर्पण में भी कहा है –

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।।[3]

काव्य में धर्माचरण की प्रधानता होने से अंगीरस शान्त है। युद्धादि का वर्णन होने से वीर रस भी अनेक स्थानों पर दिखाई देता है इसके अलावा प्रसंगानुसार श्रृंगार, करुण आदि रसों का प्रयोग और मुख, प्रतिमुखादि नाट्यसन्धियों का प्रयोग भी यथास्थान किया गया है।

---

[1]काव्यालङ्कार 1.22
[2]दशरूपक, 2.4
[3]साहित्यदर्पण 3.32

काव्य में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण भी है–

नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशार्चितक्रमम्।
श्रीपालचरितं वक्ष्ये सिद्धचक्रार्चनोत्तमम्।।[1]

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उक्त चार पुरुषार्थ का वर्णन करना इस काव्य का मुख्य उद्देश्य है। धर्मपुरुषार्थ की प्रधानता काव्य में सर्वत्र दिखाई देती है।

श्रीपाल राजकुल में उत्पन्न होते है, परन्तु स्वपूर्वोपार्जित कर्मवशात् कुष्ठ रोगी हो जाते है। तदनन्तर पुण्य योग से मदनसुन्दरी से विवाह होता है और जिनेन्द्राराधना करते हुए रोग–मुक्त हो जाते हैं। पश्चात् धनार्जन हेतु विदेशगमन और धनार्जन के साथ कुल आठ हजार विवाह करके, लौकिक सुखों को भोगते हैं। अन्त में क्षणभङ्गुर इन्द्रियसुख को त्यागकर, मुनि दीक्षा अंगीकार कर, तप करते हुये मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार काव्य में क्रमशः उनके चरित्र का उत्कर्ष परिलक्षित है।

जम्बूद्वीपस्थ मगधदेश और राजगृही नगरी, अवन्तिदेश और उज्जयिनी नगरी, भृगुकच्छ नगर, दलवर्तनपत्तन, रत्नद्वीप आदि अनेक स्थानों का वर्णन किया है। अनेक स्थानों पर दिगम्बर मुनिराजों एवं उनके द्वारा प्रदत्त धर्मोपदेश का वर्णन है। श्रीपाल के माता–पिता, चाचा, पुत्रादि तथा आठ हजार रानियों से विवाह और स्वयंवर आदि का वर्णन है। व्यापारगमन के समय मार्ग में बर्बरराज आदि तस्करों से एवं स्वदेशागमन के समय अपने चाचा अरिदमन से युद्ध का वर्णन है।

इस प्रकार श्रीपालचरित्र में महाकाव्य की सभी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं अतः यह महाकाव्य ही है।

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.1

श्रीपालचरित्र में छन्द योजना

यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः[1] जहाँ अक्षरों की गिनती या परिगणन किया जाता है वह छन्द है। **छन्दः पादौ तु वेदस्य**[2] वेदों के छह अंगों में छन्द को वेदों का पैर माना गया है। छन्दःशास्त्र के आद्य आचार्य छन्दःशास्त्रम् या छन्दःसूत्रम् के कर्ता **आचार्य पिङ्गल** माने जाते हैं।

छन्द दो प्रकार के होते हैं मात्रिक (जाति) छन्द और वार्णिक (वृत्त) छन्द। प्रस्तुत महाकाव्य में अनेक वार्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें अनुष्टुप् छन्द सर्वप्रमुख है।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयो र्ह्स्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।

नव अधिकारों में निबद्ध इस महाकाव्य में कुल 1473 श्लोक है। सम्पूर्ण काव्य में मुख्यतः अनुष्टुप् छन्द है और अधिकारान्त में विभिन्न छन्दों का समायोजन है। इस काव्य के अधिकारों के अन्त में क्रमशः प्रथम में शार्दूलविक्रीडित, द्वितीय में वसन्ततिलका, तृतीय में शार्दूलविक्रीडित, चतुर्थ में मालिनी, पंचम और षष्ठम में शार्दूलविक्रीडित, सप्तम में वसन्ततिलका, अष्टम और नवम अधिकार में शार्दूलविक्रीडित आदि छन्द प्रयुक्त हैं।

इसके अलावा कवि ने बीच–बीच में भी प्रसंग एवं आवश्यकतानुसार अन्य छन्दों का प्रयोग किया है जिसमें उक्त छन्दों के अलावा स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता आदि विशेष हैं। सम्पूर्ण काव्य में 1433 श्लोक अनुष्टुप् छन्द में और 40 श्लोक अन्य विशिष्ट छन्दों निबद्ध में है।

श्रीपालचरित्र में रस योजना

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्[3] आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है। **वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।**[4] यह अग्निपुराण में उल्लखित

---

[1]ऋगवेद–सर्वानुक्रमणी, पृष्ठ संख्या 1
[2]पाणिनीय शिक्षा, श्लोक 41
[3]साहित्यदर्पण 1.3
[4]अग्निपुराण 377.33

है। रस की निष्पत्ति के विषय में भरत मुनि ने कहा है कि **विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।**[1] इस प्रकार रस के सन्दर्भ में संस्कृत साहित्य में अनेक व्याख्याएँ की गई है।

शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्यरसाः स्मृताः।।[2]

रस की संख्या के सन्दर्भ में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। भरत मुनि ने आठ, मम्मट ने नौ, विश्वनाथ ने दश, अन्य विद्वानों ने दश से भी अधिक रस की संख्या मानी है।

यद्यपि श्रीपालचरित्र में अनेक रसों का समायोजन है तथापि धार्मिक चरित्र काव्य होने से इसकी अन्तिम परिणति शान्त रस में होती है। शान्त रस की मुख्यता के साथ भक्ति भी इसमें समाहित है। प्रस्तुत काव्य में समागत विभिन्न रसों के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं–

शृंगार रस – प्रस्तुत चरित्र में अनेक स्थलों पर शृंगार रस के वर्णन की संभावना होने पर भी शृंगार के संयोग पक्ष का बहुत ही कम वर्णन कवि ने किया है। चतुर्थ अध्याय में श्रीपाल के विदेशगमन के सन्दर्भ में विप्रलम्भ शृंगार की योजना प्रस्तुत काव्य में है –

इतिमुक्तो यदा भर्ता निर्गतो मन्दिरात्तदा।
वस्त्रप्रान्ते धृतो गाढं रुदन्त्या कान्तया तया।।

अमङ्गलमिदं भद्रे! मुञ्च मां गमनक्षणे।
तेनोक्तं सा जगादैवं शृणु त्वं प्राणवल्लभ!।।

प्राणान् मुञ्चामि किं पूर्वं किं वा वस्त्रं वदात्र मे।
आक्षिप्य वसनं यासि यदा त्वं नासि सद्भटः।।[3]

इसी क्रम में माँ कनकप्रभा भी विदेशोन्मुख अपने पुत्र को सम्बोधित करती है। यह वियोग शृंगार और वात्सल्य का मिश्रित रूप भासित होता है –

---

[1]नाट्यशास्त्र अध्याय 6
[2]नाट्यशास्त्र 6.15
[3]श्रीपालचरित्र 4.31–33

इत्यादिकं भणित्वा च माता साश्रु विलोचना।
तं समालिङ्ग्य गन्धाद्यैर्विधाय तिलकं शुभम्।।[1]

वीर रस – काव्य में वीर रस का संचरण करने वाले अनेक प्रसंग हैं, चतुर्थ अध्याय में विदेशगमन के समय रास्ते में जहाज पर बर्बरराज आदि के आक्रमण कर देने पर श्रीपाल सिंहनाद करते हुए बर्बरों को अपने पराक्रम से जीतता है।

श्रुत्वा जनैश्च तां वार्तां श्रीपालः सिंहविक्रमः।
महाधनुर्धरो वेगात्समुत्थाय प्रकोपतः।।

सिंहनादं विधायोच्चैर्गत्वा तत्पृष्ठतो महान्।
कृत्वा युद्धं तदा रौद्रं जित्वा तान् बर्बरान् द्रुतम्।।[2]

विदेश से आगमन के पश्चात् श्रीपाल द्वारा अपने श्वसुर प्रजापाल को अपनी शरण में बुलाये जाने पर वीर रस का प्रसंग प्राप्त है–

अन्यथा देशनाशस्ते भविष्यति न संशयः।
इत्येवं श्रावणात् सोऽपि प्रजापालोऽतिगर्ववान्।।

प्रोवाच दूतं रे याहि समर्थोऽहं रणाङ्गणे।
सिंहः किं मृगसन्दोहैर्बाध्यते भो महीतले।।

खद्योतैश्छाद्यते किं वा भास्करो महिमाकरः।
कोऽयं श्रीपालकस्तेऽयं यो मां नामयति ध्रुवम्।।[3]

वीर रस का एक अन्य प्रसंग उपस्थित होता है जब श्रीपाल पिता के राज्य को प्राप्त करने के लिए चाचा वीरदमन पर आक्रमण करता है। युद्धार्थ प्रस्थान करने पर धरती हिल उठती है, योद्धाओं की और उनकी पत्नियों की वीरता एवं दर्प की उक्तियों की झड़ी लग जाती हैं।

किं ते श्रीपालको बालः किं ते सैन्यं तृणोपमम्।
एकोऽहं सकलान् शत्रून् जित्वा घोरे रणाङ्गणे।।

भास्करो वा तमस्तोमं प्रेषयित्वा यमालयम्।
श्रीपालं सङ्करिष्यामि स्वनाम सफलं क्षितौ।।

[1]श्रीपालचरित्र 4.46
[2]श्रीपालचरित्र 4.81–82
[3]श्रीपालचरित्र 6.127–129

अद्यैव दर्शयिष्यामि सामर्थ्यं स्वं रणाङ्गणे।
एवं विसर्ज्य तं दूतं स्वयं च रणतूरकम्।।[1]

करुण रस – धवल सेठ की कूट योजना के फलस्वरूप अपने प्रिय श्रीपाल के बिछुड़ने पर मदनमंजूषा की विरह दशा का मार्मिक चित्रण है जिसमें उसकी विलाप दशा में करुण रस का संचार है –

विद्युत्पातेन वल्लीव पपात किल मूर्छिता।
सखीभिर्जलसेकाद्यैरुदन्ती चोत्थिता तदा।।

हा नाथ! क्व गतोसि त्वं मां विहायात्र सागरे।
चक्रवाकीमिवैकाकी महाभयशतङ्करे।।

अहो स्वामिन्! क्व तिष्ठामि क्व गच्छामीति साम्प्रतम्।
यूथभ्रष्टेव सारङ्गी विरहानलवेष्टिता।।

हाऽहं स्वामिन्! क्व पश्यामि त्वां मे प्राणप्रियं प्रभो!।
सान्धकारात्वभूवं च निशा वा चन्द्रवर्जिता।।

पद्मिनीव गतच्छाया भास्करेण विना भुवि।
जाताऽहं त्वां विना नाथ! पादपेन विना लता।।

इत्येवं सा प्रकुर्वाणा रोदनं शोकपूरिता।
अश्रुपातप्रवाहेण स्नाता वा दुःखसागरे।।[2]

भयानक रस– पंचम अध्याय में धवल सेठ द्वारा मदनमंजूषा को सताए जाने पर मदनमंजूषा के रक्षार्थ देवी देवताओं का प्रकट होना एवं धवल सेठ को ताड़ना देना। इस प्रसंग में भयानक रस प्रस्फुटित होता है –

महावातशतैस्तीव्रैर्यानपात्राणि सागरे।
कल्लोलैश्चालयामासुः शीघ्रं वा प्रलयोद्भवैः।।

घूमन्ते चक्रिरे गाढं पापं वा तस्य पापिनः।
मुखे तं ताडयामास देवी पद्मावती क्रुधा।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 7.20,21,27
[2]श्रीपालचरित्र 5.65–69,72

क्षेत्रपालोऽपि लातेन जघान श्रेष्ठिनं खलम्।
अधोमुखं बबन्धोच्चैः पृष्ठहस्तां सुरः परः।।

एवं तैः पीडितो गाढं स पापी भयकम्पितः।
पतित्वा पादयोस्तस्यास्त्वं मे पूज्या सती ध्रुवम्।।[1]

बीभत्स रस – द्वितीय अध्याय में कुष्ठ गलित शरीर युक्त श्रीपाल सहित 700 कुष्ठियों का वर्णन बीभत्स रस का उदहारण है।

रौद्र रस – रौद्र रस का इससे बढ़कर उदाहरण क्या हो सकता है कि स्वयं पिता कन्या के तर्क से कुपित होकर अपने झूठे दम्भ और प्रतिष्ठा के कारण उसका विवाह एक ऐसे कुष्ठी से कर देता है जिसके हाथ पैर आदि गलित हो गए हैं।

शान्त रस – प्रथम अधिकार में समवशरण में भगवान महावीर के उपदेश, तृतीय अधिकार में सुगुप्ताचार्य मुनि द्वारा मैना सुन्दरी को उपदेश, नवें अधिकार में वैराग्य पूर्वक दीक्षा धारण करके मोक्ष की साधना आदि प्रसंगों में शान्तरस की अविरल धारा प्रवाहित होती है।

इस प्रकार करुण, वीर, रौद्र बीभत्स और भयानक आदि रसों की संक्षिप्त किन्तु मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत कृति में हैं।

श्रीपालचरित्र में अलंकार योजना

अलंकार काव्योत्कर्ष का एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण साधन है। कहा भी है– **अलङ्करोतीति अलंकारः**। अलंकार कवि प्रतिभा का महत्त्वपूर्ण मापदण्ड है। अलंकार प्रस्थान के संस्थापक आचार्य भामह **न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्**[2] इस कथन के माध्यम से अलंकार की महत्ता बतलाते हैं। आचार्य दण्डी अलंकार को काव्य का शोभाकारक धर्म मानते **हैं काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारः प्रचक्षते।**[3] आचार्य मम्मट ने तो अलंकार को रस का उपकारक

---

[1]श्रीपालचरित्र 5.95–97,100
[2]काव्यालङ्कार 1.13
[3]काव्यादर्श 219

कहा है– **उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।**[1] इस प्रकार विविध आचार्यों एवं लेखकों ने अलंकारों का वर्णन किया है।

श्रीपालचरित्र एक चरित्र काव्य होने के साथ–साथ महाकाव्य भी है अतः इसमें अलंकारों का भी सुन्दर समायोजन है। प्रस्तुत काव्य में कवि ने उपमा और उत्प्रेक्षा की मुख्यता के साथ यमक, अनुप्रास, रूपक, दृष्टान्त, व्यतिरेक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। जिनके कतिपय दृष्टान्त निम्नलिखित हैं–

अनुप्रास अलंकार– अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।[2] स्वरों विषमता रहते हुए भी व्यंजनों में समानता होने पर अनुप्रास अलंकार होता है। श्रीपालचरित्र में अनेक स्थलों पर अनुप्रास अलंकार के उदाहरण दृष्टव्य है। यथा –

वन्दे श्रीवृषभं देवं देवदेवैः समर्चितम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं व्यक्तानन्तचतुष्टयम् ।।

दुष्टाष्टकर्मनिर्मुक्तान् सिद्धान् सिद्धिप्रदान् सताम्।
त्रैलोक्यशिखरारूढान् संस्तुवे त्रिजगत्स्तुतान् ।।

विश्वासो नैव कर्त्तव्यश्चार्वाकादिषु धीधनैः ।
द्यूतकारेषु दुष्टेषु क्रूरेषु पशु जन्तुषु ।।

सत्यं त्वं क्षत्रियोत्पन्नो महाभटशिरोमणिः ।
सर्वकार्यसहस्रेषु शूरो वा हनुमान् महान् ।।[3]

यमक अलंकार – सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहते। क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।।[4] अर्थात् जब वर्ण समूह की उसी क्रम से पुनरावृत्ति की जाए किन्तु आवृत्त वर्ण समुदाय या तो भिन्नार्थक हो अथवा अंशतः या पूर्णतः निरर्थक हो तो यमक अलंकार कहलाता है। प्रस्तुत काव्य में 24 तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए

---

[1]काव्यप्रकाश 8.67
[2]साहित्यदर्पण 10.3
[3]श्रीपालचरित्र 1.2,16, 4.45,68
[4]साहित्यदर्पण 10.8

प्रारम्भ के ही 12 छन्दों में वर्ण समुदाय की आवृत्ति हुई है तथा उसका अर्थ भी भिन्न–भिन्न है अतः यहाँ यमक अलंकार है।

नमामि सुमतिं शान्तं भव्यानां सुमतिप्रदम्।
पद्मप्रभं जिनं वन्दे पद्माभं पद्मलाञ्छनम् ।।[1]

उपमा अलंकार– साधर्म्यमुपमा भेदे।[2] **प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते।** अर्थात् स्पष्ट एवं सुन्दर समानता को उपमा कहते हैं।

यो देशो राजते स्मोच्चैः पुरैर्ग्रामैर्मनोहरैः।
खेटैः संवाहनैश्चापि चक्रीव राजभिर्वृतः।।

येषां दर्शनमात्रेण भव्यानां पश्यतां तराम्।
पापं प्रयाति तत्कालं भास्करेण यथा तमः।।

यत्रवापीतडागादि स्वच्छतोया जलाशयाः।
रेजिरे चाति गम्भीरा मुनीनां मानसोपमाः ।।

गृह्णन्तु साररत्नानि यूयं वैदेशिका मम ।
महादातेव सन्दृष्टः सिन्धुस्तैस्संवदन्ति वा ।।[3]

रूपक अलंकार – तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[4] अथवा **रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।**[5] जहाँ उपमान द्वारा उपमेय पर आरोपण कर दिया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है। प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर रूपक वर्णित है यथा –

नमिं तीर्थेश्वरं वन्दे केवलज्ञानभासुरम्।
लोकालोकस्वभावाब्जद्योतनैकदिवाकरम्।।

जिनेन्द्रचरणाम्भोजसेवनैकमधुव्रतः।
योऽभवन्मुनिपादाब्जरजोरञ्जितमस्तकः।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.4
[2]काव्यप्रकाश 10.87
[3]श्रीपालचरित्र 1.35,52, 2.6, 4.77
[4]काव्यप्रकाश 10.93
[5]साहित्यदर्पण 10.28

महासत्वगजारूढः सद्धर्मातपवारणः।
सद्यशश्चामरोपेतो विजयी दोषसञ्चये।।[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार – सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।[2] उपमेय में उपमान की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। प्रस्तुत काव्य में अनेक जगह पर उत्प्रेक्षा अलंकार प्रस्फुटित है यथा –

तस्य श्रेणिकभूपस्य दिव्यरूपस्य सम्बभौ।
चेलनानामतो राज्ञी रतिर्वा कामभूपतेः।।

ततस्ते श्रेष्ठिनः पोताः समुल्लङ्घ्य च सागरम्।
रत्नद्वीपं सुखं प्रापुर्मुनयो वा जगत्तटम्।।

शत्रुर्मित्रायते येन सर्पो दामायते ध्रुवम्।
विषं सुधायते शीघ्रं शूलं सिंहासनायते।।

जामातायं नृपस्यासीन् महाविभवसंयुतः।
इदानीं मे न जानेऽहं किमप्यग्रे भविष्यति।।[3]

दृष्टान्त अलंकार– दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्[4] अर्थात् जहाँ उदाहरण के माध्यम से समानधर्मिता का वर्णन किया जाता है वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

काव्य में दृष्टान्त अलंकार के उदाहरण निम्नलिखित हैं –

धनं विना न भातीह नरो लोके निरन्तरम्।
यथा सुगन्धताहीनो नानाकुसुमसञ्चयाः।।

छाया वा पुरुषेणैव सन्मतिर्वा मुनीशिना।
नीतिर्वा भूभुजा सार्धं प्रीतिर्वा सज्जनेन च।।

सत्यं दुरात्मनश्चित्ते परवस्तुप्रियं सदा।
रक्तपा पररक्तस्य पानं रक्ता यथा सदा।।[5]

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.12, 65, 9.95
[2]काव्यप्रकाश 9.92
[3]श्रीपालचरित्र 1.80, 4.95, 5.31,115
[4]साहित्यदर्पण 10.50
[5]श्रीपालचरित्र 4.9,16, 5.6

व्यतिरेक अलंकार– उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।[1] जहाँ उपमान का उपमेय से या उपमेय का उपमान से विशेष वर्णन हो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यहाँ एक से दूसरे का आधिक्य दिखाया जाता है। इसके उदाहरण प्रकृत चरित्र में निम्न हैं –

तथा तत्र पुरोत्पन्ना भव्याः सद्धर्मशालिनः।
रूपसौभाग्यसम्पन्ना जयन्तिस्म सदा सुरान्।।

यत्र नार्यः सुरूपाढ्याः सम्यक्त्वव्रतमण्डिताः।
दिव्याभरणवस्त्राद्यैर्लज्जयन्तिस्म देवताः।।[2]

अतिशयोक्ति अलंकार– सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।[3] जहाँ अध्यवसाय की सिद्धि की प्रतीति हो अर्थात् जहाँ इतना अधिक बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन हो कि लोक सीमा का उल्लंघन सा प्रतीत हो वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

प्रतापनिर्जितारातिमण्डलो महिमास्पदम् ।
भास्करो वा द्वितीयोऽयं कुमार्गतिमिरापहः।।

कल्पवृक्षो जडश्चिन्तामणिः पाषाणमेव च ।
कामधेनुः पशुः किं तैः समोऽयं क्रियते नृपः।।[4]

अलंकारों के प्रयोग की यह विशेषता है कि वह काव्य में सहज ही उद्भूत होते हैं। प्रस्तुत काव्य में अलंकारों का समावेशन सहज ही परिस्थित्यानुसार हुआ है। प्रस्तुत काव्य में शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार तीनों में ही कवि की गति है। इस प्रकार कवि ने अपनी कवि प्रतिभा से अलंकार का सुन्दर प्रयोग प्रकृत काव्य में किया है।

इस महाकाव्य में सभी काव्यतत्त्व प्रसंगानुसार स्वयमेव उपस्थित हुये हैं। कथानक के प्रस्तुतीकरण के समय काव्य के समस्त तत्त्वों में ब्रह्मनेमिदत्त का परिपूर्ण अधिकार परिलक्षित होता है। भाषा सरल, सुमधुर, प्रौढ़, गम्भीर, विद्वज्जनमनोहारिणी, अर्थप्रगल्भा और व्याकरणादि दोषों से रहित है। काव्य में

---

[1]काव्यप्रकाश 10.105,159
[2]श्रीपालचरित्र 1.54,55
[3]साहित्यदर्पण 10.46
[4]श्रीपालचरित्र 1.61,63

रस, छन्द और अलंकार का सुन्दर समायोजन है जो काव्य के सौन्दर्य को द्विगुणित करता है।

प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति से प्रवाहमान इस सरिता के अविरल प्रवाह में सहृदय पाठक के मन मीन अनायास ही विलासपूर्वक उद्वर्तन करने लगते हैं। प्रस्तुत काव्य में धीरोदात्त नायक की ऐसी कौतूहलोत्पादक कथावस्तु वर्णित की है कि वह काव्य को आद्योपान्त पढ़ने की उत्सुकता को शान्त नहीं करती, अपितु बढ़ाती जाती है।

1.5 श्रीपालचरित्र : पात्र–परिचय

महाकाव्य की सम्पूर्ण कथा नायक के इर्द–गिर्द घूमती है। श्रीपाल के अतिरिक्त मुख्य पात्र कमलावती, प्रजापाल, सौभाग्यसुन्दरी, सुरसुन्दरी, मदनसुन्दरी, शिवशर्मा, यमधर मुनिराज, अरिदमन, सुगुप्ताचार्य, वीरदमन, मदनमंजूषा, धवल सेठ, धनपाल राजा, गुणमाला, चित्रलेखा, श्रुतसागर मुनि, महीपाल, सुव्रताचार्य आदि अनेक पात्र प्रस्तुत चरित
में उल्लखित हैं।

प्रस्तुत काव्य में समागत मुख्य पात्रों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है –

श्रीपाल	–	धीरोदात्त सच्चरित्र नायक।
कमलावती	–	जिनधर्मपरायणा माता और चम्पापुर नरेश सिंहसेन की रानी।
प्रजापाल	–	अवन्ति देश की उज्जयिनी नगरी के राजा और श्रीपाल के श्वसुर।
सौभाग्यसुन्दरी	–	उज्जयिनी नरेश प्रजापाल राजा की धर्मपरायणा रानी।
सुरसुन्दरी	–	राजा प्रजापाल की ज्येष्ठा पुत्री एवं मिथ्याशास्त्रपरायणा ।

मदनसुन्दरी	–	श्रीपाल की पटरानी, रति के सामान सुन्दरी, जिनधर्मानुयायी, प्रजापाल राजा की कनिष्ठा पुत्री, सिद्धचक्रविधान कर्त्री।
शिवशर्मा	–	प्रजापाल की ज्येष्ठा पुत्री सुरसुन्दरी के शिक्षा प्रदाता, ब्राह्मण गुरु।
यमधर मुनिराज	–	प्रजापाल राजा की कनिष्ठा पुत्री मदनसुन्दरी के अध्यात्म एवं लौकिक शिक्षा गुरु।
अरिदमन	–	सुरसुन्दरी के पति, अहिच्छत्रपुराधीश पुत्र।
सुगुप्ताचार्य मुनिराज	–	मदनसुन्दरी एवं श्रीपाल के सदुपदेशक और सिद्धचक्र विधान के प्रेरक।
वीरदमन	–	श्रीपाल के चाचा, चम्पापुर नरेश।
धवल सेठ	–	भृगुकच्छ नगर का श्रेष्ठी, लम्पटी।
बर्बरराज	–	समुद्री दस्यु एवं तस्कर।
मदनमंजूषा	–	रत्नद्वीप के विद्याधर की शीलवती कन्या, श्रीपाल की द्वितीय रानी।
धनपाल	–	दलवर्तनपत्तन के राजा, श्रीपाल के श्वसुर।
गुणमाला	–	राजा धनपाल की पुत्री, श्रीपाल की रानी, सत्यान्वेषिका।
चित्रलेखा	–	विभिन्न विद्याओं में पारंगत, विवाह हेतु श्रीपाल के समक्ष समस्याएं प्रस्तुतकरने वाली।
श्रुतसागर मुनि	–	अवधिज्ञानी मुनिराज, श्रीपाल के धर्मोपदेशक और पूर्वभव के निरूपण कर्ता।
महीपाल	–	श्रीपाल के ज्येष्ठ पुत्र।
सुव्रताचार्य	–	श्रीपाल के दीक्षागुरु।

द्वितीय अध्याय

ब्रह्मनेमिदत्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्याय

ब्रह्मनेमिदत्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।[1]

आचार्य मम्मट ने काव्य के उक्त छह प्रयोजन प्रतिपादित किये हैं। यशकामना मानकषाय की पोषक होने से अन्तरंग परिग्रह एवं अर्थसंग्रह बहिरंग परिग्रह कहलाता है। अन्तरंग और बहिरंग दोनों परिग्रह से रहित जैनाचार्य और गुरु आत्मविशुद्धि एवं परकल्याण के प्रयोजन से ही साहित्य की रचना करते हैं। जैनाचार्यों की इसी परम्परा का अनुकरण करते हुए स्वपर कल्याण के प्रयोजन को मुख्य रखकर ग्रन्थ रचना करने वाले ब्रह्मनेमिदत्त का व्यक्तित्व उत्कृष्ट है।

2.1 व्यक्तित्व

लोकैषणा से दूर एवं प्रसिद्धि से पराङ्गमुख रहने वाले जैन आचार्यों व रचयिताओं की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपने विषय का जितना विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है उतना ही कम स्वयं का परिचय प्रस्तुत किया है। समकालीन आचार्यों, लिपिकारों, प्रतिलिपिकारों व शिलापट्टों के आधार पर ही जितना परिचय जैन रचनाकारों का प्राप्त हुआ है हमें उतने में ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकार ब्रह्मनेमिदत्त ने भी इसी परम्परा का निर्वहन किया है। इनके लौकिक जीवन के सन्दर्भ में हमें अधिक ज्ञात नहीं है।

ब्रह्मनेमिदत्त संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और गुजराती भाषा के विद्वान हुए हैं। आप सरस्वती के वरद पुत्र थे। आपको स्वाभाविक कवि प्रतिभा प्राप्त थी। आपने संस्कृत में पुराण, चरित, कथा, श्रावकाचार आदि ग्रन्थों की रचना करके पूर्वाचार्यों एवं कवियों द्वारा लिखित पुराण और चरित काव्य की परम्परा को पल्लवित, पुष्पित और विस्तृत किया है।

---

[1]काव्यप्रकाश 1.2

जन्म स्थान एवं माता–पिता –

यद्यपि स्पष्ट रूप से आपके जन्मस्थान या माता–पिता के सन्दर्भ में कोई उल्लेख नहीं है तथापि आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ रचना के स्थान एवं अन्य स्रोतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आप अग्रवाल जाति के थे और आपका गोत्र गोयल था। आप मालव देश के आशानगर के निवासी थे।

ख्याते मालवदेशस्थे पूर्णाशानगरे वरे ।
श्रीमदादिजिनागारे सिद्धं शास्त्रमिदं शुभम् ।।[1]

आपने अपने ग्रन्थों की रचना प्रमुख व्यक्तियों के अनुरोध से की है। जिससे यह भासित होता है कि अनेक व्यक्ति आपके सम्पर्क में रहे हैं। आपका व्यक्तित्व बहुमुखी था। प्रतिमा और मन्दिर निर्माण के कार्यों में भी सहयोग देते थे। एक मूर्तिलेख में ब्रह्मनेमिदत्त के साथ ब्रह्ममहेन्द्रदत्त के नाम का भी उल्लेख आया है। जिससे वे इनके सहपाठी प्रतीत होते हैं।[2]

स्थितिकाल –

ब्रह्मनेमिदत्त की रचनाओं में ग्रन्थ रचना के समय का उल्लेख प्राप्त होता है। जिससे आपके स्थितिकाल पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। आपने विक्रमी सम्वत् 1575 में आराधना कथाकोश लिखा एवं विक्रमी सम्वत् 1585 में श्री शान्तिदास के अनुरोध से श्रीपालचरित्र की रचना की।

सम्वत्सार्द्धसहस्रे च पञ्चाशीतिसमुत्तरे।
आषाढे शुक्लपञ्चम्यां सम्पूर्णं रविवासरे ।।[3]

नेमिनाथ पुराण की रचना भी विक्रमी सम्वत् 1585 में हुई है। सुदर्शनचरित की प्रशस्ति में कवि ने पद्मनन्दि, प्रभाचन्द्र, देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण और श्रुतसागर की प्रशंसा की है जिसके अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता कि मल्लिभूषण विक्रम की 16 वीं शताब्दी में हुए हैं अतः मल्लिभूषण के प्रसिद्ध शिष्य

---

[1]श्रीपालचरित्र 9.134
[2]भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक 467 तथा अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पूजा
[3]श्रीपालचरित्र 9.135

ब्रह्मनेमिदत्त भी इसी शताब्दी में हुए हैं। अतएव आपका समय विक्रम की 16 वीं शताब्दी का तृतीय–चतुर्थ चरण है। आपका जन्मकाल विक्रमी सम्वत् 1550 या 1554 के आस–पास का ज्ञात होता है।[1]

सुदर्शनचरित के अन्त में लिखा है–

श्रीमूलसंघे वरभारतीये गच्छे बलात्कारगणेऽति रम्ये।
श्रीकुन्दकुन्दाख्यमुनीन्द्रवंशे जातः प्रभाचन्द्रमहामुनीन्द्रः।।
पट्टे तदीये मुनिपद्मनन्दी भट्टारको भव्यसरोजभानुः।
जातो जगत्त्रयहितो गुणरत्नसिन्धुः कुर्यात् सतां सारसुखं यतीशः।।

ततपट्टपद्माकरभास्करोऽत्र देवेन्द्रकीर्ति मुनिचक्रवर्ती।
तत्पादपङ्कजे सुभक्ति युक्तो विद्यादिनन्दी चरितं चकार।।

तत्पट्टेऽजनि मल्लिभूषणगुरुचारित्रचूडामणिः।
संसाराम्बुधितारणैकचतुरश्िंचतामणिः प्राणिनाम्।।
सूरिः श्रीश्रुतसागरो गुणनिधिः श्रीसिंहनन्दी गुरुः।
सर्वे ते यति सत्तमाः शुभतरा कुर्वन्तु वो मंगलम्।।

गुरुणामुपदेशेन सच्चरित्रमिदं शुभम् ।
नेमिदत्तो व्रती भक्त्या भावयामास शर्मदम्।।[2]

गुरु परम्परा –

ब्रह्मनेमिदत्त मूलसंघ, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण के विद्वान भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य थे। मल्लिभूषण के दीक्षागुरु भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य विद्यानन्दि थे। इन्हीं विद्यानन्दि के पट्ट पर मल्लिभूषण प्रतिष्ठित हुए, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी रत्नत्रय से सुशोभित थे। ब्रह्मनेमिदत्त के दीक्षागुरु का नाम भट्टारक विद्यानन्दि था ऐसा भी उल्लेख प्राप्त है।[3] आराधना कथाकोश की प्रशस्ति में मल्लिभूषण की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

---

[1]जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, भाग 2, पृष्ठ संख्या 511–512
[2]सुदर्शन चरित्र 12.47–51
[3]तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग –3, पृष्ठ संख्या 403

श्रीमज्जैनपदाब्जसारमधुकृच्छ्रीमूलसंघाग्रणीः।
सम्यग्दर्शनसाधुबोधविलसच्चारित्रचूडामणिः।।
विद्यानन्दिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुर्भूयात्सतां शर्मणे।।

अर्थात् मूलसंघ में श्रेष्ठ सरस्वती गच्छ और अतिरम्य बलात्कारगण में कुन्दकुन्द नामक मुनीन्द्र के वंश में महामुनीन्द्र प्रभाचन्द्र हुए। उनके पट्ट में भव्य जनों के लिए सूर्य के समान मुनि पद्मनन्दी भट्टारक हुए। वे तीनों लोकों के हितकारी तथा गुणरूपी रत्नों के समुद्र थे। वे यतीश सज्जनों के सार स्वरूप सुख को करें। उनके पट्ट रूपी कमलों के लिए सूर्य स्वरूप देवेन्द्रकीर्ति मुनि चक्रवर्ती हुए। उनके चरणकमलों के प्रति भक्ति से युक्त विद्यानन्दि ने चरित (सुदर्शनचरित) बनाया। उनके पादपट्ट पर चारित्रचूड़ामणि मल्लिभूषण गुरु हुए। वे प्राणियों को संसार रूपी समुद्र से तारने में एकमात्र चतुर चिन्तामणि थे। श्री श्रुतसागरसूरि, सिंहनन्दि गुरु– ये सब शुभतर यतिश्रेष्ठ आपका मंगल करें।

ब्रह्मनेमिदत्त ने अपने आराधना कथाकोश (वि. सं. 1575) की प्रशस्ति में विद्यानन्दि के पट्टधर मल्लिभूषण और उनके शिष्य सिंहनन्दि का गुरु रूप में स्मरण करके श्रुतसागर को भी जयकार किया है। बाद में वि. सं. 1585 में श्रीपालचरित्र में श्रुतसागर का उल्लेख करते हुए श्रुतसागर को 'पूर्वसूरि' तथा उनके द्वारा रचित श्रीपालचरित्र को 'पुरारचित' कहा है।

श्रीपालचरित्र की प्रशस्ति में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए उन्हीं के प्रसाद से इस ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ ऐसा वर्णन किया है। अन्त में श्रीपालचरित्र की रचना का समय और स्थान का उल्लेख भी आपके द्वारा किया गया है।

गच्छे श्रीमतिमूलसंघतिलके सारस्वती ये शुभे।
श्रीभट्टारकपद्मनन्दिमुनयः देवेन्द्रकीर्तिस्ततः ।।
विद्यानन्दिगुरुंस्ततो गुणनिधेः पट्टे तदीये सुधीः।
श्री भट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सद्बोधसिन्धुर्महान्।।
तच्छिष्यो गुणरत्नरञ्जितमतिः श्री सिंहनन्दिगुरुः।

सद्रत्नत्रयमण्डितोति नितरां भव्यौघनिस्तारकः ।।
तेषां पादपयोजयुग्ममधुपः श्रीनेमिदत्तो यति ।
चक्रे चारुचरित्रमेतदुचितं श्रीपालजं शङ्क्रियात् ।।

अग्रो तोत्तम वंश मण्डनमणिः सद्ब्रह्मचारी शुभः।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरोः पादाब्जसेवारतः।।
जीयादत्र महेन्द्रदत्तसुयतिः संज्ञानवान्निर्मलः।
सूरि श्रीश्रुतसागारादि यतीनां सेवापरः सन्मतिः।।[1]

नेमिनाथ पुराण के अन्त में अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये एक श्लोक गुरु के स्मरणार्थ समर्पित किया है–

गच्छे श्रीमतिमूलसंघतिलके सारस्वती ये शुभे।
विद्यानन्दिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः ।।
ज्ञानध्यानरतः प्रसिद्धमहिमा चारित्रचूडामणिः।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुर्जीयात् सतां भूतले।।292।।

आप मूल संघ के बलात्कारगण की सूरत शाखा के अन्तर्गत रहे। बलात्कारगण की सूरत शाखा का कालपट्ट निम्नलिखित है–

मूलसंघ
↓
सरस्वती गच्छ
↓
बलात्कारगण
↓
कुन्दकुन्द
↓
प्रभाचन्द्र
↓

(बलात्कार गण सूरत शाखा काल पट)[1]

[1]श्रीपालचरित्र 9.131–135

मुनि पद्मनन्दी (उत्तर शाखा)

↓

देवेन्द्रकीर्ति मुनि
(वि. सम्वत् 1493)

↓

विद्यानन्दी (वि. सम्वत् 1499–1537) | त्रिभुवनकीर्ति (जेरहट शाखा)

↓

मल्लिभूषण (वि. सम्वत् 1544–1555)

↓

लक्ष्मीचन्द्र (वि. सम्वत् 1556–1582)

↓

वीरचन्द्र | अभयचन्द्र (सम्वत् 1548)

वीरचन्द्र

↓

ज्ञानभूषण (वि. सम्वत् 1600–1616)

↓

प्रभाचन्द्र (वि. सम्वत् 1625–1627)

↓

वादिचन्द्र (वि. सम्वत् 1637–1664)

↓

महीचन्द्र (वि. सम्वत् 1679–1685)

↓

मेरूचन्द्र(वि. सम्वत् 1722–1732)

↓

जिनचन्द्र

अभयचन्द्र (सम्वत् 1548)

↓

अभयनन्दि

↓

रत्नकीर्ति (सम्वत् 1662)

---

[1]भट्टारक सम्प्रदाय, पृष्ठ संख्या 203

↓

विद्यानन्दि (वि. सम्वत् 1805–1822)

↓

देवेन्द्रकीर्ति (वि. सम्वत् 1842)

↓

विद्याभूषण

↓

धर्मचन्द्र (वि. सम्वत् 1899)

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि आप मूल संघ के बलात्कारगण की सूरत शाखा की उक्त परम्परा में हुए विद्यानन्दि के शिष्य मल्लिभूषण के शिष्य थे।

आप लेखक एवं कवि के साथ–साथ प्रतिष्ठाचार्य भी थे और मन्दिर प्रतिष्ठाओं में सहयोग प्रदान करते थे। आपने विभिन्न व्यक्तियों के अनुरोध से अपने ग्रन्थों की रचना की जो कि आपकी सामाजिकता एवं विद्वत्ता का द्योतक है। भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र भी (वि.सं. 1555–85) बलात्कारगण सूरत शाखा के भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य थे। वि. सं. 1578 के वैशाख सुदी 12 को श्रीपुर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई, इसमें भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र, श्री सिंहनन्दी, श्री श्रुतसागर, ब्रह्मनेमिदत्त, पण्डित (प्रतिष्ठाचार्य) राघव, ब्रह्ममहेद्रदत्त (प्रतिष्ठाकार) उपस्थित थे। पण्डित राघव की प्रेरणा से ब्रह्मनेमिदत्त ने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पूजा लिखी।

अर्घ्यं श्रीपुरपार्श्वनाथचरणां भोजद्वयायोत्तमं।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरोः शिष्येण संवर्णितम्।।
तोयाद्यैर्वरनेमिदत्तयतिना स्वर्णादिपात्रस्थितं।
भक्त्या पण्डितराघवस्य वचमा कर्मक्षयार्थी ददे।।[1]

---

[1]भट्टारक सम्प्रदाय लेखांक 467, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पूजा

2.2 कृतित्व

ब्रह्मनेमिदत्त एक कुशल लेखक, रचनाकार, कवि, प्रतिष्ठाकार एवं सामाजिक व्यक्तित्व थे। आप अपने समय के एक विशिष्ट विद्वान थे। आप प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और गुजराती भाषा के विशेषज्ञ थे। उक्त सभी भाषाओं में रचनाएँ प्राप्त हैं। पुराणकाव्य और आचारशास्त्र के साथ–साथ आप पूजन के रचयिता हैं। आपकी 14–15 रचनाएँ प्राप्त हैं जिसमें से लगभग 12 रचनाओं का उल्लेख जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में है।[1] रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

1. आराधनाकथाकोश (संस्कृत)
2. नेमिनाथपुराण (संस्कृत)
3. श्रीपालचरित्र (संस्कृत)
4. सुदर्शनचरित (संस्कृत)
5. रात्रि भोजनत्यागकथा (संस्कृत)
6. प्रीतिङ्करमहामुनिचरित (संस्कृत)
7. धन्यकुमारचरित (संस्कृत)
8. नेमिनिर्वाणकाव्य – इसकी प्रति ईडरमें प्राप्त है।
9. नागकुमारकथा
10. धर्मोपदेशपीयूषवर्षश्रावकाचार (संस्कृत)
11. मालारोहिणी (हिन्दी)
12. आदित्यवारव्रतरास (गुजराती हिन्दी)
13. सीताचरित्र
14. अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पूजा
15. श्रीकथा (जयपुर)

---

[1]जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 2, पृष्ठ संख्या 630

1. आराधनाकथाकोश –

नामकरण – ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा लिखित इस कोश ग्रन्थ की सभी कथाएँ अहिंसादि व्रतों से सम्बद्ध है। सामान्य व्यक्ति भी इन कथाओं के अध्ययन से अपने चरित्र को उज्ज्वल कर सकता है। सांसारिक विषय–कषायों में निमग्न व्यक्तियों को ये कथायें आत्मोत्थान की ओर प्रेरित करती हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में कथाओं का संग्रह होने से इसका नाम कथा कोश रखा है। इस कृति का नामोल्लेख रचनाकार ने स्वयं ही कृति के प्रारम्भ में किया है–

श्रीमद्भव्याब्जसद्भानूल्लोकालोकप्रकाशकान् ।
आराधनाकथाकोशं वक्ष्ये नत्वा जिनेश्वरान् ।।1।।

कर्तृत्व– जैन साहित्य में विविध भाषाओं में अनेक कथाकोश ग्रन्थों की रचना की गयी है। जिसका अनुसरण करते हुए ब्रह्मनेमिदत्त भी ने सरल भाषा में इस कथाकोष ग्रन्थ की रचना की है, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है –

तेषां पादपयोजयुग्मकृपया श्रीजैनसूत्रोचिताः।
सम्यग्दर्शनबोधवृत्ततपसामाराधनासत्कथाः ।।
भव्यानां वरशान्तिकीर्तिविलसत्कीर्तिप्रमोदं श्रियं।
कुर्युः संरचिता विशुद्धशुभदाः श्रीनेमिदत्तेन वै ।।[1]

आधारस्रोत एवं प्रामाणिकता– वास्तव में ब्रह्मनेमिदत्त के आराधनाकथाकोश का कथा साहित्य की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। ब्रह्मनेमिदत्त के पहले भी अनेक कथाकोश ग्रन्थों की रचना हुई है जो कि निम्नलिखित है–

1. आ. हरिषेण (ई. 931) कृत 'बृहद् कथाकोश' नाम का मूल संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न 157 कथाएँ निबद्ध हैं।
2. आ. प्रभाचन्द्र (ई. 950–1020) रचित 'गद्य कथाकोश' है।
3. आ. क्षेमन्धर (ई. 1000) द्वारा संस्कृत छन्दों में रची 'बृहद् कथामंजरी' है।

[1]आराधनाकथाकोश 4.72

4. आ. सोमदेव (ई. 1061–1081) कृत 'बृहत्कथासरित्सागर' है।

5. आ. श्रुतसागर (ई. 1487–1499) कृत दो कथा कोश प्राप्त हैं– व्रतकथाकोश और बृहद् कथाकोश।

6. अपभ्रंश कवि मुनि श्रीचन्द (ई. 11वीं उत्तरार्ध) कृत 53 कथाओं वाला कथाकोश।

उक्त पूर्वाचार्यो एवं विद्वानों का अनुसरण ब्रह्मनेमिदत्त ने किया है। अनुमानतः आचार्य हरिषेण कृत 'बृहद् कथा कोश' के आधार पर ब्रह्मनेमिदत्त ने 'आराधना कथा कोश' की रचना करते हुए पूर्वाचार्यों की परम्परा का निर्वहन किया।

विषयवस्तु – इस कथाकोश ग्रन्थ में 114 कथाएँ निबद्ध हैं। सभी कथाएँ प्रथमानुयोग से सम्बन्धित हैं जिनका मुख्य उद्देश्य जीवों को पापों से छुड़ाकर धर्ममार्ग में लगाना है। यह ग्रन्थ 3 खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में 24, द्वितीय खण्ड में 38 एवं तृतीय खण्ड में 52 कथाएँ हैं। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ एवं अन्त निम्न प्रकार है –

प्रारम्भ – **श्रीमद्भव्याब्जसद्भानूलोकालोकप्रकाशकान्।**
आराधनाकथाकोशं वक्ष्ये नत्वा जिनेश्वरान्।।1।।
श्रीमूलसङ्घे वरभारतीये गच्छे बलात्कारगणेऽतिरम्ये।
श्रीकुन्दकुन्दाख्यमुनीन्द्रवंशे जातः प्रभाचन्द्र महायतीन्द्रः।।5।।

अन्त– **तेषां पादपयोजयुग्मकृपया श्रीजैनसूत्रोचिताः।**
सम्यग्दर्शनबोधवृत्ततपसामाराधनासत्कथाः ।।
भव्यानां वरशान्तिकीर्तिविलसत्कीर्तिप्रमोदं श्रियं।
कुर्युः संरचिता विशुद्धशुभदाः श्रीनेमिदत्तेन वै ।।[1]

इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो चुका है।[2] ब्रह्मनेमिदत्त के आराधनाकथाकोश का कथासाहित्य की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

---

[1] भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक 466 तथा जैनमित्र (मासिक पत्र) कार्यालय, बम्बई 1915

[2] हिन्दी अनुवादक उदयलाल जी कासलीवाल, जैन विद्यापीठ, भाग्योदय तीर्थ सागर एवं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्

2. श्रीपालचरित्र –

नामकरण – जैन साहित्य में से 70 अधिक श्रीपाल विषयक ग्रन्थों का वर्णन है। अनेक पूर्वापर विद्वानों द्वारा श्रीपालचरित्र, श्रीपालचरित, सिद्धचक्र–माहात्म्य, श्रीपाल कथा, सिरिवाल चरिउ, श्रीपालरास आदि अनेक नामों से यह ग्रन्थ रचित हैं। सम्पादनार्थ स्वीकृत प्रकृत ग्रन्थ की तीनों ही पाण्डुलिपियों के अधिकारान्त पुष्पिका और ग्रन्थान्त प्रशस्ति में 'श्रीपालचरित्र' और श्रीपालचरित नाम दोनों उल्लखित है। शास्त्र परम्परा में वर्ण्य विषय की प्रधानता के आधार पर ही वस्तु का नामकरण किया जाता है कहा भी है **प्राधान्येन हि व्यपदेशाः भवन्ति।** अतः श्रीपालचरित्र नाम ही उचित है।

कर्तृत्व– सम्पादन हेतु स्वीकृत इस ग्रन्थ के प्रथम अधिकार में लिखित है कि यह चरित श्रुतसागारादि पूर्वाचार्यों द्वारा रचित श्रीपाल चरित के आधार पर लिखा जा रहा है। प्रत्येक अधिकार के अन्त में पुष्पिका में लिखा हैं कि यह ग्रन्थ ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा लिखित है। इससे यह स्पष्ट है कि यह कृति ब्रह्मनेमिदत्त की ही है। सभी अधिकारों के अन्त में दिए गए पुष्पिका वाक्य में कवि ने स्वयं ग्रन्थ का नामोल्लेख किया है यथा–

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयं प्राप्ते श्रीपालमहाराजचरिते भट्टारक–श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य श्रीसिंहनन्दिब्रह्मश्रीशान्तिदासानुमोदिते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीपालमहामुनीन्द्रनिर्वाणगमनो नाम नवमोधिकारः समाप्तः।

आधारस्रोत एवं प्रामाणिकता– श्रीपाल की कथा का उल्लेख महापुराण, बृहद्कथाकोष आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। प्राकृत भाषा में सर्वप्रथम रत्नशेखर सूरि कृत श्रीपाल चरित उल्लखित है तदनन्तर अनेक आचार्यों और विद्वानों के द्वारा प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में श्रीपालाधारित कृतियाँ लिखी गयीं। ग्रन्थ की प्रमाणिकता का उल्लेख करते हुए ब्रह्मनेमिदत्त ने स्वयं इसी ग्रन्थ में श्रुतसागर का स्मरण करते हुए श्रुतसागर को 'पूर्वसूरि' तथा उनके द्वारा रचित श्रीपालचरित को 'पुरारचित' कहा है।

विषय वस्तु– ग्रन्थ का नाम ही इसकी विषय वस्तु को अभिलक्षित करता है। इस चरित के रचने का उद्देश्य कवि ने 'सिद्धचक्र का महात्म्य' बतलाया है। नवाधिकारों में नियोजित इस चरित्रग्रन्थ में लगभग 1470 श्लोक हैं। ग्रन्थ में श्रीपाल के जन्म से लेकर के निर्वाण पर्यन्त चरित का अंकन किया गया है। इसकी प्रशस्ति में कवि ने अपना परिचय लिखा है। भाव और शैली की दृष्टि से यह रचना पठनीय है। कथा का प्रारम्भ एवं अन्त निम्न प्रकार है –

प्रारम्भ– **नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशार्चितक्रमम् ।**
श्रीपालचरितं वक्ष्ये सिद्धचक्रार्चनोत्तमम् ।।1।।

यत्पुरा रचितं पूर्वं सूरिभिः श्रुतसागरैः ।
तदहं चापि वक्ष्यामि किमाश्चर्यमतः परम् ।।24।।

अन्त–
सम्वत्सार्द्धसहस्रे च पञ्चाशीतिसमुत्तरे ।
आषाढे शुक्लपञ्चम्यां सम्पूर्णं रविवासरे ।।135।।

ब्रह्मनेमिदत्त द्वारा विरचित इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है ऐसा अभी तक दृष्टिगत नहीं है। इस शोध ग्रन्थ के पूर्ण होने पर एक नया ग्रन्थ पाठकों के स्वाध्याय हेतु उपलब्ध होगा, ऐसी भावना है।

3. नेमिनाथपुराण[1]–

नामकरण – संस्कृत साहित्य में पुराण शब्द का अर्थ है पुराना आख्यान। अथर्ववेद के सायण भाष्य के अनुसार– **पुराणं पुरातनवृत्तान्तकथनरूपमाख्यानम्।** जिनसेनाचार्य ने पुराण की व्याख्या **'पुरातनं पुराणं स्यात्'**[2] से की है। जैनदर्शन के बाईसवें तीर्थंकर और ऐतिहासिक पुरुष का आख्यान होने से यह पुराण और नेमिनाथ का होने से यह ग्रन्थ 'नेमिनाथ पुराण' अपने इस नाम को सार्थक करता है।

[1]जिनरत्नकोश पृष्ठ संख्या 218
[2]महापुराण (आदिपुराण) जिनसेनाचार्य

कर्तृत्व– ब्रह्मनेमिदत्त ने ग्रन्थ के आदि में भगवान नेमिनाथ को नमस्कार करते हुए उनका पुराण अर्थात् नेमिनाथ पुराण कहने की प्रतिज्ञा की है इससे यह सम्यक् प्रकार से ज्ञात होता है कि यह पुराणग्रन्थ आपके द्वारा ही लिखा गया है।

श्रीमन्नेमिजिनं नत्वा लोकालोकप्रकाशकम् ।
तत्पुराणमहं वक्ष्ये भव्यानां सौख्यदायकम् ।।

आधारस्रोत एवं प्रामाणिकता – बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्रों की प्राप्ति विपुलता से विविध भाषाओं में है। संस्कृत में सर्वप्रथम सूराचार्य ने सं. 1090 में नेमिनाथ चरित नामक द्विसन्धानात्मक काव्य रचा है इसका अर्थ तीर्थंकर ऋषभनाथ पर भी घटित होता है। प्राकृत रचनाओं में जिनेश्वरसूरी का नेमिनाथ चरित सं. 1175 की कृति है। वाग्भट (12वीं सदी) कृत नेमिनिर्माणकाव्य 15 सर्गों में विभक्त महाकाव्य शैली की एक उत्कृष्ट रचना है। अपभ्रंश में हरिभद्र का नेमिणाहचरिउ (सं. 1216) है। भोजसागर, नरसिंह, हरिषेण और मंगसर की भी कृतियां मिलती है। उक्त परम्परा का अनुसरण करते हुए ब्रह्मनेमिदत्त ने भी नेमिनाथ पुराण की रचना की है।

विषय वस्तु – प्रकृत पुराणग्रन्थ में भगवन्नेमिनाथ के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और मोक्ष इन पाँचों कल्याणकों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इस ग्रन्थ में नेमिनाथ की अपूर्व शक्ति से प्रभावित होकर राजनीतिज्ञ कृष्ण द्वारा प्रस्तुत की गयी कूटनीति का भी चित्रण है जिसके फलस्वरूप नेमिनाथ विरक्त होते हैं। बिलखती हुई राजुल के आँसुओं का प्रभाव भी उन पर नहीं पड़ता। कवि ने सभी मर्मस्पर्शी कथांशों का उद्घाटन किया है। अन्त में इस चरित को मोक्षप्रद बताया गया है। लिखा है –

यस्योपदेशवशतो जिनपुंगवस्य।
नेमिपुराणमतुलं शिवसौख्यकारी ।।
चक्रे मयापि मतितुच्छतयात्र भवत्या ।
कुर्यादिदं शुभमतं मम मंगलानि ।।

ब्रह्मनेमिदत्त विरचित नेमिनाथ पुराण का मूल प्रकाशन (श्लोक सहित) देखने में नहीं आया है। परन्तु इसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गान्धी चौक, सूरत से हुआ है जिसके अनुवादकर्ता पण्डित उदयलाल जी कासलीवाल हैं।

4. सुदर्शनचरित –

नामकरण – णमोकार मंत्र के माहात्म्य को मुख्य रखकर भगवान महावीर की परम्परा में पंचम अन्तःकृत केवली सुदर्शन मुनि के चरित का वर्णन इसमें किया गया है। सुदर्शन मुनि के सम्पूर्ण जीवन चरित का वर्णन होने से ग्रन्थ का 'सुदर्शनचरित' यह नाम अपनी सार्थकता को व्यक्त कर रहा है।

कर्तृत्व –सुदर्शनचरित के रचयिता ब्रह्मनेमिदत्त हैं।[1] यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध सुदर्शनचरित के रचयिता में ब्रह्मनेमिदत्त के गमक गुरु आचार्य मुमुक्षु विद्यानन्दि का नाम आता हैं। पर एकादश अधिकार के अन्त में ब्रह्मनेमिदत्त का नाम आया है।

गुरूणामुपदेशेन सच्चरित्रमिदं शुभम्।
नेमिदत्तो व्रती भक्त्या भावयामास शर्मदम् ।।[2]

इस पद्य में भावयामास पद आया है। जिसका अर्थ प्रकट किया, प्रदर्शित किया या पालन–पोषण किया है। उक्त श्लोक के आधार पर कुछ विद्वान यह कहते हैं कि सुदर्शनचरित के दश अधिकार मुमुक्षु विद्यानन्दि द्वारा विरचित हैं और 11वें अधिकार के रचयिता ब्रह्मनेमिदत्त हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि यहाँ भावयामास का अर्थ रचा गया न होकर संशोधन या सम्बद्धन किया गया होना चाहिये। अतः उक्त कथन के आधार पर ब्रह्मनेमिदत्त सुदर्शनचरित के रचयिता न होकर उसके संशोधनकर्ता या सम्पादक प्रतीत होते हैं।

आधारस्रोत एवं प्रामाणिकता – सुदर्शन मुनि भगवान महावीर की परम्परा में पंचम अन्तःकृत केवली हुए हैं। सुदर्शन मुनि के जीवन चरित्र का सर्वप्रथम संकेत

[1]जिनरत्नकोश, भाग 1, पृष्ठ संख्या 444
[2]सुदर्शन चरित, भारतीय ज्ञानपीठ 9.51

भगवती आराधना में प्राप्त होता है।[1] तदनन्तर हरिषेण कृत बृहद कथाकोश और श्री मुनिचन्द कृत कहाकोसु में इनकी कथा का उल्लेख है। इस विषय की स्वतन्त्र रचना अपभ्रंश भाषा में नयनन्दि कृत सुदंसणचरिउ (वि. सं. 1100) है। उक्त प्रमाणों के आधार पर प्रमाण–पुरुष के चरित का वर्णन कवि ने किया है।

विषयवस्तु – सुदर्शनचरित द्वादश अधिकारों में विभक्त 1362 पद्यों में पूर्ण हुआ है। प्रथम अधिकार में 24 तीर्थंकरों की स्तुति, राजा श्रेणिक एवं समवशरणादि का वर्णन है। द्वितीयादि अधिकारों में क्रमशः श्रावकाचार का उपदेश, सुदर्शन का जन्म, सुदर्शन–मनोरमा विवाह, सुदर्शन को श्रेष्ठी पद की प्राप्ति, कमला का प्रलोभन और रानी अभयमति का व्यामोह, अभयाकृत उपसर्ग निवारण और शील प्रभाव वर्णन, सुदर्शन व मनोरमा का पूर्वभव वर्णन, द्वादशानुप्रेक्षा वर्णन, सुदर्शन का दीक्षाग्रहण, तप, केवलज्ञानोत्पत्ति और अन्त सुदर्शन की मोक्ष प्राप्ति के साथ सिद्धों के गुण एवं पंचनमस्कार मन्त्र के माहात्म्य का वर्णन है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्त निम्न प्रकार है –

मंगलाचरण (प्रथम छन्द)

प्रणम्य वृषभं देवं लोकालोकप्रकाशकम् ।
अजितं जित शत्रुघ्नं जितशत्रुसमुद्भवम् ।।

अन्त

तत्पादपट्टेऽजनि मल्लिभूषणगुरुश्चारित्रचूडामणिः,
संसाराम्बुधितारणैकचतुरश्चिन्तामणिः प्राणिनाम्।
सूरि श्री श्रुतसागरो गुणनिधिः श्री सिंहनन्दी गुरुः,
सर्वे ते यति सन्तमाः शुभतराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्।।50।।

गुरूणामुपदेशेन सच्चरित्रमिदं शुभम् ।
नेमिदत्तो व्रती भक्त्या भावयामास शर्मदम् ।।51।।

सुदर्शनचरित ग्रन्थ का प्रकाशन हो चुका है। प्रथम, डॉ. हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित एवं भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित है। द्वितीय, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् प्रकाशित है, जिसके अनुवादकर्ता डॉ रमेशचन्द्र जैन हैं।

[1]भगवती आराधना, आचार्य शिवाय, 76

5. **धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार –**

नामकरण – ब्रह्मनेमिदत्त ने इस ग्रन्थ का मंगलाचरण करते हुए लिखा है कि सद्धर्म का उपदेश भव्यजीवों के कल्याण के लिये लिखते हैं। मंगलाचरण में 'सद्धर्म देशयाम्येष' शब्द ग्रन्थ के नाम को इंगित करता है–

श्री सर्वज्ञं प्रणम्योच्चैः केवलज्ञानलोचनम्।
सद्धर्मं देशयाम्येष भव्यानां शर्महेतवे ।।

श्रावकों के आचरण से सम्बन्धित वर्णन होने से श्रावकाचार, जिनेन्द्र द्वारा कथित एवं धर्म का स्वरुप वर्णित होने से धर्मोपदेश और हितकारी एवं अविनाशी सुखामृत का पान कराने में समर्थ होने से पीयूषवर्ष इस प्रकार अपने नाम की सार्थकता को लिए हुए यह धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ संसार में राग–द्वेष से सन्तप्त जीवों को धर्मोपदेश रूपी अमृत पान कराकर, वीतरागी मार्ग में नियोजित करता हुआ, निश्चित रूप से स्वनाम को सार्थक करता है।

कर्तृत्व – ब्रह्मनेमिदत्त ने स्वयं ही इस ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति में एवं अन्तिम पुष्पिका वाक्य में अपने कृतित्व का वर्णन किया है अतः निर्विवाद रूप से धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार आपके द्वारा लिखा गया है यह स्पष्ट होता है। अन्त का पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार है–

इति धर्मोपदेशपीयूषवर्षनामश्रावकाचारे भट्टारक श्रीमल्लिभूषणशिष्य–ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सल्लेखनाक्रमव्यावर्णनो नाम पञ्चमोऽधिकारः ।।

आधारस्रोत एवं प्रामाणिकता – जैनदर्शन में श्रावकों के आचरण को दृष्टि में रखते हुए श्रावकाचार ग्रन्थों की रचना हुई है। इस परम्परा के प्रणेता आचार्य समन्तभद्र माने जाते है जिन्होंने विक्रम की 2–3 सदी में रत्नकरण्ड श्रावकाचार की रचना की। पश्चातवर्ती अनेक आचार्यों व विद्वानों ने इस ग्रन्थ के आधार पर श्रावकाचार ग्रन्थों की रचना की। इस परम्परा में पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, सागारधर्मामृत, वसुनन्दि श्रावकाचार, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थ लिखे गये।

ब्रह्मनेमिदत्त ने भी इसी परम्परा का निर्वहन करते हुए धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार की रचना की।

विषयवस्तु – यह ग्रन्थ पाँच अधिकारों में विभक्त है। पहले अधिकार में सम्यग्दर्शन का स्वरूप, 8 अंग और 25 दोषों का वर्णन है। दूसरे अधिकार में सम्यग्ज्ञान, चार अनुयोग एवं द्वादशांग श्रुत के पदों की संख्या का वर्णन है। तीसरे में अष्टमूलगुण, चौथे में बारह व्रत, मंत्र, जाप, जिनबिम्ब और जिनालय के निर्माण का फल बताकर 11 प्रतिमाओं का निरूपण है। पाँचवें अधिकार में सल्लेखना का वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ में श्रावकों के मूलगुण और उत्तर गुणों का विवेचन करने के पश्चात् व्रतों के अतिचारों का निरूपण किया गया है। श्रावक की दैनिक षट्–क्रियाओं, पूजा–भक्ति एवं आराधना आदि का भी उल्लेख है। ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्त निम्न प्रकार है –

मंगलाचरण –

श्री सर्वज्ञं प्रणम्योच्चैः केवलज्ञानलोचनम्।
सद्धर्म देशयाम्येष भव्यानां शर्महेतवे ।।

ग्रन्थकारप्रशस्तिः[1]

गच्छे श्रीमति मूलसङ्घतिलके सारस्वतीये शुभे।
विद्यानन्दिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः।।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सिद्धान्तसिन्धुर्महां–
स्तच्छिष्यो मुनिसिंहनन्दिसुगुरुर्जीयात् सतां भूतले।।

लेखकानां वाचकानां पाठकानां तथैव च ।
पालकानां सुखं कुर्यान्नित्यं शास्त्रमिदं शुभम् ।।[2]

यह ग्रन्थ अभी तक स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित नहीं हुआ है। सर्वप्रथम इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्री हीरालाल शास्त्री साढूमल द्वारा सम्पादित श्रावकाचार संग्रह[1] में है, जो कि जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर द्वारा प्रकाशित है।

---

[1]श्रावकाचार संग्रह, भाग 2, पृष्ठ संख्या 500

[2]धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार 5.19–21

मालारोहिणी (फुल्लमाल)–

नामकरण – ब्रह्मनेमिदत्त विरचित यह रचना भावपूर्ण एवं सरस है। इस रचना का अपरनाम फुल्लमाल है मुक्ति रूपी वधू को वरण करने के लिए विभिन्न प्रकार की मालों का यहाँ प्रतीक रूप में वर्णन किया गया है जो कि इस रचना के 'मालारोहिणी' इस नाम को सार्थक करता है। रचना के नाम का उल्लेख कवि ने स्वयं ही रचना के प्रारम्भ में किया है।

सकल जिणेसर पय कमल, पणविवि जगि जयकार ।
फुल्लमाल जिणवरतणी, पभणउं भवियण ताइ ।।1।।

कर्तृत्व – इस प्रकार की विषय वस्तु को लिए हुए यह एक विशेष रचना है। रचना के अन्त में ब्रह्मनेमिदत्त का और इनके गुरू का नाम उल्लखित है इससे यह स्पष्ट है कि उक्त रचना ब्रह्मनेमिदत्त की ही है।

श्रीमूलसंघ मंगल करण मल्लिभूसण गुरु गुण विमल।
श्री सिंहनन्दि अभिनन्द करि नेमिदत्त पणइ सकल ।।

आधारस्रोत एवं प्रामाणिकता – मालारोहिणी एक सुन्दर और सरस रचना है, जो कि अपनी विषय वस्तु से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। रचना सरल और प्रभावक है। बुन्देलखण्ड (मध्य प्रदेश) में जहां कहीं भी जिनेन्द्रोत्सव, कलशाभिषेक, बृहत्पूजा पाठ और प्रतिष्ठादि कार्य सम्पन्न होते हैं उस समय कविवर विनोदीलाल की फूलमाल पच्चीसी अवश्य पढ़ी जाती है और उसकी बोली भी बोली जाती है और जो अधिक से अधिक बोली लगाता है फूलमाल उसे ही प्राप्त होती है।

कवि विनोदीलाल ने उसमें 64 उपजातियों का समुल्लेख किया है। विनोदीलाल कृत फूलमाल 18वीं शताब्दी की है जबकि प्रस्तुत मालारोहिणी 16वीं शताब्दी की रचना है। इससे ज्ञात होता है कि गुजरात आदि देशों में उस समय भी यह प्रथा प्रचलित थी।

[1]श्रावकाचार संग्रह, भाग 4, प्रस्तावना

विषयवस्तु – मालारोहिणी के प्रारम्भ में वृषभादि चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है उसके बाद मूलसंघ के रत्नाकर निर्ग्रंथ गुरु श्रुतसागर को नमस्कार कर फूलमाल को कहने की प्रतिज्ञा की है और उसे मनुष्य भव का सार बतलाया है। पश्चात् मोगरा, पारिजात, चम्पा, जूही, चमेली, मालती, मचकुन्द, कदम्ब तथा रक्तकमल आदि सुगन्धित पुष्प समूहों से गुम्फित जिनेन्द्रमाल को स्वर्ग–मोक्ष सुखकारिणी बतलाया है। धन, सम्पत्ति, यौवन, पुत्र, कलत्र आदि को क्षणविध्वंसी बताकर दान देने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया गया है।

जो व्यक्ति संसार के समस्त ऐश्वर्य को प्राप्तकर प्रभु–भक्ति और तीर्थकरों के चरणों की आराधना नहीं करता, वह अपने जन्म को निरर्थक व्यतीत करता है। इस पंचम काल में तीर्थंकर–भक्ति ही आत्मोत्थान का साधन है इसलिए 'निर्मलमाल' लेकर अपनी कीर्ति को उज्ज्वल बनाने की प्रेरणा प्रस्तुत कृति में है। रचनांश निम्नप्रकार है–

प्रारम्भ–

सकल जिणेसर पय कमल, पणविवि जगि जयकार।
फुल्लमाल जिणवरतणी, पभणउं भवियण ताइ ।।1।।

वृषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति जिणेसर पाप निकंदन।
पद्म प्रभु जिन नामें गज्जउँ श्रीसुपास चंदप्पह पुज्जउँ।।2।।

पासणाह भव–पास–निवारण, वडढमाण जिण तिहुवण तारण
ए चउवीस जिणेसर वंदि वि, शिव गामिण सारद अभिनन्दिवि।।5।।

रचना का अन्तिमांश निम्नलिखित है –

रोग–सोग दालिद्दु दुक्खु णवि णीहुउ आवइ ।
जिणवर पाय पसाह जीव वांछित फल पावइ ।।
श्रीमूलसंघ मंगल करण मल्लिभूसण गुरु गुण विमल।
श्री सिंहनन्दि अभिनन्द करि नेमिदत्त पणइ सकल ।।

उक्त रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसका उल्लेख श्री परमानन्द जैन शास्त्री ने अनेकान्त पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'ब्रह्म नेमिदत्त और उनकी रचनाएँ' में किया है।[1]

[1]अनेकान्त पत्रिका, वर्ष 18, किरण 2, पृष्ठ संख्या 82

6. आदित्यव्रतरास (रविव्रत कथारास) –

नामकरण– आदित्यव्रतरास या रविव्रत कथारास में रविव्रत की वही कथा वर्णित है, जो अन्यत्र पायी जाती है। रचना के नाम से ही इसकी विषयवस्तु का बोध होता है। कवि ने स्वयं रचना में रचना का नामोल्लेख किया है। प्रायः गुजराती भाषा की रचनाओं में रास शब्द का प्रयोग मिलता है यहाँ भी गुजराती भाषा होने से रास शब्द प्रयुक्त है। रचना के अन्त में इन्होंने अपना नामोल्लेख किया है अतः यह रचना आपकी ही है।

विषय वस्तु – इसमें 109 पद्य है। गुजराती मिश्रित हिन्दी में यह रचना लिखी गयी है। इस रास की भाषा में अनेक गुजराती भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे नमीएचंगनु, बखाणसु आादि जिनसे स्पष्ट मालूम होता है कि रचना गुजरात प्रदेश में हुई है।

रचना का आद्यन्त इस प्रकार है –

आदि – पास जिनेसर पयकमल प्रणमिवि परमानंदनु।
भव–सायर–तरण–तारण भवीयण सुह्रतरु कंदनु ।।
श्री सारदा सहि गुरू नमीए निर्मल सौख्य निधाननु।
आदित्य व्रत वखाणसुं ए जिन शासन परधाननु ।।

अन्त – श्री जिनवर चरण कमल नमीए ब्रह्म नेमिदत्त भणिचंगनु।
ए व्रत जे भवियण करिए ते लहि सौख्य अभंगनु ।।
मन वांछित सम्पदा लहिये ते नर नारी सुजाणनु ।
इम जाणि पास जिण तणु ए रविव्रत करु भुवि जाणतू ।।

उक्त रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसके आद्यन्त के कुछ अंश का उल्लेख श्री परमानन्द जैन शास्त्री ने अनेकान्त पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'ब्रह्म नेमिदत्त और उनकी रचनाएँ' में किया है।

7. रात्रिभोजनत्यागकथा (श्रीनागश्री कथा) –

रात्रिभोजनत्याग व्रत का महत्त्व बतलाने के लिए यह कथा लिखी गई। इसका मूलनाम कथा के अन्त में पुष्पिकावाक्य में श्रीनागश्री कथा प्रदत्त है।

ब्रह्मनेमिदत्त ने कथा के मध्य में रात्रिभोजन के दोषों का भी निरूपण किया है। अन्त में पुष्पिकावाक्य निम्नप्रकार है–

इति भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य श्रीसिंहनन्दिगुरूपदेशेन ब्रह्मनेमिदत्त–विरचिता रात्रिभोजन–परित्यागफलदृष्टान्त–श्रीनागश्री कथा समाप्ता ।

रचना का आदि और अन्त इस प्रकार है –

प्रारम्भ– **श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं भारतीं भुवनोत्तमाम् ।**
नत्वा गुरून् प्रवक्ष्येऽहं रात्रिभोजनवर्जनम् ।।

अन्त– **जिनपतिमुखपद्मात् निर्गता दिव्यभाषा।**
मुनिपतिशतसेव्या सारतत्त्वप्रकाशा।।
कुमतितिमिरनाशाभानुमेव प्रशस्या।
दिशतु मम सुखानि सर्वलोकैक भूषा।।1।।

श्री भट्टारक मल्लिभूषणगुरुः सूरिश्रुताब्धिः सुधी।
आचार्यो वरसिंहनन्दी सुगुरुः कुर्यात्सतां मंगलम्।।[1]

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त आपके द्वारा लिखित निम्न रचनाओं का उल्लेख भी विभिन्न इतिहास ग्रन्थों में मिलता है परन्तु इन रचनाओं के सन्दर्भ में विशेष जानकारी अब तक उपलब्ध नहीं है जो कि ज्ञान भण्डारों में अन्वेषणीय है।

8. **धन्यकुमारचरित**[2] **(संस्कृत) (ईडर)–** यह 5 सर्गात्मक ग्रन्थ है जिसमें धन्यकुमार का चरित वर्णित है।
9. **प्रीतिङ्करमहामुनिचरित्र –** यह भी 5 सर्गात्मक ग्रन्थ है जिसमें महामुनि प्रीतिंकर का चरित्र चित्रित किया है।
10. **सीताचरित्र**[3] **–** एक सीताचरित नामक चरित काव्य भी इनके द्वारा लिखित उल्लिखित है।
11. **नेमिनिर्वाणकाव्य –**इसकी प्रति ईडर में प्राप्त है।
12. **नागकुमारकथा**

---

[1]जयपुर और नागपुर के ग्रन्थ भण्डार, पृष्ठ संख्या 99
[2]जिनरत्नकोश, पृष्ठ संख्या 187
[3]जिनरत्नकोश, पृष्ठ संख्या 442

13. अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पूजा[1]

14. श्री कथा (जयपुर)

इस प्रकार ब्रह्मनेमिदत्त पुराणकाव्य और आचारशास्त्र के रचयिता हैं। इनके ग्रन्थों में मौलिकता की कमी हो सकती है पर पूर्वाचार्यों एवं विद्वानों का अनुसरण करते हुए पुराने कथानकों को ग्रहण कर उसे अपनी शैली में निबद्ध करने का सार्थक प्रयास आपके द्वारा किया गया है।

[1]जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 513 और भट्टारक सम्प्रदाय (लेखांक 466–67)

तृतीय अध्याय

श्रीपालचरित्र : कथावस्तु, मूलस्रोत, परम्परा एवं अन्य साहित्य

तृतीय अध्याय

श्रीपालचरित्र : कथावस्तु, मूलस्रोत, परम्परा एवं अन्य साहित्य

ब्रह्मनेमिदत्त की समस्त रचनाओं में श्रीपालचरित्र एक विशिष्ट रचना है। इसमें जैन सिद्धान्तों की अविरल धारा, विषयों की विविधता, नीति परक सूक्तियों का आधिक्य, पात्रों में समन्वय, अन्याय पर न्याय की विजय, भाषा का सौष्ठव, भोग से त्याग का नियमन, धैर्य एवं सहिष्णुता की पराकाष्ठा, नारियों की शील के प्रति सजगता, संस्कृति और कला आदि के विभिन्न अपरिहार्य तत्त्वों का समुचित समावेश किया गया है।

3.1 कथा वस्तु

महापुरुष राजा श्रीपाल के जीवन चरित को ब्रह्मनेमिदत्त ने विशदता व स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत काव्य में राजा श्रीपाल और मदनसुन्दरी के पूर्वभव, वर्तमान भव और उनके सम्बन्धियों का वर्णन है। इसमें राजा श्रीपाल व मदनसुन्दरी द्वारा किये सिद्धचक्र विधान के महात्म्य आदि का वर्णन है। नवाधिकारों निबद्ध श्रीपालचरित्र की संक्षिप्त विषयवस्तु इस प्रकार है—

प्रथमोऽधिकार :— पीठिका वर्णन—

इस अधिकार में 161 श्लोक हैं। प्रारम्भ में चौबीस तीर्थंकरों, जिनवाणी, सिद्धभगवन्तों, मुनियों के साथ—साथ ब्रह्मनेमिदत्त ने अपने गुरुओं को नमन करते हुए मंगलाचरण किया तथा स्वयं को अल्पज्ञ मानते हुए भी भक्तिवश श्रीपालचरित्र रचने की भावना भाते हुए प्रस्तावना की है। यह अधिकार बहुत ही सुन्दर उपमाओं और अलंकारपूर्ण भाषा से परिपूर्ण है। प्रत्येक तीर्थंकर के नामस्मरण में उनके द्वारा किये गये उपकारों को परिलक्षित करते हुए उन्हें नमन किया गया है। अन्त में चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना करते हुये कृतिकार लिखते हैं—

एते तीर्थकराधीशाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः।
सार्द्धद्वीपद्वयोत्पन्नाः सन्तु मे शान्तये जिनाः।।[1]

पश्चात् अष्ट कर्म विनिर्मुक्त, लोकशिखरारुढ अनन्त सिद्धों की आराधना करके, सूर्य के समान मिथ्यातम नाशक, भव्य जीवों के लिए नेत्रवत्, तत्त्वप्रकाशक, निर्मल जिनवाणी की वन्दना और रत्नत्रय से विभूषित मुनियों को नमस्कार किया है। गुरु परम्परा का निर्वहण व कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कृतिकार ने स्वगुरु मल्लिभूषण व अन्य गुरुओं को नमन किया।

ग्रन्थ का प्रारम्भ करने के पूर्व ग्रन्थ की प्रामाणिकता और ग्रन्थ लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुये कहते हैं–

यत्पुरा रचितं पूर्वं सूरिभिः श्रुतसागरैः।
तदहं चापि वक्ष्यामि किमाश्चर्यमतः परम्।।

यस्य श्रवणमात्रेण चरितेन विशेषतः।
पापराशिः क्षयं याति भास्करेणेव दुस्तमः।।

इत्यादिकं हृदि ज्ञात्वा प्रभावं भुवनोत्तमम्।
सिद्धचक्रव्रतस्योच्चैस्तच्चरित्रं समुच्यते ।।[2]

इसके पश्चात् सिद्धचक्र की महिमा का वर्णन करते हुए मगध देश की राजधानी राजगृही की शोभा के साथ राजा श्रेणिक का वर्णन किया है ।

एवं शोभाशतैर्युक्ते तस्मिन् राजगृहे पुरे ।
राजाभूच्छ्रेणिको नाम सम्यग्दृष्टिः शिरोमणिः।।

कल्पवृक्षो जडश्चिन्तामणिः पाषाणमेव च ।
कामधेनुः पशुः किं तैः समोऽयं क्रियते नृपः।।

यो विज्ञानी सुधीर्ज्ञाता दाता वाञ्छातिरेकतः।
गम्भीरस्सागराच्चापि महिम्ना मेरूतो महान् ।।[3]

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.15
[2]श्रीपालचरित्र 1.24,25,30
[3]श्रीपालचरित्र 1.60,63,64

तदनन्तर चार प्रकार की विद्याएँ, सात राज्यांग, राज्य के ही छह अंग, भगवान महावीर के समवशरण सहित राजगृह में आगमन की सूचना, राजा का समवशरण में पहुँचना, अष्टप्रातिहार्य युक्त समवशरण की शोभा आदि के चित्रण के साथ जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि का विशेष वर्णन है।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतीति नामभाक्।
राजविद्याश्चतस्रोऽपि तस्याभूवन् फलप्रदाः ।।

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषदुर्गदेशबलं तथा ।
सप्ताङ्गराज्यमित्याहुर्नीतिशास्त्रविचक्षणाः।।[1]

दिव्यध्वनि के माध्यम से जीवतत्त्व को मुख्यकर समस्त तत्त्वों एवं गुणस्थान मार्गणास्थान आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। महाराज श्रेणिक द्वारा किये गए अनेक प्रश्नों में से सिद्धचक्र व्रत से सम्बन्धित प्रश्न के उत्तर स्वरुप प्रकृत चरित्र की रचना हुई।

इत्येवं नृसुरासुरौघविलसन्माणिक्यमौलिप्रभा।
पानीय प्रविधौतपूत विकसत्पादाब्जयुग्मस्तदा।
श्रीमद्वीरजिनेश्वरो भयहरो भव्यौघनिस्तारकः।
श्रीमच्छ्रेणिकभूपतिं प्रतिसभां श्रीपालवृत्तं जगौ ।।[2]

द्वितीयोऽधिकार :– मदनसुन्दरी विवाह वर्णन–

इस अधिकार में 137 श्लोक है। श्रीपालचरित्र का मूल प्रारम्भ इसी अध्याय से होता है। इस अध्याय में अवन्ति देश एवं उज्जयिनी नगरी की विशिष्ट महिमा, नगरी में बने हुए मन्दिरों का वर्णन एवं जिनेन्द्र दर्शन की महिमा का बखान किया गया है ।

येषां दर्शनमात्रेण पापं याति क्षयं क्षणात्।
भास्करेणेव भव्यानां तत्कालं रात्रिजं तमः।।[3]

---

[1]श्रीपालचरित्र 1.69,72
[2]श्रीपालचरित्र 1.161
[3]श्रीपालचरित्र 2.37

तदनन्तर राजा प्रजापाल और रानी सौभाग्यसुन्दरी की पुत्री सुरसुन्दरी और मदनसुन्दरी (मैनासुन्दरी) का वर्णन है। सुरसुन्दरी शैव मतानुयायी शिवशर्मा ब्राह्मण के पास विद्याध्ययन करने के कारण यज्ञ, याग, कोकशास्त्र–गोपुच्छ पूजादि विषयक शास्त्रों में, सोमपान, बलि, मांसभक्षण, मन्त्र–तन्त्रादि का विधान करने वाले ग्रन्थों में एवं मिथ्याप्रपंचों में श्रद्धान करने लगी। मदनसुन्दरी ने यमधर मुनिराज के पास धर्म श्रवण और विद्याध्ययन किया। जिनेन्द्रोक्त काव्य, छन्द, व्याकरण, धर्मसिद्धान्त आदि का गहन अध्ययन किया तथा अष्टमूलगुण धारण कर श्रेष्ठ रीति से कर्म का पालन करने लगी।

दोनों पुत्रियों को विवाह योग्य जानकर पिता द्वारा पूछे जाने पर बड़ी पुत्री सुरसुन्दरी ने अहिक्षेत्राधिपति पुत्र अरिदमन के साथ विवाह किये जाने की बात कही। किन्तु मदनसुन्दरी ने कहा कि हमारे कर्मानुसार जैसा पति मुझे मिलेगा, वह मान्य है आप जिसे उचित समझें, वही मुझे स्वीकार है। स्वकर्मानुसार जीव को सम्पदा प्राप्त होती है –

यस्मै पिता ददातीह स्वपुत्रीं गुणशालिनीम्।
भर्त्ता स एव लोकेऽस्मिन् न्यायोऽयं कुलयोषिताम्।।

अतः पूर्वं प्रमाणं मे त्वमेवात्र विचक्षणः।
पश्चान्मे कर्मपाकेन यद्भावीह भविष्यति।।[1]

यह बात सुनकर पिता क्रोधित हो गए क्योंकि पिता ने मेरा पालन पोषण कर मुझे सुयोग्य बनाया है ऐसी बात मैनासुन्दरी ने नहीं कही। वनविहार करते हुए राजा प्रजापाल ने सात सौ कुष्ठियों के साथ कुष्ठ से पीड़ित श्रीपाल को देखा और क्रोधावेश में उसी कुष्ठी के साथ मदनसुन्दरी का विवाह कर दिया। उस परिस्थिति में विलक्षण धैर्य धारण करने वाली मदनसुन्दरी अपनी माता और बहन को धैर्य बँधाती है तथा सब कुछ कर्मानुसार ही होता है ऐसा कहकर संतोष धारण करती है। वह सदा पति की सेवा में तत्पर रहती है।

---

[1]श्रीपालचरित्र 2.88,89

शुभाशुभं भवेन्नित्यं जन्तूनां कर्मपाकतः।
किं करोत्यथवा लोके पितामाता च बान्धवाः।।[1]

विवाह के बाद नगरवासियों में लोकनिन्दा का पात्र हुआ राजा प्रजापाल भी पश्चाताप करने लगा। नगर के निकट सात मंजिल महल की व्यवस्था श्रीपाल के लिए कर दी। पिता ने विवाह में पुत्री को भरपूर धन सम्पदा दी किन्तु अहंबुद्धि के कारण लोकनिन्दा का पात्र बन गया।

यो विचारं विना कार्यं करोति मतिवर्जितः।
पश्चात्तापेन पापेन तप्यते स यथाक्रमम्।।[2]

इस प्रकार मदनसुन्दरी के विवाह का समुल्लेख करते हुए दूसरा अधिकार समाप्त हो गया।

तृतीयोऽधिकार :— श्रीपालराज धर्मश्रवण श्रीसिद्धचक्रपूजन समस्तव्याधिविनाश राजसम्मानादि वर्णन—

तृतीय अधिकार में 226 श्लोक हैं। इस अधिकार में वर्णित है कि मदनसुन्दरी एक आदर्श धर्मपत्नी के रूप में पति की उत्तम प्रकार से सेवा करती है। पंचपरमेष्ठी की भक्ति तथा श्री सिद्धचक पूजा विधान के निमित्त से पतिदेव एवं समस्त कुष्ठी वर्ग निरोग हो जाता है। मैनासुन्दरी ने सुगुप्ताचार्य मुनिराज के समक्ष अशुभकर्मोदयजन्य दुःख प्रकटकर उससे मुक्ति का उपाय पूछा। फलस्वरूपमुनिराज ने धर्मोपदेश दिया जिसका उल्लेख सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्राधिकार नाम से तीन उपाधिकारों में है।

भो सुते सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति जिनधर्मतः।
स्वर्गोमोक्षश्च धर्मेण का वार्ता परवस्तुषु ।।

धर्मश्चिन्तामणिर्लोके धर्मः कल्पतरुर्महान्।
धर्मः कामदुघा धेनुधर्मो बन्धुर्जगत्त्रये ।।
धर्मः संसारवाराशौ पोतोऽयं भव्यदेहिनाम्।
धर्मो मातापिता मित्रं धर्मो निधिरनुत्तरः ।।

[1]श्रीपालचरित्र 2.131
[2]श्रीपालचरित्र 2.130

सम्यक्त्वज्ञानवृत्तानि धर्मं प्राहुर्गणाधिपाः ।
योऽत्र भव्यान् समुद्धृत्य धरत्युच्चैः पदे सुखम्।।[1]

अष्टमूलगुण, पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, जलगालन विधि, रात्रि भुक्तित्याग व्रत, दानविधि, दान का फल, देव का स्वरूप, पूज्य–पूजक, पूजा का फल, षट्कर्म पालन और सल्लेखना का वर्णन किया। श्री सिद्धचक्र व्रत की महिमा, विधि, स्तुति, जाप और यन्त्रनिर्माण विधि का भी उल्लेख किया।

षट्त्रिंशदंगुलं वस्त्रं चतुर्विंशति विस्तृतम् ।
तद्वस्त्रं द्विगुणीकृत्यतोयं तेन तु गालयेत् ।।

तस्मात्तोयं समानीतं गालयित्वातियत्नतः ।
तज्जीवसंयुतं तोयं पुनस्तत्रैवमुच्यते ।।

आहारौषधशास्त्रदानमभयं दानं सुपात्रे त्रिधा ।
ये भव्या निजशक्तिभक्तिसहिता नित्यं शुभं कुर्वते ।।
ते भव्या धनधान्यमान्यविभवं भुक्त्वा चिरं पावनम् ।
पश्चात्स्वर्गसुखं समाप्य सततं मोक्षं लभन्ते परम् ।।[2]

मुनि कथित व्रतों को यथाविधि पालन कर, प्रभावना के साथ श्री सिद्धचक पूजा विधान कर जिनभक्ति परायणा मैनासुन्दरी ने उत्तम अभीष्ट फल को प्राप्त कर लिया अर्थात् सब रोग रहित हो गये। कामदेव के समान पति को देखकर मैनासुन्दरी बहुत प्रसन्न हुई। पुत्र के रोग रहित हो जाने का समाचार पाकर श्रीपाल की माता का आगमन हुआ।

मदनसुन्दरी द्वारा पतिदेव का परिचय पूछने पर माता कहती है कि हे पुत्री! तुम श्रीपाल को चम्पापुरी के सिंहसेन राजा और कमलावती महिषि का पुत्र जानो। पिता सिंहसेन का स्वर्गवास हो जाने पर बालक श्रीपाल को राजगद्दी पर बैठा दिया गया किन्तु चाचा वीरदमन के द्वारा श्रीपाल को मारने का षड्यन्त्र रचे जाने पर पुत्र की रक्षार्थ वाराणसी भाई के घर में आ गई। वहाँ देवयोग से

---

[1]श्रीपालचरित्र 3.21,22,23,25
[2]श्रीपालचरित्र 3.41,42,63

श्रीपाल को कुष्ट रोग होने पर परिकर सहित वन में आ गया। इस उपाख्यान को सुनकर मदनसुन्दरी को बहुत संतोष हुआ।

मदनसुन्दरी के पिता प्रजापाल जब पुत्री को कामदेव के समान सुन्दर रूपधारी पुरुष के साथ देखते हैं तब पुत्री के शील पर संदेह कर बैठते हैं। तब मैनासुन्दरी के मामा ने यथार्थता बतलाकर संदेह दूर किया। तदनन्तर प्रजापाल पुत्री मदनसुन्दरी एवं श्रीपाल की अतिशय प्रशंसा करते हैं और सिद्धचक्र की महिमा स्वीकार करते हैं। प्रजापाल श्रीपाल को राज्य देना चाहते हैं किन्तु वह अस्वीकार कर देता है। प्रजापाल, श्रीपाल के सन्तोष रूप परिणाम से और अधिक प्रभावित होकर प्रेम से अनेक देश, कोष, पुर, ग्राम गजादि से सम्मानित करते हैं। सिद्धचक्र की महिमा कपूर की गन्ध के समान सर्वत्र फैल जाती है।

चतुर्थोऽधिकार :– श्रीपालमदनमजूंषा विवाह वर्णन–

चतुर्थ अधिकार में 153 श्लोक हैं। अधिकार के प्रारम्भ में मनुष्य जीवन के लिए धन की आवश्यकता का वर्णन किया है। जो व्यक्ति दूसरों के धन पर आश्रित होते है वे अधम पुरुष है।

मातुलस्य भगिन्याश्च श्वसुरस्यापि योषितः।
नाम्ना धनेन जीवन्ति भवन्त्येतेऽधमाधमाः।।
धनं विना न भातीह नरो लोके निरन्तरम्।
यथा सुगन्धताहीनो नानाकुसुमसञ्चयाः ।।[1]

धनोपार्जन के लिए विदेशोद्यत श्रीपाल को मदनसुन्दरी विदाई उपदेश देती है।

तुच्छ बुध्याऽपि ते किञ्चिद्वचो वक्ष्ये विचक्षण!।
श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मो विस्मार्यः न कदाचनः ।।

चिन्तनं सिद्धचक्रस्य कर्त्तव्यञ्च त्वयानिशम्।
सारपञ्चनमस्कारान्स्वामिन्स्वर्गापवर्गदान् ।।

नित्यं चिन्तयतः पुंसो भवन्ति सुखकोटयः ।
पच्चैते गुरुवस्तस्मात् त्वया ध्येया निरन्तरम् ।।

---

[1]श्रीपालचरित्र 4.7,9

स्मर्तव्या जननी नित्यं दासिका चाहकं सदा।
चतुर्विधं महादानं पूजनञ्च जिनेशिनाम् ।।[1]

श्रीपाल सिद्धचक्र की शपथ पूर्वक पत्नी एवं माता से 12 वर्ष में लौटकर आने का प्रण करते हैं। उसके बाद श्रीपाल का भृगुकच्छ नगर में पहुँचना, धवल सेठ के जहाज अचल होना, उसके निवारणार्थ श्रीपाल को ले जाना, सेठ द्वारा श्रीपाल का स्वागत एवं श्रीपाल के स्पर्शमात्र से जहाज का चलना, पुनः सागर में बर्बरराज तस्करों का चकमा और श्रीपाल से उनका परास्त होना, तस्करों द्वारा श्रीपाल के व्यवहार की प्रशंसा करना आदि का वर्णन है।

दुष्टानामपि चौराणामस्माकं चापि शर्मकृत् ।
अयं कोऽपि महानुच्चैर्मेरोरपि महीतले ।।

दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तियुक्तम् ।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुदञ्चेक्षु दण्डम् ।।
घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारू गन्धम् ।
प्राणत्यागे प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ।।[2]

तदनन्तर बर्बरराज से उपहार में जहाज पाना, रत्नद्वीप में पहुँचना एवं सहस्रकूट चैत्यालय का दरवाजा खोलने पर विद्याधर कन्या मदनमजूंषा विवाह होने पर्यन्त कथा का उल्लेख है।

ततः सोऽपि करोतिस्म हस्तेन स्पर्शनं यदा।
तदा तत्पुण्यपाकेन तत् कपाटमुरुद्वयम ।।
जातमुद्घटितं शीघ्रं परमानन्ददायकम्।
यथा नेत्रद्वयं रम्यमौषधेन महात्मनः ।।[3]

पञ्चमोऽधिकार :– श्रीपालराजविघ्ननिवारण गुणमालाविवाह वर्णन –

पंचम अधिकार में 189 श्लोक है। रत्नद्वीप में व्यापार कर प्रस्थान करता हुआ सेठ मदनमंजूषा पर आसक्त होते हुए विचारता है–

---

[1]श्रीपालचरित्र 4.25–28
[2]श्रीपालचरित्र 4.87,88
[3]श्रीपालचरित्र 4.106,107

यावन्न प्राप्यते भोक्तुं कान्तारत्नमिदं मया ।
तावत्सर्वं वृथा मेऽत्र सम्पदा जन्मजीवितम् ।।[1]

सत्य ही कहा है –

सत्यं दुरात्मनश्चित्ते पर वस्तु प्रियं सदा ।
रक्तपा पररक्तस्य पानं रक्ता यथा सदा ।।[2]

तदन्तर एक वणिक् पुत्र धवल सेठ को परस्त्रीरमण के दोष बताते हुए उसे बहुत समझाता है –

अहो श्रेष्ठिन् महापापं परस्त्री चिन्तनं च यत् ।।

दुर्गतिर्मानभङ्गश्च धननाशो यशोहतिः ।
परस्त्री सङ्गमेनात्र सम्भवेन्नरकक्षितिः ।।

परस्त्रीरूपरागेण बहवो नष्टबुद्धयः ।
विनाशं प्रापुरत्रोच्चैः पावके वा पतङ्गकाः ।।

अन्येषां का कथा येन नीयते वायुना गजः।
कथं संतिष्ठते तत्र वराको मशको ध्रुवम् ।।[3]

परन्तु कामान्धसेठ अपने प्रयोजन की पूर्ति हेतु श्रीपाल को सागर में गिरवा देता है और देवों द्वारा सती के शील का रक्षण होता है। सागर को हाथों से पार कर श्रीपाल का दलवर्तन पत्तन में पहुंचना, धनपाल राजा की पुत्री गुणमाला से विवाह होना एवं जहाजों का भी दलवर्तन पत्तन पहुँचना एवं राजदरबार मे श्रीपाल को देखकर पुनः उसे मरवाने का षड्यन्त्र रचना, श्रीपाल को भाण्डपुत्र सिद्ध करना किन्तु मदनमंजूषा के द्वारा भेद खोलना आदि का वर्णन है। उत्तम क्षमा को धारण करने वाले श्रीपाल के द्वारा सबको क्षमा करना, धवल सेठ को निमन्त्रण देना और श्रीपाल द्वारा पंखा झुलाना किन्तु भय से धवल सेठ का स्वयं मर जाना और श्रीपाल की आज्ञानुसार धवल सेठ के घर (भृगुकच्छपत्तन) यान वापिस भेजने पर्यन्त कथा का वर्णन है।

---

[1]श्रीपालचरित्र 5.5
[2]श्रीपालचरित्र 5.6
[3]श्रीपालचरित्र 5.9,10,11,13

षष्ठमोऽधिकार :– कमलावतीमातृमदनसुन्दरीभार्या संयोग वर्णन –

छटवे अधिकार में 154 श्लोक है। इस अधिकार में श्रीपाल का विभिन्न राज्यों में जाकर चित्रलेखा आदि हजारों कन्याओं से विवाह करना, इसी प्रकरण में गीत, नृत्यादि करते हुए वाद्ययन्त्र वादन कर राजा का चित्तरंजन करना, कुण्डनपुर, कांचनपुर, कंकणपुर में समस्या पूरित करते हुए हजारों कन्याओं से विवाह आदि का वर्णन है। तदनन्तर बारह वर्ष का समय पूर्ण होने पर गृह आगमन, मार्ग में ऊर्जयन्तगिरि पर भक्तिपूर्वक सिद्धचक्र विधानव्रत करना, नाना देशों पर विजय, सेना संग्रह, प्रभुत्व स्थापन आदि का वर्णन है।

उज्जयिनी नगरी में आने पर प्रिया महल में एकाकी प्रवेश, गुप्तरूप में अपनी माता और प्रिया की वार्ता सुनना तथा मैना का दीक्षा का निर्णय सुनना, माता का दर्शन, प्रिया मिलन, अपना वैभव दिखाना, मदनसुन्दरी का आठ हजार रानियों में शिरोमणि पट्टरानी बनाना तदनन्तर उज्जयिनी पर आक्रमण करना, दूत भेजना, कम्बल धारण कर स्वसुर को आदेश देना तथा आदेश स्वीकृत होने पर पुनः उस कठोर आदेश को रद्द कर हाथी पर चढ़कर वैभव के साथ मिलने का आदेश देना तथा आठ हजार रानियों के साथ राज्य वैभव के सुख भोगना आदि का वर्णन सम्यक् रीति से किया गया है।

सप्तमोऽधिकार :– श्रीपालमहाराज चम्पापुरराज्यप्राप्ति वर्णन–

सप्तम अधिकार में 87 श्लोक हैं। इस अधिकार में श्रीपाल महाराज के अन्तस्तल में पिता के वंश और नाम प्रकट करने की महत्त्वाकांक्षा का होना, चाचा वीरदमन को जीतने के लिए ससैन्य चम्पापुर की ओर प्रस्थान करना, मार्ग में अनेक राजाओं को वश में करना, चम्पानगरी को घेरना, वीरदमन का कोप से लाल होना और युद्ध के लिए सुभटों के साथ प्रस्थान करना, किन्तु मन्त्रियों के कथनानुसार दोनों का मल्लयुद्ध होना, श्रीपाल के द्वारा वीरदमन का बाँधना, वीरदमन का लज्जित होना तथा श्रीपाल के द्वारा चाचा वीरदमन से क्षमा याचना करना तथा वैराग्य को प्राप्त हुए वीरदमन का श्री ज्ञानसागर मुनीन्द्र के समीप

दीक्षा लेना तथा श्रीपाल की पुण्यमहिमा का प्रदर्शन, पितृराज्य प्राप्ति एवं राज्याभिषेक पर्यन्त कथानक का उल्लेख है।

अष्टमोऽधिकार :– श्रीपालमहाराजमदनसुन्दरी पुनर्धर्मश्रवणपूर्वक भवान्तर वर्णन–

अष्टम अधिकार में 231 श्लोक हैं। इस अधिकार में चम्पापुरी नगर के वन प्रदेश में अवधिज्ञानी श्रुतसागर मुनिराज का आगमन, वनपाल के द्वारा समाचार प्राप्त कर श्रीपाल महाराज का प्रजा सहित मुनि वन्दना के लिये गमन, आनन्द भेरी बजना वहाँ जाकर गुरुवन्दना कर धर्म श्रवण करना। मुनिराज के द्वारा उभयधर्म का उपदेश, 12 व्रत, मूलगुण, कन्दमूल त्याग, रात्रि भोजन त्याग, आहार दान विधि, पात्र दाता के गुणों का विवेचन, दान का फल, जिनमन्दिर और प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा, सल्लेखना, ग्यारह प्रतिमाओं का विशद स्वरूप, भक्ष्याभक्ष्य विचार, श्रावक व्रत पालन का फल अच्युत स्वर्ग तक की उपलब्धि एवं सम्यक् धर्म का माहात्म्य बताया है।

धर्म श्रवणकर श्रीपाल द्वारा कुष्ठ होना, बचपन में राज्य मिलना, फिर राज्य त्याग, मैना से विवाह, सागर में गिरना आदि परिस्थितियों का कारण पूछने मुनिराज द्वारा सकारण हेतु निरूपण करना इत्यादि वर्णन इस अधिकार में है।

आचार्य ने कहा कि श्रीपाल पूर्व भव में श्रीकान्त राजा थे और पट्टरानी मैनासुन्दरी तुम्हारी श्रीमती रानी थी। सुगुप्ताचार्य से गृहीत व्रत को श्रीकान्त ने कुसंगति में पड़कर छोड़ दिया था उस व्रत भंग का फल राज्य त्याग है। सात सौ सुभटों के साथ ज्ञानी मुनि को कुष्ठी कहने से कोढ़ हुआ अर्थात् तुम कुष्ठी हुए पुनः कुछ दिनों के बाद किसी तपस्वी मुनिराज को तालाब में डालकर फिर निकाल लेने से इस भव में तदनुसार तुम्हारा भी समुद्र में पतन हुआ तैरकर समुद्र पार कर गये, मुनिराज को चाण्डाल कहने के कारण तुम चाण्डाल कहलाये। पुनः वह धीमान् राजा श्रीमती रानी के द्वारा सम्बोधित करने पर बहुत पश्चाताप को प्राप्त हुआ। श्रीवरदत्त गुरु से प्रायश्चित ग्रहण कर सिद्धचक व्रत स्वीकार कर अन्त में समाधिमरण कर उत्तम शतारेन्द्र देव हुआ अर्थात् स्वर्ग में

उत्पन्न हुआ और श्रीमती उसकी इन्द्राणी हुई। वहाँ से च्युत होकर तुम दोनों श्रीपाल और मदनसुन्दरी हुए।

नवमोऽधिकार :– श्रीपालमहामुनीन्द्र निर्वाण वर्णन –

इस अन्तिम नवम अधिकार में 135 श्लोक हैं। इसमें श्रीपाल महाराज के वंश, राज्य, शासन, वैभव तथा सिद्धचक्र पूजा विधान का वैशिष्ट्य आदि का वर्णन है। उसके बाद वन में सरोवर के तट पर कीचड़ में फंसे हुए मृत हाथी को देखकर श्रीपाल का विरक्त होना, बारह भावनाओं का चिन्तन और पुत्र महीपाल को राज्य समर्पण, सुव्रताचार्य से दीक्षा ग्रहण, घोर तप करके घातिया कर्मों का नाश कर केवली होना, गंधकुटी की रचना, दिव्यध्वनि, कर्मनाश कर मोक्षप्राप्ति का सुन्दर विवेचन है। यहाँ पर ब्रह्मनेमिदत्त ने राजा श्रीपाल के मुनि बनने से लेकर मोक्ष प्राप्ति की प्रक्रिया को युद्ध के रूपक में निबद्ध करते हुए सांगोपांग विवेचित किया है।

महाव्रतानि पञ्चोच्चैः कृत्वा सामन्तसत्तमान् ।
विधाय समितीः पञ्च सज्जनानाञ्च सङ्गतिः।।

षडावश्यकमावासं दृढं कृत्वा यतीश्वरः।
परमागमशस्त्रौघमभ्यसन् कर्मशत्रुके ।।

महासत्वगजारूढः सद्धर्मातपवारणः ।
सद्यशश्चामरोपेतो विजयी दोषसञ्चये ।।

मोहनीयरिपुं जित्वा घातित्रितयसंयुतम् ।
केवलज्ञानसाम्राज्यं सम्प्राप्तः परमोदयः ।।[1]

अनन्तर मदनसुन्दरी का भी दीक्षा लेकर तप करना, स्त्रीलिंग का छेदकर बारहवें स्वर्ग में देवेन्द्र होना, एक भव धारण कर भविष्य में मोक्ष प्राप्त करने का भी सम्मुल्लेख है। इस प्रकार मुनि निन्दा का दुष्परिणाम और व्रत पालन का फल भी इस अध्याय में दर्शाया है।

[1]श्रीपालचरित्र 9.90,92,95,101

3.2 मूलस्रोत

जैन साहित्य के इतिहास में श्रीपाल नाम अत्यन्त प्रसिद्ध एवं चर्चित रहा है। श्रीपालनाम के अनेक व्यक्तियों का वर्णन जैन साहित्य में प्राप्त है जो कि राजा, चक्रवर्ती, मुनि आदि रूपों में है। जैन ग्रन्थों में समागत विभिन्न श्रीपालों का वर्णन निम्नलिखित है–

1. **श्रीपाल–** पंचस्तूप संघ में वीरसेन स्वामी (ई. 770–827) के शिष्य और जिनसेन (ई. 818–878) के सधर्मा श्रीपाल नामक विद्वान हुए। इनका समय (लगभग ई. 800–843) 9वीं सदी है। आचार्य जिनसेन ने जयधवला को इनके द्वारा सम्पादित बताया है।[1]

टीका श्रीजयचिन्हितोऽरु धवला सूत्रार्थसंद्योतिनी।
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतपः श्रीपालसम्पालिता ।।[2]

2. **श्रीपाल गुरु–** द्रविड़ संघी गोणसेन के शिष्य और देवकीर्ति पण्डित के गुरु। अनन्तवीर्य के सधर्मा। समय ई. 975–1025।[3]
3. **राजा श्रीपाल–** धारा नगरी के एक मण्डलेश्वर राजा श्रीपाल जिनके राज्यान्तर्गत आश्रम नामक नगर के भगवान मुनिसुव्रतनाथ चैत्यालय में राजश्रेष्ठी के निमित्त नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने द्रव्य संग्रह की रचना की थी। समय वि. 1100–1140 (ई.1043–1083)[4]
4. **श्रीपाल वर्णी–** इन्होनें शुभचन्द्राचार्य को अध्यात्मतरंगिनी लिखने में सहायता दी थी। समय विक्रमी 1611 (ई.1554)[5]

---

[1]तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 2, पृष्ठ संख्या 452
एवं जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ संख्या 500–502
[2]जयधवला 43
[3]सिद्धि विनिश्चय, प्रस्तावना, पं. महेन्द्र, पृष्ठ संख्या 77
[4]ज्ञानार्णव, शुभचन्द्राचार्य, प्रस्तावना 23
[5]कार्तिकेयानुप्रेक्षा, प्रस्तावना, पृष्ठ संख्या 83

5. **श्रीपाल मुनि–** जम्बूद्वीप के विजयार्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणी का बारहवाँ नगर। लंका की विजय करने के पश्चात् राम ने विराधित विद्याधर को इस नगर का राजा बनाया था। विजयार्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणी की उशीरवती नगरी के राजा हिरण्यवर्मा ने इसी नगर में श्रीपाल मुनि के पास जैनेश्वरी दीक्षा ली थी।[1]

6. **श्रीपाल–** आचार्य हरिषेण (दसवीं सदी) के बृहत्कथाकोष में एक श्रीपाल नामक पात्र की कथा आती है।[2] जो दक्षिणापथ के पुन्नाट देश के तलावटी नामक नगर में निवास करता था। शैशवकाल में ही उसने श्रीपंचमी का व्रत ग्रहण किया और दृढता पूर्वक उस व्रत का पालन कर उसने सद्गति प्राप्त की।

   राजकुमार श्रीपाल– पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा गुणपाल के द्वितीय पुत्र और वसुपाल के लघु भ्राता का नाम श्रीपाल था। पिता गुणपाल के ज्ञानकल्याणक में जाते समय मार्ग में एक विद्याधर घोड़ा बनकर इन्हें उड़ाकर ले गया और एक वन में जाकर छोड़ दिया। घूमते–घूमते विदेश में अनेक स्थानों पर कन्याओं से विवाह करने के प्रसंग प्राप्त होने पर भी 'मैं माता और गुरुजन आदि के द्वारा प्रदत्त कन्या के अतिरिक्त अन्य कन्या से भोग न करूँगा' इस प्रतिज्ञा के अनुसार सबको अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् पूर्वभव की माता यक्षी द्वारा प्रदत्त चक्र, दण्ड, छत्र आदि लेकर उनके प्रभाव से पिता के समवशरण में पहुँचा। अनन्तर चक्रवर्ती के भोगों का अनुभव किया। अन्त में दीक्षा ग्रहणकर मोक्ष प्राप्त

   किया।[3]

7. **श्रीपाल–** चम्पापुर नगर के राजा अरिदमन का पुत्र था। मैनासुन्दरी से विवाह हुआ। कोढ़ी होने पर मैनासुन्दरी कृत सिद्धचक्र विधान के निमित्त से कुष्ठ रोग दूर हुआ। विदेश में एक विद्याधर से जलतरंगिणी व शत्रुनिवारिणी विद्या प्राप्त

---

[1]जिनसेन कृत महापुराण, द्वितीय भाग 46.145,146 और पाण्डवपुराण 3.226
[2]Siri Siri Valkaha, Pt. I Ed. V.J. Chokshi (Ahemdabad, 1932) Introduction, Pg. 13
[3]महापुराण, महाकवि पुष्पदन्त, भाग 3, परिच्छेद 32–36,
जिनसेन कृत महापुराण, द्वितीय भाग, 47वां पर्व एवं हरिवंशपुराण 12.24

की। धवल सेठ के रुके हुए जहाजों को चोरों से छुड़ाया। श्रीपाल को मदनमंजूषा नामक कन्या की प्राप्ति होने पर धवल सेठ उस पर मोहित हो गया और इनको समुद्र में गिरा दिया। तब श्रीपाल लकड़ी के सहारे तिरकर दलवर्तन रत्नद्वीप में गये। वहाँ पर गुणमाला कन्या से विवाह किया। परन्तु धवल सेठ के भाटों द्वारा इनकी जाति भाण्ड बता दी जाने पर इनको सूली की सजा मिली। तब मदनमंजूषा ने इनको छुड़ाया। अन्त में दीक्षा ग्रहणकर मोक्ष प्राप्त किया।[1]

उक्त अनेक श्रीपाल नाम के व्यक्तित्व जैन साहित्य में प्राप्त है। परन्तु वर्तमान में राजा श्रीपाल और उनकी पटरानी मैनासुन्दरी का आख्यान एक लोक–प्रचलित आख्यान रहा है। श्रीपाल से सम्बन्धित कथानक के सन्दर्भ में प्रो. राजाराम ने लिखा है इस कथा का वर्तमान में उपलब्ध रूप 15वीं सदी से पूर्व देखने में नहीं आया। हमारा अनुमान है कि संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के जैनाचार्य और लेखकों ने श्रीपाल और मैनासुन्दरी के पृथक्–पृथक् लोकाख्यानों को मिश्रित कर उन्हें एक नया रूप प्रदान किया होगा।[2]

5वीं सदी के श्रीपालचरित्र के रचयिता बृहद्गच्छीय बज्रसेन–सूरि के प्रशिष्य और हेमतिलक–सूरि के शिष्य श्री रत्नशेखर–सूरि हैं। इस ग्रन्थ का संकलन वि. सम्वत् 1428 में हुआ। संकलनकार ने स्वयं ही लिखा है[3]–

सिरिवज्जसेण गणहर पट्टहु हेमतिलयसूरिणं।
सीसेहिं रयणसेहरसूरिहिं इमाहु संकलिया ।।
चउदस अट्टरवीसे लिहिया ।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि **रत्नशेखर–सूरि** ने आगम और लोक में प्रचलित श्रीपाल सम्बन्धी कथाओं के विविध रूपों का अध्ययन कर इस श्रीपाल कथा को नवीन स्वरूपाकृति प्रदान की है।

---

[1] श्रीपालचरित्र, ब्रह्मनेमिदत्त

[2] सिरि–सिरिवाल–चरिउ, रइधू, प्रस्तावना, पृष्ठ संख्या 8

[3] बृहत्कथाकोश (सिन्धी जैन सीरीज, मुम्बई द्वारा प्रकाशित एवं डा. ए. एन. उपाध्ये द्वारा संपादित) कथा संख्या 145

इस प्रकार महापुराण, बृहत्कथाकोष आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर परवर्ती मनीषियों द्वारा यह कथा सृजित की गई। श्रीपाल से सम्बन्धित विशद साहित्य का सृजन प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी और गुजराती भाषाओं में हुआ है।[1] 'श्रीपालचरित्र' सिद्धचक्र विधान या नवपदमण्डल की पूजाविधि की फलश्रुति से सम्बद्ध है। जैन धर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में प्रकृत चरित्र से सम्बन्धित विषय पर लेखन कार्य हुआ है।

3.3 परम्परा एवं श्रीपाल विषयक अन्य साहित्य

अब तक के प्राप्त स्रोतों में 'श्रीपाल' आधारित स्वतंत्र ग्रन्थों में सर्वप्रथम ग्रन्थ 14–15वीं सदी में प्राप्त होता है जो कि प्राकृत भाषा में रचित है। उक्त ग्रन्थ के रचयिता **रत्नशेखर–सूरि** हैं। डॉ. हीरालाल जैन ने लिखा है– रत्नशेखर सूरि कृत 'श्रीपाल चरित्र' में 1342 गाथाएँ हैं, जिसका प्रथम संकलन वज्रसेन के पट्टशिष्य **प्रभुहेमतिलक सूरि** ने किया और उनके शिष्य हेमचन्द्र साधु ने वि. सं. 1428 (ई.1317) में इसे लिपिबद्ध किया। यह कथा 'सिद्धचक्र विधान'

का माहात्म्य प्रकट करने के लिए लिखी गयी है।[2]

उज्जैन की राजकुमारी ने अपने पिता की दी हुई समस्या की पूर्ति में अपना यह भाव प्रकट किया कि प्रत्येक को अपने पुण्य–पाप के अनुसार सुख–दुख प्राप्त होता है। पिता ने इसे अपने प्रति कृतघ्नता का भाव समझा और क्रुद्ध होकर मयनासुन्दरी का विवाह श्रीपाल नाम के कुष्ठ रोगी से कर दिया। मयनासुन्दरी की पतिभक्ति और सिद्धपूजा के प्रभाव से श्रीपाल स्वस्थ्य हो गए। श्रीपाल ने नाना देशों का भ्रमण किया तथा खूब धन और यश कमाया। ग्रन्थ के बीच–बीच में अनेक अपभ्रंश पद्य भी आये हैं और नाना छन्दों में स्तुतियां निबद्ध हैं। रचना आदि से अन्त तक रोचक है।

---

[1]जिनरत्नकोश, भाग 1, पृष्ठ संख्या 396–398

[2]भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृष्ठ संख्या 142

अपभ्रंश भाषा में दो **'सिरिवाल चरिउ'** उपलब्ध है। प्रथम, कवि **रइधू** कृत सिरिवाल चरिउ है। डॉ. राजाराम जैन, आरा द्वारा सम्पादित इस कृति का प्रकाशन सन् 2017 में हुआ है। रइधू का समय वि. सं. 1450–1536 (ई. 1393–1479) है। द्वितीय **पं. नरसेन** कृत सिरिवाल चरिउ है, जिसका सम्पादन एवं अनुवाद डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन ने किया है[1] जो कि भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है। पण्डित नरसेन का समय लगभग 15वीं माना जाता है।[2]

आद्य संस्कृत श्रीपालचरित्र के रचयिता विद्वान **भट्टारक सकलकीर्ति** (वि. सम्वत् 1443–1499) हैं। **सत्यराज–गणी** ने भी वि. सं. 1514 में संस्कृत श्रीपालचरित्र की रचना की। तदनन्तर ब्रह्मनेमिदत्त ने भी पूर्व मनीषियों का अनुसरण करते हुए वि. सं. 1528 में संस्कृत श्रीपालचरित्र की रचना की।

16वीं शताब्दी और उसके बाद तो श्रीपाल विषयक ग्रन्थों की लगातार रचनाएँ हुई हैं। **सिद्धसूरि** ने वि. सं. 1531 में श्रीपाल नाटक की रचना की। **लब्धिसागर–सूरि** ने वि. सं. 1557 में श्रीपाल–कथा की रचना की।

महोपाध्याय श्री कीर्तिविजय गणि के शिष्य **श्रीविनय विजयगणि उपाध्याय** के द्वारा रचित **'श्रीपाल रास'** गुजराती भाषा में निबद्ध है।[3] इसमें कुल चार खण्ड और 41 ढालें हैं जिसमें पहले खण्ड में 11, दूसरे में 8, तीसरे में 8 और चौथे में 14 ढालें हैं। इसी के आधार पर वर्तमान में प्रचलित 'श्रीपाल रास' रचा गया।

नाथूराम जी प्रेमी ने दो श्रीपाल चरित्रों का उल्लेख किया है जिसमें ब्रह्मनेमिदत्त के अलावा **भट्टारक वादिचन्द्र** वि. सं. 1651 के 'श्रीपाल आख्यान' का वर्णन है। इसकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है।

---

[1] सिरि सिरिवाल चरिउ, पं. नरसेन, द्वितीय संस्करण 2011

[2] प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, रामसिंह तोमर, पृष्ठ संख्या 161–162

[3] जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ संख्या 490

तदनन्तर पण्डित परिमल्ल ने हिन्दी में श्रीपाल चरित्र लिखा, जिसे बाबू ज्ञानचन्द्र जी लाहौर वालों ने ई. 1904 में प्रकाशित किया। बाद में 'दिगम्बर जैन भवन' सूरत ने ई. 1968 में पुनः प्रकाशित किया। अन्तिम प्रशस्ति में कवि कहते है–

ता सुत अकबर साह प्रमान
सो तप तर्प दूसरो मान ।।
तार्क राज न होय अनीत ।
वसुधा सकल करी बस जीत ।।
केतर देस तास की आण ।
दूजो और न ताहि समान ।।
ताकै राज कथा यह करी ।
कवि परमल्ल प्रकट विस्तरी ।।

दिगम्बर परम्परा में वर्तमान में प्रचलित श्रीपालचरित्र कवि परमल्ल कृत श्रीपालचरित्र पर ही आधारित है। इनमें एक अनुवाद पं. दीपचन्द्र वर्णी का[1] है और दूसरा सिंघई परमानन्द[2] का है। कवि परमल्ल अपनी रचना के मूल स्रोत के विषय में इतना ही कहते हैं कि मैंने 'श्रीपाल पुराण' सुना था उसकी छाया पर मैंने श्रीपाल कथा का वर्णन किया है। अनुमान यही है कि किसी संस्कृत श्रीपाल चरित के आधार पर ही कवि परमल्ल ने अपने काव्य की रचना की होगी।

इस प्रकार उक्त चरित्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि श्रीपाल की कथा के दो प्रचलित रूप रहे हैं प्रथम रूप की मान्यता श्वेताम्बर में पायी जाती है और द्वितीय रूप की मान्यता दिगम्बर में पायी जाती है। ब्रह्मनेमिदत्त ने अपनी रचना श्रीपालचरित्र में दिगम्बर मान्यता का अनुसरण किया है।

वर्तमान में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में प्रचलित प्रतिनिधि कथाएँ– 'श्रीपालरास' (श्री विनयविजय) और 'श्रीपाल चरित्र' (कवि परमल्ल) हैं। इस प्रकार जैन साहित्य में श्रीपाल विषयक विशद साहित्य प्राप्त होता है।

---

[1]प्रकाशक दिगम्बर जैन पुस्तकालय गाँधी चौक, सूरत
[2]प्रकाशक जैन पुस्तकालय भवन, 161 हरिसन रोड, कलकत्ता– 7

➢ दिगम्बर परम्परा में श्रीपाल आधारित अनेक रचनाएँ है जिनमें से कुछ रचनाओं का उल्लेख डॉ. राजाराम जैन ने किया है –

संस्कृत –

1. श्रीपाल चरित – भट्टारक सकलकीर्ति (वि. सम्वत् 1499)
2. श्रीपालचरित्र– ब्रह्मनेमिदत्त (वि. सम्वत् 1585)
3. श्रीपाल चरित (गद्य रचना) – भट्टारक श्रुतसागर (ई.1487–1499)[1]

अपभ्रंश –

4. सिरिवालचरिउ (अपरनाम –सिद्धचक्कमाहप्प) – रइधू (वि. सम्वत् 1621)
5. सिद्धचक्ककहा – पण्डित नरसेन (14वीं सदी)
6. श्रीपाल चरित – दामोदर (16वीं सदी)
7. श्रीपाल मैनासुन्दरी चरित्र – माघनन्दी

हिन्दी –

8. श्रीपालरास – ब्रह्मरायमल्ल (वि. सम्वत् 1630)
9. श्रीपाल चरित – परिमल्ल (वि. सम्वत् 1651)
10. मैनासुन्दरी नाटक – न्यामतसिंह (20वीं सदी)
11. भाग्य भगवत – अज्ञात (वि. सम्वत् 1661)
12. हिन्दी भाषा कथा (चौपाई बन्ध) – हेमराज इटावा (वि. सं. 1738)
13. श्रीपाल चरित (हिन्दी गीतकाव्य) – वादिचन्द्र (वि.1637–1664)
14. श्रीपाल चरित – पं. दौलतराम (ई.1720–1722)
15. हिन्दी भाषा वचनिका – पं. नाथूलाल दोशी खण्डेलवाल

---

[1]तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2, पृष्ठ संख्या 400

16. अढाईव्रत – विश्वभूषण

17. अष्टाह्निका सर्वतोभद्र – भट्टारक कनककोटि

गुजराती –

18. श्रीपालव्याख्यान कथा – वादिचन्द्र (वि. सम्वत् 1661)

➢ श्वेताम्बर परम्परा में भी श्रीपाल सम्बन्धित अनेक रचनाएँ है जिनमें से अनेक रचनाओं का उल्लेख डॉ. राजाराम जैन ने भी किया है–

1. श्रीपाल चरित (प्राकृत) – रत्नशेखर सूरि (वि. सं. 1428)
2. श्रीपाल चरित्र – सत्यराज गणि (सं. 1514)[1]
3. श्रीपालनाटक (रसवती वर्णन) – धर्मसुन्दर (वि. सं. 1531)
4. श्रीपाल कथा – लब्धसागर सूरि (वि. सं. 1557)
5. श्रीपाल चरित्र – ज्ञानविमल सूरि (वि. सं. 1738)[2]
6. श्रीपाल चरित्र व्याख्या(संस्कृत) – क्षमा कल्याण (वि. सं. 1869)
7. श्रीपाल चरित्र (संस्कृत गद्य) – जयकीर्ति (वि. सं. 1868)

गुजराती में निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं–

8. सिद्धचक्र रासा (श्रीपाल रास) – ज्ञानसागर (वि. सं. 1531)
9. श्रीपाल रास – विनयविजय यशोविजय (वि. सं. 1738)
10. श्रीपाल रास – ज्ञानसागर (वि. सं. 1726)
11. श्रीपालरास (सचित्र) – जिनहर्ष (वि. सं. 1740)

[1]प्रकाशक– लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला
[2]प्रकाशक– सन्मार्ग प्रकाशन, जैन आराधना भवन, अहमदाबाद

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त जिनरत्नकोश में प्राप्त श्रीपाल से सम्बन्धित अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

क्रम	नाम	लेखक	भाषा	समय (वि.सं.)	विशेष
1	श्रीपालचरित्र	सत्यसागर गणि		1554	
2	श्रीपालचरित्र	ज्ञानविमल सूरि	संस्कृत	1745	गद्य
3	श्रीपालचरित्र	जीवराज गणि			
4	श्रीपालचरित्र	सोमचन्द्र गणि	संस्कृत		गद्य
5	श्रीपालचरित्र	क्षमा कल्याण			
6	श्रीपालचरित्र	विजयसिंह सूरि			
7	श्रीपालचरित्र	वीरभद्र सूरि			
8	श्रीपालचरित्र	प्रद्युम्न सूरि	प्राकृत		
9	श्रीपालचरित्र	सौभाग्य सूरि			
10	श्रीपालचरित्र	हर्ष सूरि			
11	श्रीपालचरित्र	हेमचन्द्र सूरि	संस्कृत	1428	
12	श्रीपालचरित्र	क्षेमलक कवि (ईडर)			
13	श्रीपालचरित्र	जगन्नाथ पण्डित			
14	श्रीपालचरित्र	इन्द्रदेव राज			
15	श्रीपालचरित्र	न्रदेव			
16	श्रीपालचरित्र	लब्धिमुनि	संस्कृत	1990	1040 श्लोक
17	श्रीपालचरित्र	मल्लिभूषण	संस्कृत		
18	श्रीपालचरित्र	विद्यानन्दि (ईडर)			
19	श्रीपालचरित्र	शुभचन्द्र			
20	श्रीपालचरित्र	विनय विजय	प्राकृत	1683	4 खण्ड
21	श्रीपालचरित्र	सोमकीर्ति देव			
22	श्रीपाल नरेन्द्रकथा	अज्ञात			

श्रीपालमयणामृत ग्रन्थ के परिशिष्ट में दी गई श्रीपाल सम्बन्धित अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं[1]

क्रम	नम	लेखक	भाषा	समय (वि.सं.)	विशेष
1	श्रीपालगोपाल कथा	जिनकीर्ति सूरि	संस्कृत	1494	237 श्लोक
2	श्रीपालचरित्र	मांडण श्रावक	गुजराती	1498	
3	श्रीपालचरित्र	धर्मसुन्दर सूरि	संस्कृत	1531	
4	श्रीपालचरित्र	ज्ञान सागर	गुजराती	1531	
5	श्रीपालचरित्रम्	लब्धिसागर गणि	संस्कृत	1557	
6	श्रीपालचरित्र	ईश्वर सूरि	गुजराती	1564	
7	श्रीपालचरित्र	उपा. पद्मसुन्दर	गुजराती	1642	
8	श्रीपालचरित्र	रत्नलाभ	गुजराती	1662	
9	श्रीपालचरित्र	ज्ञान विजय	गुजराती	1702	
10	श्रीपालचरित्र	मेरूविजय	गुजराती	1712	
11	श्रीपालचरित्र	महिमा उदय	गुजराती	1712	
12	श्रीपालचरित्र	धन विजय	गुजराती	1717	
13	श्रीपालचरित्र	पद्म विजय	गुजराती	1726	
14	श्रीपालचरित्र	लक्ष्मी विजय	गुजराती	1727	
15	श्रीपालचरित्र	उदय विजय	गुजराती	1728	
16	श्रीपालचरित्र	माणिक्य सागर	गुजराती	1732	
17	श्रीपालचरित्र	हरयचन्द्र श्रावक	गुजराती	1740	
18	श्रीपालचरित्र	जिनविजय	गुजराती	1791	
19	श्रीपालचरित्र	रघुपतिदीपवल्लभ	गुजराती	1806	
20	श्रीपालचरित्र	नेम विजय	गुजराती	1824	
21	श्रीपालचरित्र	लालचन्द	गुजराती	1807	
22	श्रीपालचरित्र	चेतन विजय	गुजराती	1853	
23	श्रीपालचरित्र	दीपचन्द (श्रावक)	गुजराती	1816	
24	श्रीपालचरित्र	केशव मुनि	गुजराती	1877	
25	श्रीपालचरित्र	क्षेमवर्धन	गुजराती	1879	
26	श्रीपालचरित्र	उदयसोम	गुजराती	1898	
27	श्रीपालचरित्र	कन्हैयालाल जैन	हिन्दी	1986	
28	श्रीपालचरित्र	नयचन्द्र सागर	संस्कृत	2047	

[1]श्रीपाल मयणामृत काव्यम् (नयचन्द्र सागर)

उक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि जैन साहित्य की दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में श्रीपाल से सम्बन्धित लगभग 70 ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जो कि श्रीपाल की लोकप्रियता को दर्शाते हैं।

चतुर्थ अध्याय

पाण्डुलिपि सम्पादन की आवश्यकता

तथा

पाठभेदों की समीक्षा

चतुर्थ अध्याय
पाण्डुलिपि सम्पादन की आवश्यकता
तथा पाठभेदों की समीक्षा

4.1 पाण्डुलिपि : सम्पादन की आवश्यकता

कालप्रवाह में मनुष्य की श्रुति और स्मृति दोनों ही शक्तियाँ क्षीण होती हैं, जिससे ज्ञान का प्रसार और ज्ञानाराधना रुक जाती है। अतएव ज्ञान राशि को सुरक्षित रखने और भावी पीढ़ी को संप्रेषित करने की उत्कट अभिलाषा से लेखन परम्परा का उदय हुआ। सहस्राब्दियों पूर्व लेखन कला के आविष्कार से लेकर अद्यावधि लिपिबद्ध सामग्री अनेक रूपों में मिलती हैं। प्राचीन काल में लेखनकार्य ईंट, पत्थर, शिला, मोमपाटी, लकड़ी, चमड़ा, भोजपत्र, ताड़पत्र, धातुपत्र आदि पर किया जाता था जिसे पाण्डुलिपि कहा जाता है।

पाण्डुलिपि शब्द में दो पदों का मेल है – पाण्डु एवं लिपि, पाण्डु अर्थात् खड़िया और लिप् धातु का अर्थ लीपना है। जिसका अर्थ है– पाण्डुर वर्ण वाले आधार अथवा उपकरण। पाषाण अथवा पत्र पर किन्हीं मान्य संकेतों के द्वारा अपेक्षित ज्ञान को किसी विशेष कठोर, नुकीले उपकरण (लेखनी) के द्वारा उत्कीर्णित कर अथवा किसी नरम लेखनी द्वारा किसी विशेष रंग के तरल पदार्थ द्वारा लिखकर उसे सुरक्षित करना।

प्राकृतिक विपदाओं, जनसंख्या वृद्धि तथा विदेशी आक्रान्ताओं के कारण सामाजिक जीवन में सांसारिक समस्याओं के कारण उत्पन्न मानसिक अस्थिरता और उसके कारण विस्मृति की आशंका से कण्ठ–परम्परा द्वारा प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित रखने की आवश्यकता का जब अनुभव किया गया, तब उसे जिन प्रयत्नसाध्य उपलब्ध उपकरणों पर लिपिबद्ध किया गया, उसे पाण्डुलिपि कहा गया। पाण्डुलिपि को मातृकाग्रन्थ, लिपिग्रन्थ, हस्तप्रति, हस्तलेख आदि नामों से जाना जाता है।

पाण्डुलिपियाँ (Manuscripts) किसी भी समाज की समुन्नत प्रतिभा एवं संस्कृति की परिचायिका मानी जाती हैं। जिस प्रकार पुरातात्त्विक सामग्री (Archaeological Remains) एवं शिलालेख (Inscriptions) किसी भी देश के इतिहास के निर्माण के लिये प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार पाण्डुलिपियाँ भी भूतलक्ष्यी प्रभाव से समकालीन इतिहास एवं संस्कृति को चित्रित करने हेतु बहुआयामी सामग्री का वरदान देती हैं।

पाण्डुलिपियाँ किसी भी समाज एवं देश की अमूल्य धरोहर मानी गई हैं क्योंकि वे उनके महान्–तपस्वियों, साधकों, चिन्तकों, आचार्यों और लेखकों द्वारा अनुभूत और परम्परा से प्राप्त ज्ञान–गरिमा की प्रतीक होती हैं। साथ ही उनके निरन्तर स्वाध्याय, पठन–पाठन, मनन एवं चिंतन की प्रवृत्ति मानसिक एकाग्रता, आध्यात्मिक उत्थान, बौद्धिक विकास, सांस्कृतिक उन्नयन, कलात्मक अभिरुचि और साहित्यिक प्रतिभा आदि की परिचायिका भी होती है। यही नहीं, उनके आदि एवं अन्त में उपलब्ध प्रशस्तियों (Eulogies) एवं पुष्पिकाओं (Colophons) में पूर्ववर्ती अथवा समकालीन इतिहास, संस्कृति, समाज, साहित्य तथा साहित्यकारों आदि के उल्लेखों के कारण वे देश एवं समाज के विविध पक्षीय इतिहास के लेखन तथा राष्ट्रीय अखण्डता और भावात्मक एकता की प्रतीक भी होती हैं।

राष्ट्रीय इतिहास एवं संस्कृति को सर्वांगीण बनाने में भी पाण्डुलिपियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसके अतिरिक्त लेखन–सामग्री में प्रयुक्त विविध उपकरण (यथा–पत्र, कम्बिका, डोरा, ग्रन्थि, लिप्यासन, छन्दण, मसि, लेखनी आदि) एवं लिपि की विविध शैली, चित्रकला में प्रयुक्त विविध रंग और उनकी कलात्मक अभिरुचि की अभिव्यक्ति आदि की दृष्टि से भी पाण्डुलिपियों का ऐतिहासिक महत्त्व है।

जैन परम्परा में जिनवाणी को सुरक्षित रखने का मूल आधार होने के कारण पाण्डुलिपियों को प्रारम्भ से ही पूज्यता तथा विशेष आदरभाव मिला है। उन्हें अत्यन्त प्रिय और पवित्र धरोहर मानकर जैनों ने अपने दैनिक आराध्यों देव,

शास्त्र एवं गुरु में शामिल किया है और पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित शास्त्रों को भी समान रूप से पूज्य मानकर उनकी सुरक्षा के लिये प्रारम्भ से ही अनेकविध प्रयत्न किये हैं।

आज अनेक विद्वानों द्वारा पाण्डुलिपि संरक्षण का कार्य कुशलता से किया जा रहा है। अनेक संस्थानों में युवा पीढ़ी को पाण्डुलिपियों का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व बताने के लिये उनका अध्ययन–अध्यापन का कार्य भी प्रशंसनीय है। वर्तमान समय में प्राप्त पाण्डुलिपियों के संरक्षण के साथ ही उनका परिशीलन व सम्पादन भी अत्यावश्यक कार्य है। भारत सरकार द्वारा भी भारतीय पाण्डुलिपियों और साहित्य धरोहरों के संरक्षण एवं संवर्धन का कार्य किया जा रहा है जो कि स्तुत्य है। उक्त परम्परा के निर्वहन की पवित्र भावना से शोधकार्य के अन्तर्गत मेरे द्वारा पाण्डुलिपि–सम्पादन के कार्य का चयन किया गया।

पाठालोचन व उसकी आवश्यकता –

सामान्य रूप में 'पाठ' से तात्पर्य है– जो स्वयं के द्वारा लिखा गया हो। कवि या रचनाकार निर्मित मूलपाठ का निर्धारण कर निर्णीत पाठ का चयन करना ही पाठालोचन है। विस्तृत अर्थ में– जो कुछ लिखित सामग्री है, उनमें जो भी क्षतियाँ हुयी हैं उनको ध्यान में रखते हुए कवि के अभीष्ट पाठ तक पहुँचना, पाठालोचन है।

कवि द्वारा लिखित कृति प्रायः हमें प्राप्त नहीं होती, उसकी प्रतिलिपियाँ मिलती हैं, उन प्रतिलिपियों के लिपिकर्ता अलग–अलग हो सकते हैं। एक ग्रन्थागार में किसी साहित्यिक रचना की जो पाण्डुलिपि मिलती है, दूसरे ग्रन्थागार में उसी लिपिक की पाण्डुलिपि मिले, यह आवश्यक नहीं है। इस कारण से उसमें कई प्रकार की त्रुटियाँ आ जाती हैं। लिखे हुए रूप का उक्त अन्तर ही पाठान्तर या पाठ–भेद कहलाता है। यह पाठ–भेद जब तक रहेगा, तब तक उस रचना का सही या शुद्ध रूप सामने नहीं आ सकता। इसलिए साहित्यिक शोध करने वाले को पहले पाण्डुलिपि का यह पाठ–भेद मिटाना पड़ता

है। जब भेद मिटाकर शोधार्थी एक शुद्ध रूप निर्धारित करता है, तब इस कार्य को पाठ का आलोचन अर्थात् पाठालोचन कहते हैं।

प्राप्त प्रतिलिपियों के परीक्षण और वैज्ञानिक विधियों के अनुगमन से रचयिता के अभीष्ट पाठ की प्राप्ति की प्रक्रिया ही पाठालोचन कहलाती है। पाठालोचन को पाठविज्ञान, पाठसम्पादन, पाठशोधन और पाठानुसन्धान आदि नामों से भी जाना जाता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि 'पाठ' का अर्थ केवल पढ़ना ही नहीं है, बल्कि जो लिखा हुआ है, वह लिखित रूप भी 'पाठ' है। इसे अंग्रेजी में टेक्स्ट (TEXT) कहते है। पाठालोचन को TEXTUAL CRITICISM कहते हैं। इस 'पाठ' शब्द में 'आलोचना' शब्द जोड़कर 'पाठालोचन' नाम से एक शैली या विधा बनी है। इस कला में जो परीक्षार्थी प्रवीण (कुशल) हो जाता है, वही साहित्य को सही ढंग से समझ और समझा सकता है।

डॉ. पोस्टगेट ने पाठालोचन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि साहित्यिक शोध का कार्य ही तब तक आरम्भ नहीं हो सकता, जब तक शोधार्थी पाठालोचन करके शुद्ध पाठ निर्धारित न कर ले। यही कारण है कि पाण्डुलिपियों के रूप में मिलने वाले साहित्य के अनुसन्धान के लिए पाठालोचन की प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। पाठालोचन के बिना हम सत्य तक न पहुँचकर अर्थ का अनर्थ कर सकते हैं।

पाठालोचन प्रविधि

पाठालोचन केवल भाषाविज्ञान का ही विषय नहीं है, अपितु उसका साहित्यिक महत्त्व भी है। इसलिए इसका सम्बन्ध शब्द और अर्थ दोनों से हैं। इस दृष्टि से साहित्य का सम्पादन दो तरह होता रहा है– वैज्ञानिक सम्पादन और साहित्यिक सम्पादन।

वैज्ञानिक एवं साहित्यिक प्रक्रिया में मूलतः अन्तर न होते हुए भी वैज्ञानिक सम्पादन शब्द को अधिक महत्त्व देता है और साहित्यिक सम्पादन अर्थ को। आज अधिकतर पाठ–सम्पादन में जो भ्रांतियाँ उत्पन्न होती हैं, उनका मुख्य कारण है अर्थ का न समझना। इस कारण से ही शब्द की तुलना में अर्थ की महत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। आवश्यकता इस बात की भी है कि वैज्ञानिक प्रणाली के माध्यम से शुद्ध शब्द पर पहुँचा जाए, क्योंकि शुद्ध शब्द ही यथार्थ अर्थ दे सकता है। वैज्ञानिक प्रणाली में पाठ चयन और पाठ सुधार दोनों ही दशाओं में लेखानुसंगति (शब्द) और विषयानुसंगति (अर्थ) दोनों पर पूरा–पूरा बल दिया जाता है।

पाठालोचन की तीन प्रणालियाँ हैं–

1. **स्वेच्छया पाठ–निर्धारण प्रणाली–** यह एक सामान्य प्रणाली होती है, जिसमें सम्पादक पुस्तक का सम्पादन करते समय प्राप्त प्रति पर ही निर्भर रहता है। इसमें जो सामान्य दोष दिखाई देते हैं, उन्हें सम्पादक मात्र दूर कर देता है।
2. **तुलनात्मक प्रणाली–** इस प्रणाली में सम्पादक के पास दो प्रतियाँ होती हैं। इनमें तुलना करने पर जो प्रति उसे अधिक अच्छी लगती है, उसी को मुख्य मानकर सम्पादन कर दिया जाता है। ऐसे सम्पादित ग्रन्थों में वह पाठान्तर देना भी उचित नहीं समझता है। कहीं–कहीं जहाँ उसे दोनों पाठ अच्छे लग रहे हों तब वह फुटनोट में दूसरा पाठ भी दे सकता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पाठालोचक एक ही ग्रन्थ की एकाधिक पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होने पर भी वह इसी प्रणाली का निर्वहन करता है। वह जिस पाठ को ठीक समझता है उसे ही मूल मान कर सम्पादन कर देता है।
3. **वैज्ञानिक प्रणाली –** इसे वैज्ञानिक चरण भी कहते हैं। इस चरण की प्रणाली में कई हस्तलेखों की तुलना की जाती है। तुलनात्मक आधार पर प्रायः प्रत्येक प्रति में मिलने वाली त्रुटियों में साम्य–वैषम्य देखा जाता है। इसके आधार पर कृति का मूल पाठ अथवा आदर्श पाठ निर्धारित किया जाता है और अन्य पाठों का निर्देश फुटनोट में दिया जाता है।

मेरे द्वारा वैज्ञानिक प्रणाली के माध्यम से श्रीपालचरित्र के सम्पदान का कार्य किया गया है।

पाठ–सम्पादन की आवश्यकता–

यदि रचनाकार स्वयं अपनी रचना लिपिबद्ध करता है तो वह यथाशक्ति उसे शुद्ध रखने की चेष्टा करता है। क्योंकि रचनाकार प्रायः विविध गुणों से संयुक्त होता है कहा भी है –

> **सर्वदेशाक्षरभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।**
> **लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकारणेषु वै ।।**[1]

चाणक्य नीति में लेखक के गुण इस प्रकार कहे हैं –

> **सुकृदुक्तगृहीतार्थो लघुहस्तो जिताक्षरः ।**
> **सर्वशास्त्रसमालोकी प्रकृष्टो नाम लेखकः ।।**

यदि रचनाकार किसी प्रकार की असमर्थता के कारण अपनी रचना को स्वयं लिपिबद्ध नहीं कर पाता तो किसी लिपिकार का सहारा लेता है। जब लिपिकार कृति को प्रथम बार लिपिबद्ध करता है, तब उसकी निम्नांकित सीमाएँ रचना की शुद्ध पाण्डुलिपि निर्मित होने में बाधक हो जाती है :–

1. **रचनाकार का उच्चारण दोष–** क्योंकि रचनाकार जैसा बोलता है, वैसा ही लिपिकर्ता लिखता है।
2. **लिपिकार का श्रवण दोष–** कभी–कभी लिपिकार अपने श्रवण दोष के कारण रचनाकार के कथन को यथावत् ग्रहण नहीं कर पाता और अन्यथा लिख देता है।
3. **लिपिकार का भाषाज्ञान–** कभी–कभी लिपिकर्ता रचनाकार की तुलना में अधिक या कम भाषाज्ञान रखता है। जब लिपिकर्ता का भाषाज्ञान अधिक होता है, तब वह रचनाकार के कथन को अपनी बुद्धि से यत्र–तत्र संशोधित करता

---

[1]मत्स्यपुराण 215.25

हुआ प्रस्तुत करता है और जब भाषाज्ञान कम होता है, तब ठीक सुन लेने पर भी वह अशुद्ध रूप में अंकित कर देता है।

4. **क्षेत्रीय प्रभाव–** लिपिकर्ता और रचनाकार के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के निवासी होने के कारण उनकी क्षेत्रीय बोलियों का अन्तर भी लिपिकर्ता के कार्य पर प्रभावी हो जाता है और सहजता से रचना के अभीष्ट रूप में अन्तर आ जाता है।

इन सीमाओं के कारण पाण्डुलिपि में अनेक अशुद्धियाँ समय के साथ बढ़ती और बदलती चली जाती हैं। प्रत्येक हस्तलिखित प्रति मुद्रण के अभाव में जब दूर–दूर तक नकल के माध्यम से पहुँचती है, तब उसके मूलरूप का अनेक बार रूपान्तरण हो जाता है। प्राचीन काल से अब तक यह परिवर्तन प्रक्रिया चलती आयी है। जो पाण्डुलिपि प्रथम बार तैयार की गयी थी, वह यदि नष्ट हो गयी, तब शुद्धता का प्रमाण जुटाना भी असम्भव हो जाता है। यदि वह नष्ट न भी हो, तो भी यह तय करना एक समस्या हो जाती है कि मूल पाण्डुलिपि कौन–सी है और उसका निर्णय किस प्रकार किया जाये।

इस दुष्कर कार्य को सहजसाध्य करने के लिये पाण्डुलिपि सम्पादन की महती आवश्यकता है। अतः मेरे द्वारा पाण्डुलिपि सम्पादन के कार्य को शोधकार्य के रूप में चुना गया। इस कार्य के अन्तर्गत मेरे द्वारा श्रीपालचरित्र की विभिन्न पाण्डुलिपियों को एकत्र कर उसके मूल रूप का निर्णय करने का प्रयास किया गया। मैने पाण्डुलिपियों में से अशुद्ध अंशों को निकालकर रचनाकार के अभीष्ट अंश के निर्धारण का भी प्रयास किया है।

श्रीपालचरित्र में यत्र–तत्र भाषाजन्य, व्याकरणजन्य व कालजन्य अनेक त्रुटियाँ थी, यथा–**श्रीमज्जिनाधीसं** के स्थान पर **श्रीमज्जिनाधीशं, सम्भवोझितम्** के स्थान पर **सम्भवोज्झितम्, मुनिशोब्रतम्** के स्थान पर **मुनिसुव्रतम्, नमाम्योच्चैः** के स्थान पर **नमाम्युच्चैः** और **प्रभुम्** के स्थान पर **प्रभम्**। इसीप्रकार अनेक स्थानों पर प्राप्त त्रुटियों को मेरे द्वारा संशोधित करके उक्त चरित्र को परिष्कृत करने का

प्रयास किया गया। आशा है मेरे द्वारा किया गया साहित्य के परिष्करण का यह तुच्छ कार्य इच्छितजनों के लिये लाभकारी होगा।

पाठालोचन की सीमाएँ–

मूलपाठ या अभीष्ट पाठ के शोध के प्रसंग में पाठालोचन की सीमा निर्धारित करते समय पाँच स्थितियां होती हैं–

1. लेखक के अभीष्ट पाठ का शोध या निर्धारण वैज्ञानिक विधि से करना तथा प्रतिलिपियों के माध्यम से प्राप्त पाठ में किसी भी प्रकार का परिवर्तन, संशोधन या परिवर्धन न करना।
2. प्रथम स्थिति से आगे बढ़कर लेखक द्वारा हुई निश्चेष्ट विकृतियों का परिहार भी कर देना।
3. लेखक की रचना में प्राप्त व्याकरण, छन्द आदि की भूलों का परिहार कर देना। साथ ही लेखक जो भाव प्रकट करना चाहता हो, उसे प्रकट करने में उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली समर्थ नहीं होने पर दूसरी शब्दावली का स्थानापन्न कर देना।
4. लेखक द्वारा प्रयुक्त उपयुक्त पाठ के स्थान पर उससे भी श्रेष्ठ लगने वाले पाठ को स्वपक्ष से प्रस्तुत करना।
5. लेखक द्वारा प्रस्तुत पाठ यदि ग्रन्थ एवं प्रसंग आदि की दृष्टि से अपूर्ण लगता हो तो प्रकरणानुसार उसी छन्द एव शैली में अपनी ओर से कुछ पाठ लिख देना।

इन संभावित पाँच स्थितियों में से मात्र पहली एवं दूसरी स्थिति तक ही पाठालोचक की अधिकार–सीमा निर्धारित होती है। शेष तीन स्थितियाँ तो मूलपाठ के निर्धारण के स्थान पर मूलपाठ में हस्तक्षेप का रूप धारण कर लेती हैं। लेखक के अभीष्ट से यही तात्पर्य है कि उसने कौन–सा पाठ प्रस्तुत किया

होगा। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि उसे कौन–सा पाठ प्रस्तुत करना चाहिए था।

इस प्रकार इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पाठालोचक को अपनी सीमा का सदैव ध्यान रहना चाहिए। अपनी सीमा का अतिक्रमण करने के उपरान्त वह किस समय अपने उद्देश्य से च्युत हो जायेगा, कहा नहीं जा सकता। जो न केवल संस्कृति के लिये घातक है अपितु प्रत्येक रचनाकार की मौलिकता का भी घात करती है।

इसप्रकार पाठालोचन की समस्त प्रक्रिया, सीमाओं व विधाओं को समझकर मेरे द्वारा श्रीपालचरित्र की प्राप्त पाण्डुलिपियों का तुलनात्मक, समीक्षात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के आधार से यथोचित पाठ–संशोधन किया गया है, परन्तु कहीं भी रचनाकार के मूल उद्देश्य को भ्रमित होने नहीं दिया है। पाठसंशोधन में भाषाशास्त्रीय, व्याकरणशास्त्रीय, साहित्यशास्त्रीय, दर्शनशास्त्रीय और छन्दशास्त्रीय पक्षों को ध्यान में रखते हुए पाण्डुलिपियों में प्राप्त बहुविध पाठों में से शुद्ध, सार्थक और अनुकूल पाठ को मूलरूप में स्वीकृत करके अन्य पाठ को पादटिप्पणी (फुटनोट) में दिया गया है।

4.2 पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठभेदों की समीक्षा

श्रीपालचरित्र की प्राप्त तीनों प्रतियों के अध्ययन में अनेक पाठान्तर प्राप्त हुए हैं, जिनका संशोधन पाठालोचन के सिद्धान्तों व विधियों का अनुसरण करते हुये मेरे द्वारा किया गया है। जिनकी समीक्षा यहाँ उल्लिखित हैं। प्रत्येक समीक्षित स्थल पर पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठभेद को प्रस्तुत करते हुए उसी के समक्ष गृहीत पाठ का उल्लेख है जो कि निम्न प्रकार है –

1. **अवग्रह (ऽ) का प्रयोग–** श्रीपालचरित्र की तीनों ही प्रतियों में अवग्रह (ऽ) का प्रयोग नहीं किया गया है। वास्तव में ग्रन्थों में अवग्रह का प्रयोग विकल्पभाज्य होने से लेखक व प्रतिलिपिकार अपने लेखन में उसका प्रयोग नहीं करते हैं।

किन्तु आधुनिक संस्कृत व्याकरण का अनुकरण करते हुये जहाँ–जहाँ अवग्रह (ऽ) की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति मेरे द्वारा की गई। यथा–

- वन्देभिनंदनं – वन्देऽभिनन्दनं (1.3)
- जम्बूद्वीपेत्र – जम्बूद्वीपेऽत्र (1.31)
- वनेरण्ये – वनेऽरण्ये (1.41)
- द्वितीयोयं – द्वितीयोऽयं (1.61)
- तेवन्तिदेशे – तेऽवन्तिदेशे (2.25)
- योभवत् – योऽभवत् (1.65)

2. **द्वित्व प्रयोग – अचो रहाभ्यां द्वे**[1] अर्थात् अच् से परे रेफ या हकार के बाद यर प्रत्याहार के वर्णों को विकल्प से द्वित्व होता है। समीक्षा हेतु प्राप्त प्रतियों में द्वित्व और द्वित्वाभाव में एकरूपता नही है। वर्तमान में यह प्रयोग परिलक्षित न होने से आधुनिक रीति का अनुसरण करते हुए द्वित्व रहित प्रयोग स्वीकृत किया गया है। यथा –

   - सार्द्धं (क,ख,ग) – सार्धं (1.15)
   - मौलिद्धर (क,ख,ग) – मौलिधर (1.90)
   - धार्म्मिणां (क,ख,ग) – धार्मिणां (1.49)
   - निर्द्धनाः (क,ग) – निर्धनाः (1.27)
   - द्धनैर्द्धान्यै (क,ग) – धनैर्धान्यै (1.34)
   - सर्व्वसन्देह (क,ख) – सर्वसन्देह (1.115)
   - पूर्व्वपुन्यप्रशादेन (ग) – पूर्वपुण्यप्रसादेन (1.34)
   - प्राणिशर्म्मदम् (क) – प्राणिशर्मदम् (1.3)
   - कीर्त्ति (ग) – कीर्ति (1.82)
   - स्वर्ग्गागतै – स्वर्गागतै (1.42)

---

[1]अष्टाध्यायी 8.4.46

- नार्य्यः – नार्यः (1.55)
- सधर्मो (ग) – स**द्ध**र्मो (8.27)

कहीं–कहीं व्याकरणानुसार द्वित्व की आवश्यकता होने पर भी द्वित्व प्रयोग नहीं था, अतः यहाँ शुद्ध प्रयोग किया गया है।

- सप्ततत्वानां (क,ख,ग) – सप्तत**त्त्**वानां (1.66)
- गुणोज्वला (क,ख,ग) – गुणो**ज्ज्**वला (2.121)
- समुज्वलम् (क,ख,ग) – समुज्ज्वलम् (6.63)

3. **पंचमाक्षर का प्रयोग**–तीनों ही प्रतिलिपियों में कहीं भी परसवर्ण का प्रयोग नहीं हुआ है। पाणिनीय सूत्र **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णे**[1] के आधार पर अनुस्वार के स्थान पर परसवर्णरूप से वर्ग के पंचम अक्षर का प्रयोग मेरे द्वारा किया गया। यथा–

- पद्मलांछनम् – पद्मलाञ्छनम् (1.4)
- तेवंतिदेशे – तेऽवन्तिदेशे (2.25)
- घंटावृंदैरलंकृताः – घण्टावृन्दैरलङ्कृताः (2.26)
- पंकजात् – पङ्कजात् (2.40)
- मुनिमुखांबुजात् – मुनिमुखाम्बुजात् (2.64)
- संगतिः – सङ्गतिः (2.74)
- चंपकाम्रादि – चम्पकाम्रादि (1.53)
- तांबूलदायकः – ताम्बूलदायकः (2.100)
- भांडागारी – भाण्डागारी (2.101)
- मंत्रिन् – मन्त्रिन् (2.102)
- संचयम् – सञ्चयम् (1.133)
- पंचामृतैः – पञ्चामृतैः (1.80)

---

[1]अष्टाध्यायी 8.4.57

- जिनपुंगवाः – जिनपुङ्गवाः (1.43)
- सांगनाः – साङ्गनाः (1.44)
- पंचांग – पञ्चाङ्ग (1.95)

4. **छवर्ण के पूर्व च का प्रयोग– छे च**[1] इस पाणनीय सूत्र के अनुसार पदान्त ह्रस्व स्वर से छकार पर में होने पर दोनों के मध्य तुक् (च) का आगम होता है अतः उक्त प्रयोग मेरे द्वारा किया गया। तीनों पाण्डुलिपियों में अनेक स्थान पर च वर्ण का त्याग देखा गया, अतः व्याकरणानुसार च वर्ण नियोजित करते हुए शुद्ध शब्द ग्रहण किया गया। यथा–
   - सपरिछदः (क,ख,ग) – सपरिच्छदः (2.135)
   - तुछ (क,ख,ग) – तुच्छ (1.22), (4.25)
   - स्वेछया (ख) – स्वेच्छया (1.87)
   - पप्रछ (क,ख,ग) – पप्रच्छ (1.157)
   - स्वछतोया (क,ख,ग) – स्वच्छतोया (1.7)
   - तछेष (ग) – तच्छेष (2.51)
   - राजाभूछ्रेणिको (क,ख), राजाभूश्रेणिको (ग) – राजाभूच्छ्रेणिको[2] (1.60)
   - जगश्रीय (ग) – जगच्छ्रियः (1.36)

5. **णकार/नकार का प्रयोग – रषाभ्यां नो णः समानपदे**[3] और **अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**[4] उक्त सूत्रानुसार नकार के स्थान पर णकार स्वीकृत किया गया। अनेक स्थानों पर **णकार** प्रयोग प्रासंगिक नहीं होने पर नकार भी किया गया है। यथा –

---

[1]अष्टाध्यायी 6.1.73
[2]शश्छोटि (अष्टाध्यायी 8.4.63) सूत्रानुसार शकार के स्थान पर छकार
[3]अष्टाध्यायी 8.4.1
[4]अष्टाध्यायी 8.4.2

णकार प्रयोग –

- गुप्तित्रयेनोच्चै (ग) – गुप्तित्रयेणोच्चैः (1.77)
- पूर्वपुन्यप्रसादेन (ग) – पूर्वपुण्यप्रसादेन (1.34)
- कृपनैर्धनम् (ग) – कृपणैर्धनम् (6.36)

नकार प्रयोग –

- पद्मलांछणम् (क) – पद्मलांच्छनम्
- चेलणया (क) – चेलनया (1.85)
- वनपालेण (ग) – वनपालेन (1.91)
- शान्तभावेण (ग) – शान्तभावेन (1.62)
- प्रभुणा (ख,ग) – प्रभुना (7.16)
- फाल्गुणमासे (क) – फाल्गुनमासे (6.66)

6. **शकार/षकार/सकार का प्रयोग –** ग प्रति में प्रायः शकार के स्थान पर सकार और सकार की जगह शकार प्रयोग है। क और ख प्रति में भी शकार/ षकार/सकार का अन्यथा प्रयोग है अतः व्याकरण के अनुसार शुद्ध पाठ ग्रहण किया गया है। यथा –

- श्रीमज्जिनाधीसं (ग) – मज्जिनाधीशं (1.1)
- सुभावहाः (ख) – शुभावहाः (2.70)
- संसयः (ग) – संशयः (1.28)
- विसेषेण (ग) – विशेषेण (8.224)
- यसशा (ग) – यशसा (1.62)
- कोसदुर्ग (ग) – कोषदुर्ग (1.72)
- निःकाशितो (क,ख), निःष्काशितो (ग) – निष्कासितो (8.218)
- मुनिशोव्रतम् (ग) – मुनिसुव्रतम् (1.11)
- महानाशीद्विशालो (ग) – महानासीद्विशालो (1.32)

- प्रशादेन (ग) – प्रसादेन (1.34)
- शुमनोहरम् (क,ख) – सुमनोहरम् (9.90)
- शुभटोत्तमाः (ख) – सुभटोत्तमाः (9.24)
- शाशनं (क) – शासनं (8.197)
- (ग प्रति) स्र – श्र,
  यथा – सहश्र – सहस्र (4.98), (4.100)
  सहश्रे (क,ख) – सहस्रे (9.134)

7. **ठकार का प्रयोग–** तीनों प्रतियों में प्रायः अनेक स्थल पर ठकार के स्थान पर टकार का प्रयोग देखा गया, परन्तु **इष्ठन् प्रत्यय** के प्रयोग और व्याकरणानुसार यहाँ ठकार होना चाहिए। अतः ऐसे स्थलों पर टकार को संशोधित कर ठकार को किया गया। यथा –
   - कुष्टीना, कुष्टेन (क,ख,ग) – कुष्ठीना, कुष्ठेन (2.97)
   - श्रेष्टी – श्रेष्ठी (2.35,51,55,59,67,80,92)
   - श्रेष्टनं (क) – श्रेष्ठिनं (5.171)
   - परमेष्टिनाम् – परमेष्ठीनाम् (2.69)
   - ताल्वोष्ट – ताल्वोष्ठ (1.130)
   - तिष्टन्ति स्म – तिष्ठन्ति स्म (2.23)
   - प्रतिष्टाभिर्गरिष्टाभिः – प्रतिष्ठाभिर्गरिष्ठाभिः(1.40)
   - सन्तिष्टते – सन्तिष्ठते (8.47)

8. **त्व/क्त्वा का प्रयोग** – त्व और क्त्वा के स्थान पर प्रतिलिपियों अनेक स्थानों में त्त/त्ता का प्रयोग देखा गया है, जिसके स्थान पर व्याकरणानुसार शुद्ध पाठ ग्रहण किया गया है। यथा –
   - सम्यत्त (ग) – सम्यक्त्व (2.12) और (3.123)
   - भुत्ता (क) – भुक्त्वा (3.108) और (3.191)

- मुक्ता (क) – मुक्त्वा (3.21)
- त्यक्ता[1]– त्यक्त्वा

9. **वकार/बकार का प्रयोग** – तीनों प्रतिलिपियों में अलग–अलग स्थलों पर वकार/ बकार का अशुद्ध प्रयोग हुआ है। ख प्रति में तो प्रायः बकार का ही प्रयोग है। अतः व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध पाठ को स्वीकृत किया है। कहीं–कहीं तीनों ही प्रतियों में अशुद्ध प्रयोग होने पर संशोधित किया गया है। यथा –

वकार प्रयोग

- बिलयं बायुना बा घनावली (क) – विलयं वायुना वा घनावली (1.26)
- बिमलाधीशं (क,ख) – विमलाधीशं (1.8)
- बासुपूज्यं (क,ख) – वासुपूज्यं (1.7)
- बन्दे (क,ख) – वन्दे (1.9)
- बिशुद्धात्मा (क,ख) – विशुद्धात्मा (2.58,8.90)
- बृन्द (ख) – वृन्द (8.133)
- बन्दे सुब्रतं मुनिसुब्रतम् (क,ख,ग) – वन्दे सुव्रतं मुनिसुव्रतम् (1.11)

बकार प्रयोग

- मुनिमुखाम्वुजात् (ग) – मुनिमुखाम्बुजात् (2.64)
- संवभौ (ग) – संबभौ (1.80)
- विम्बैः (क) – बिम्बैः (8.136)
- वन्धो (क,ख,ग) – बन्धो (1.123)

10. **ख/ष का प्रयोग** – तीनों प्रतियों में अनेक स्थलों पर ख और ष के स्थान पर परस्पर विपरीत प्रयोग देखा गया। ग प्रति में इसकी बहुलता है। अतः व्याकरण की दृष्टि से संशोधित करके शुद्ध शब्द को अंगीकृत किया। यथा –

[1]श्रीपालचरित्र (क,ग 6.135), (ग 3.117), (क,ख,ग 8.131)

ख का प्रयोग

- तोषिताषिला (ग) – तोषिताखिला (1.66)
- सद्रिसुषंसत् (ग)– सुखं (1.56)
- सुषप्रदम् (ग) – सुखप्रदम् (3.2)
- षिलभूतलः (ग) – खिलभूतलः (3.3)
- दुःषानि (ग) – दुःखानि (3.73)
- चन्द्ररेषा (ग) – चन्द्ररेखा (6.29)
- षिलभूतलः (ग) – खिलभूतलः (3.3)

ष का प्रयोग

- गोमहिख्यादयो (ग) – गोमहिष्यादयो (7.2)
- मूखकाः (ख) – मूषकाः (2.18)
- शिख्याचार्य (ग) – शिष्याचार्य (2.8, पुष्पिका वाक्य)
- शिख्याव्रतं (ग) – शिक्षाव्रतं (3.310)
- सिष्याव्रतचतुष्टयं (कख) – शिक्षाव्रतचतुष्टयं (3.98)
- विखं (ग) – विषं (5.31)

11. **द्व के स्थान पर द्ध का प्रयोग –** तीनों प्रतियों में अनेक स्थलों पर द्ध के स्थान पर द्व का प्रयोग है जिसे संशोधित किया गया। यथा –

- जगद्वितः – जगद्धितः (2.8)
- जगद्विते – जगद्धिते (2.71)

12. अनेक स्थलों पर अक्षरों या शब्दों का क्रम भंग हुआ है उसे व्यवस्थित कर शुद्ध लिखा गया। यथा –

- सप्तदापनि (क) – सप्त**पदा**नि (1.96)
- यज त्वं (क) – **जय** त्वं (1.96)

- त्रिगजद्बन्धो (क) – **त्रिजग**द्बन्धो (1.123)
- मचगौरम् (क) – म**गोच**रम् (1.123)
- निजभक्तिशक्तिसहता (क) – निज**शक्तिभक्ति**सहिता (3.108)

13. पाण्डुलिपियों में अनेक स्थान पर **य वर्ण** के स्थान पर **जवर्ण** का प्रयोग किया गया था, जिसे संशोधित किया गया। यथा –
    - जथा (क) – **य**था (1.141)
    - जेन यातो (ग) – **येन जा**तो (2.117)
    - याता (ग) – **जा**ता (2.55)
    - योग्यजानं (ग) – योग्य**या**नं (1.107)
    - निजोजितं (ख) – नि**यो**जितं (2.127)
14. क प्रति में **च वर्ण** के स्थान पर **वा** का प्रयोग देखा गया, जिसे शुद्ध किया गया है। यथा –
    - वा (क) – च (1.74)
    - परचक्रंबा (क) – परचक्रं च (2.18)
15. क,ख,ग प्रतियों में अज्ञानवश, भूलवश, भ्रमवश हुयीं अनेक त्रुटियाँ पायी गयीं। जिनमें से शुद्ध पाठ को अंगीकृत किया है। यथा –
    - सरसती (ग) – सरस्वती (2.119)
    - मनोबभौ (ग) – मनोभवः (1.84)
    - चामरैः (ग) – सामरैः (1.89)
    - कुष्टेनि (ग) – कुष्ठिने (2.112)
    - शास्त्र (ग) – सात्र (2.54)
    - जगयज्योति (ग) – जगज्ज्योति (1.124)
    - विप्रप्रार्थे (ग) – विप्रपार्श्वे (2.47)

- श्रुत्वा (ग) – स्तुत्वा (2.61)
- स्तुत्वा (ख) – श्रुत्वा(2.64)
- भव्यानि (ग) – शास्त्राणि(2.66)
- राजितो (क), राजतो(ग) – राजते (1.71)
- कर्मवीर्यम् (क) – कर्मबीजम् (3.15)
- निहिति (ख) – निहन्ति (3.32)
- सगुप्ताचार्य (ग) – सुगुप्ताचार्य (3.10)
- योस्तुताहत्प्रणीतार्थः (ग)– योऽश्रुतोऽर्हत्प्रणीतार्थः (3.37)

16. तीनों ही प्रतियों में अशुद्धता –

तीनों ही प्रतियों में अनेक स्थलों पर अशुद्ध पद प्राप्त होने पर, परिमार्जित करके शुद्धपद लिखा गया है। यथा –

- गत्वानन्दभरेणा***श्रुतम्*** (क,ख), गत्वानन्दभरेना***स्तुतिम्***[1] (ग) के स्थान पर गत्वानन्दभरेणा***श्रु*** तं किया गया। (1.109)
- गोमहिष्पादयो (क,ख), गोमहिख्यादयो (ग) के स्थान पर **गोमहिष्यादयो** [2] पद उपयोग का किया गया है। (2.7)
- एणषङि्गकझषादीनां (क), एणषङि्गझषादीनां (ख), एणषङि्गकझषादानां (ग) पद के स्थान पर **एणखङ्गझषादीनां** इस पद का प्रयोग किया गया है। (2.53)
- पान्थानंन्यासु (क), पन्थानत्यासु (ख), पन्थानन्यासु (ग) इस पद को संशोधित करके **पान्थानन्यासु**[3] पद प्रयुक्त किया गया है। (2.9)

---

[1] प्रसंग की दृष्टि से उक्त शब्द उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। अतः यह संशोधन किया गया है।

[2] क,ख एवं ग प्रति में प्रदत्त शब्द उचित एवं सार्थक प्रतीत नहीं होते है, जो कि प्रतिलिपिगत दोष ही भाषित होता है अतः संशोधित करके प्रकरणानुसार **गोमहिष्यादयो** यह शब्द किया गया है।

[3] **पान्थान्**– पान्थ (पुल्लिंग) द्वितीया बहुवचनान्त पद, **अन्यासु**– अन्य (स्त्रीलिंग) सप्तमी बहुवचनान्त पद

- विद्याभा (क,ख), विद्याभी (ग) – **विद्याभिः**[1] (6.6)
- बहिर्वा (क,ख,ग) – **महीर्वा**[2] (2.7)
- संरेजु (क,ख), संरेजे (ग) – **सा रेजे** (2.25)
- गुणोज्वला (क,ख,ग) – **गुणोज्ज्वला** (2.121)
- वचस्तस्य (क,ख,ग) – **वचस्तस्याः**[3] (6.32)
- सुधीर्गज्वरिताशयः (क,ख,ग) – **सुधीर्गर्विताशयः** (6.139)
- क्षिपक (क,ख,ग) – **क्षपक**[4] (9.97)
- परजन्मनि (क,ख,ग)– हा मया मुनिं सन्तापः कृतो वा **पूर्वजन्मनि**[5]। (5.70)
- लसद्घाटक (क,ख), लसद्घातक (ग) – **लसद्घाटककुम्भाद्यैः** (1.46)

17. मात्राओं और वर्णों का प्रयोग –

सभी प्रतिलिपियों में अनेक स्थानों पर ह्रस्व–दीर्घ मात्राओं और वर्णों का अशुद्ध प्रयोग है, जिसे संशोधित किया गया है। जिसमें से कतिपय उदाहरण निम्न हैं –

क. अकार/आकार का सही प्रयोग नहीं होने पर संशोधित किया गया –

- सफालैः (ग) – सफलैः (1.53)
- अंतरंगोरिषड्वर्गाः (क,ग) – अंतरंगोरिषड्वर्गः (1.79)
- वर्द्धमान् (क), वर्द्धमाना (ग) – वर्द्धमान 1.125)
- निजोजितां (ग) – नियोजितम् (2.127)
- भवकारिणम् (ग) – भवकारिणाम् (1.137)
- मय (क,ख,ग) – मया[6] (2.126)

---

[1] विद्या शब्द तृतीया बहुवचनान्त पद

[2] नन्दन वन से तुलना की गई है, अतः उपमेय के रूप में **महीर्वा** शब्द ग्रहण किया है।

[3] प्रसंगानुसार स्त्रीलिंग का प्रयोग

[4] जैन साहित्य में आगत शब्द (क्षपकश्रेणी –8,9,10 एवं 12वां गुणस्थान)

[5] अतीत का विचार करने के कारण प्रकरण में अर्थ की दृष्टि से **पर** की जगह **पूर्व** शब्द उचित प्रतीत होता है, अतः संशोधन किया गया है।

[6] अस्मद् शब्द पुल्लिंग तृतीया एकवचन

ख. इकार/ईकार का प्रयोग – इकार और ईकार का अशुद्ध प्रयोग होने पर संशोधन करके समुचित प्रयोग किया गया। यथा –

- यथागुप्त (ख) – यथागुप्ति (1.77)
- क्षतीशानां (ख) – क्षितीशानां (1.79)
- हिसन्तिस्म (ग) – हसन्तिस्म (2.28)
- षड्भी (क,ख,ग) – षड्भिः[1] (1.74)
- गौतमस्वामि (क,ख,ग) – गौतमस्वामी[2] (1.129)
- प्राणि (ख,ग) – प्राणी (1.131)
- प्रकृति (क) – प्रकृतीः (2.68)
- कुलदीपिकाः (क,ग) – कुलदीपकाः (2.42)
- क्षित्रियान्वयः (क,ग) – क्षत्रियान्वयः (2.103)

ग. ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं के स्थान पर सुधार कर यथोचित मात्राओं का प्रयोग किया गया है। यथा –

- नगेषुच्चैर्यत्र – नगेषूच्चैर्यत्र (2.41)
- नन्दनाभूवाः – नन्दनाभुवाः (2.7)

घ. अनुस्वार का प्रयोग– बहुत से स्थानों पर आवश्यक होने पर भी पदान्त में अनुस्वार का प्रयोग नहीं था वहाँ अनुस्वार का नियोजन किया। यथा –

- समवादिसृति (ग) – समवादिसृतिम् (1.110)
- निर्ग्रन्थपदवी – निर्ग्रन्थपदवीम् (2.134)
- रूपसौभाग्यशालिनी – रूपसौभाग्यशालिनीम् (1.7)
- मुद्रिका – मुद्रिकाम् (3.78)

---

[1]षष् शब्द तृतीया बहुवचनान्त पद
[2]स्वामिन् शब्द प्रथमा एकवचन

ङ. पाण्डुलिपियों के अध्ययन में विसर्ग के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग देखा गया जिसे व्याकरणसम्मत विसर्ग सहित किया गया। यथा –

- क्रूराम् –क्रूराः (1.94)
- राजगुणाम्(ग) – राजगुणाः (1.73)
- भावितीर्थङ्करं(क) – भावितीर्थङ्करः (1.88)
- रविं(ग) – रविः (1.126)

च. विसर्ग प्रयोग – तीनों प्रतियों में अनेक स्थानों पर विसर्ग रहित एवं विसर्ग सहित तथा कहीं–कहीं विसर्ग और स् दोनों एक साथ हैं ऐसे पदों को संशोधित करके व्याकरणानुसार शुद्ध पद का प्रयोग किया गया है। यथा –

- कन्याया – कन्यायाः (2.116)
- शिखरः रूढान् – शिखरारूढान् (1.16)
- तावत्तमःस्तोमो(ग) – तावत्तमस्तोमो (1.126)
- बभौः(ग) – बभौः (1.77)
- काम(क) – कामः
- श्रेयस (ग) – श्रेयसः (1.78)
- वर्द्धमान (ग) – वर्द्धमानः (1.92)
- प्रभो (ग) – प्रभोः (1.111)
- समभ्यर्च्यः (ख) – समभ्यर्च्य (1.121)
- गुणान्विताः (क,ख,ग) – **गुणान्विता**[1]

छ. बहुत से स्थानों पर रकार की रेफ का अभाव पाया गया, जिसे आवश्यकतानुसार नियोजित किया गया –

- जिनेन्द्राचाम् (ग) – जिनेन्द्रार्चाम् (2.20)
- निग्रन्था (ग) – निर्ग्रन्था (2.22)

[1]राज्ञी का विशेषण होने से एकवचन का प्रयोग

- निमिताः (ग) – निर्मिताः (2.28)
- रात्रेध्वान्तं (क,ख,ग) – रात्रेर्ध्वान्तं (3.18)
- ऊजयन्तगिरिं (ख) – ऊर्जयन्तगिरिं (6.62)

18. श्रीपालचरित्र की तीनों पाण्डुलिपियों में कहीं कुछ श्लोक अनुपलब्ध हैं, कहीं कुछ श्लोक की पंक्ति, कहीं श्लोक में कोई पद तथा कहीं वर्ण अनुपलब्ध हैं। एक पाण्डुलिपि में तो एक पृष्ठ के सभी श्लोक अनुलब्ध हैं। इन सबका भली–भाँति गहराई से परीक्षण एवं अध्ययन करके यथार्थ संशोधन किया गया। जिसका उल्लेख निम्नलिखित है–

1. अनुपलब्ध श्लोक –

क और ख प्रति –

- तथा महीभुजा तेन श्रीपालः पुण्यसम्बलः ।
  सम्प्राप्य परमानन्दं भाण्डागारी पदे धृतः ।। (5.58)

- सर्वदा च सतां त्याज्यं पापसंतापकारणम् ।
  रात्रिभोजनमत्रोच्चैर्मांसव्रत विशुद्धये ।। (7.33)

ख प्रति –

यद्यपि ख प्रति में कोई भी श्लोक अनुपलब्ध नहीं है तथापि पृष्ठ संख्या 1 के पीछे का भाग अनुपलब्ध होने से श्लोक क्रमांक 18–38 तक के श्लोक अनुपलब्ध रहे है। यथा –

ग प्रति –

- सती मदनमञ्जूषा गुणमाला गुणोज्वला ।
  द्वाभ्यां सारप्रियाभ्याञ्च संयुतौ गुणमण्डितः ।। (5.186)

- सोमाप्राह सद्धर्मः क्रियते मया
  श्रीपालश्चाह
  लक्षणैर्दशभिर्युक्तो दयामूलस्तपो बलः ।
  मुक्तिदः केवलिप्रोक्तः सद्धर्मः क्रियते मया ।। (6.39)

- एवञ्च तद्द्वयं प्रीत्या स्नापयित्वा जगद्धितम् ।
  मण्डले च चतुर्दिक्षु चतस्रः प्रतिमाः शुभाः ।। (8.150)

- क्षिप्तं पापं त्वया पूर्वं सिद्धचक्रप्रपूजनात् ।
  तथाऽपि गन्धमात्रञ्च किञ्चित्पापं त्वयि स्थितम् ।। (8.214)

2. अनुपलब्ध पंक्तियाँ –

अनुपलब्ध श्लोकों की तरह ख और ग प्रति में निम्न पंक्ति अनुपलब्ध रही –

- पवित्रं भव्यजनानन्दबीजं मुक्तिपदप्रदम् । (8.170)

निम्न पंक्तियाँ दो बार उद्धृत हैं –

ख प्रति –

- इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः श्रीपालः प्रभुसत्तमः । (6.32)

ग प्रति –

- दानपूजातपःशीलधर्मेषु य–इह क्वचित्। (6.41)
- साधयित्वा बहून् देशान् जित्वा भूपशतानि च। (6.122)
- रत्नस्वर्णमयीश्चारू प्रतिमाश्च मनोहराः। (8.171)

3. अनुपलब्ध पद –

पाण्डुलिपियों में श्लोकों की अनुपलब्धता की तरह कई श्लोकों में पद भी अनुपलब्ध हैं, जो कि निम्नलिखित हैं–

अनुपलब्ध पद	**सम्यक्–पाठ**
• इति (क,ख)	जीविष्य**तीति** जीवोऽसौ प्रोच्यते मुनिपुङ्गवैः। (1.133)
• पूत (ख)	पानीय प्रविधौत**पूत** विकसत्पादाब्जयुग्मस्तदा। (1.161)
• तया (ग)	अथैकदा **तया** तत्र स नीतो जिनमन्दिरम्। (3.1)
• पुत्राय (ग)	महीपालाय **पुत्राय** तस्मै राज्यं निजं ततः। (8.81)
• रथाः (ग)	सर्ववस्तुशतैः पूर्णाः **रथाः** पूर्णमनोरथाः। (8.22)
• लक्ष्मी (ग)	धर्मेण निर्मलकुलं विमला च **लक्ष्मी**। (7.86)

- ममलं (ग) तस्मात् सुधर्म**ममलं** सुधियः कुरुध्वम्। (7.86)
- श्रृणु (ग) तदाकर्ण्य प्रियालापं स प्रोवाच **श्रृणु** प्रिये!। (4.34)
- कीर्तिश्च (ग) तथा लक्ष्मीश्च **कीर्तिश्च** तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम्। (7.48)
- सन्दोहः (ग) नष्टसन्देह**सन्दोहः** शीघ्रमुत्थाय सज्जनैः। (6.152)
- प्रभो (ग) सती मदनमञ्जूषा जगाद श्रृणु भो **प्रभो**। (6.144)
- शोक (ग) धनपालस्तदा राजा महाविस्मय **शोक** भाक्। (5.129)

अतिरिक्त पद – अनुपलब्ध पद की तरह अतिरिक्त पद भी प्रतियों में प्राप्त हैं, जिसे संशोधित किया गया है। यथा –

- **अशुद्ध पाठ** –सन्तुष्टः श्रेणिको राजा ***वीक्ष्य*** सुकेकीव घनावलीम्।(ग प्रति)

  सम्यक् पाठ – सन्तुष्टः श्रेणिको राजा सुकेकीव घनावलीम्।(1.110)
- **अशुद्ध पाठ** – किं ***इति मन्त्र*** बहूक्तेन भो भव्या! मन्त्रेणैतेन निश्चितम्। (ग प्रति)

  सम्यक् पाठ – किं बहूक्तेन भो भव्या! मन्त्रेणैतेन निश्चितम्।(5.42)
- **अशुद्ध पाठ** – धनपालस्तदा राजा महाविस्मय शोक भाक् ***सुधींद*** (ग प्रति)

  सम्यक् पाठ – धनपालस्तदा राजा महाविस्मय शोक भाक्। (5.129)
- **अशुद्ध पाठ** – स जयतु जिनदेवो यस्य धर्म ***प्रर्म*** प्रसादात्। (क प्रति)

  सम्यक् पाठ – स जयतु जिनदेवो यस्य धर्म प्रसादात् । (4.153)
- **अशुद्ध पाठ** – स रेजे सागरस्तत्र महत्वं वा ब्रुवन्निजम ***इवः***। (ख प्रति)

  सम्यक् पाठ – स रेजे सागरस्तत्र महत्वं वा ब्रुवन्निजम। (4.76)

4. **अनुपलब्ध वर्ण** – श्लोकों और पदों की तरह वर्ण भी अनुपलब्ध पायें गए हैं, जिनको संशोधित किया गया है।

- गंभीरस्सागच्चापि (ग) गम्भीरस्साग**रा**च्चापि (1.64)
- जिनेन्द्रचणाम्भोज (ग) जिनेन्द्रच**र**णाम्भोज (1.65)

- परैराजसवृतः (ग) परैराजश**तै**र्वृतः (1.70)
- चेलनामतो (ग) चेलना**ना**मतो (1.70)
- पुण्यांकुसतोत्तमान् (ग) पुण्याङ्कु**र**शतोत्तमान् (1.103)
- विशेतः (ग) विशे**ष**तः (1.27)
- परस्तुषु (ग) पर**व**स्तुषु (3.31)
- नावस्तुशतानि (ग) ना**ना**वस्तुशतानि (7.12)
- धिग्दुचारं (ग) धिग्दु**रा**चारं (5.181)

5. **पद परिवर्तन** – तीनों ही प्रतियों में श्लोकों की पंक्ति एवं पदों में भिन्नता रही है वहाँ विषयवस्तु, व्याकरण आदि का विचार करते हुए तीनों प्रतियों में से शुद्ध एवं सार्थक पद को ग्रहण किया गया है। यथा–
   - खेठै संवाहणै चापि चक्रीवा राजभिवृतः (ग) – **खेटैः** संवाह**नैश्चा**पि चक्री**व** राजभिर्वृतः। (1.15)
   - भो सुते! त्वमपि व्यक्तं सावधाना शृणु फलम् (क) – भो सुते! त्वमपि व्यक्तं सावधाना शृणु **ध्रुवम्**। (3.24)
   - जैनं ज्ञानं दयाध्यानं समाराध्यं विचक्षणैः (ख,ग) – **सदा जैनमतं ज्ञानं** समाराध्यं विचक्षणैः। (3.44)
   - यथाहकम् (क,ख) – यथा**क्रमम्** (2.130)
   - जयजन्मजरातङ्क (क), जन्मजन्मजरातंकः(ग) – जन्म**मृत्यु**जरातङ्क (3.6)
   - कर्मवीर्यम् (क) – कर्म**बीजं** (3.15)
   - ज्ञानंदर्शर्मकोटिदम् (ग) – शर्मकोटिदम् (3.42)
   - देवोर्हन्दोर्हन्दोष (ख,ग) –देवोऽर्हन् दोष (3.30)
   - विस्मृतम् (ग) – विस्**तृ**तम् (3.86)
   - बुधैर्ज्ञेयं (क) – बुधैर्देयं (3.104)
   - यद्गृहा (ख) – यद्गेहा (2.28)

- तव (क) –**तदा** ताभिः समस्ताभिस्तां समालोक्य सुन्दरीम् ।
- सत्सङ्ग विभाविनी (क,ख), सत्सङ्गमंभाविनी (ग) – सत्सङ्ग**सम्भाविनी** (3.61)
- कीर्त्रिस्फीर्त्रिहरं (क,ख,ग) – कीर्तिस्फीतिहरं (3.71)
- कृत्वा (क,ख,ग) – **धृ**त्वा (2.60)
- भूत्या (क,ख,ग) – भक्त्या (3.188)

➢ तृतीय अधिकार में सम्यक्–दर्शन, ज्ञान और चारित्र का स्वरुप वर्णित है। चारित्र के वर्णन के प्रारम्भ में **अथ चारित्रम्** ऐसा शीर्षक दिया गया है जबकि दर्शन और ज्ञान के वर्णन में सम्बन्धित शीर्षक नहीं है। अतः एकरूपता के लिए दर्शन और ज्ञान के प्रकरण में भी क्रमशः **अथ दर्शनम्** और **अथ ज्ञानम्** ऐसे शीर्षक नियोजित किये गए।

➢ ग प्रति में प्रथम अधिकार की श्लोक संख्या 55 में क्रम भंग होने पर उसे विषय की तारतम्यता के अनुसार व्यवस्थित किया गया है।

तीनों ही प्रतियों के अध्ययन और तुलना से यह ज्ञात होता है कि तीनों ही प्रतियों में अशुद्ध पाठ है, परन्तु उक्त अशुद्धियाँ प्रतिलिपिकार की हैं लेखक की नहीं। वर्णत्याग, पदत्याग, पंक्तित्याग और श्लोकत्याग भी प्रतिलिपिकारगत दोष ही हैं।

इस प्रकार मेरे द्वारा ब्रह्मनेमिदत्त विरचित श्रीपालचरित्र की तीन प्रतिलिपियों के माध्यम से पाठसम्पादन का कार्य यथासम्भव और यथाशक्ति किया गया है। पाठसम्पादन के माध्यम से किये गये संशोधन को पूर्ण रूप से यहाँ बताना शक्य नहीं है, तदर्थ मूलपाठ का अध्ययन अपेक्षित है।

पंचम अध्याय
श्रीपालचरित्र (पाठभेद सहित मूल)

पञ्चम अध्याय

श्रीपालचरित्र (पाठभेद सहित मूल)

प्रथमोऽधिकारः

ॐ नमः सिद्धेभ्यः[1]
नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं[2] सुराधीशार्चितक्रमम्।
श्रीपालचरितं वक्ष्ये[3] सिद्धचक्रार्चनोत्तमम् ।।1।।

वन्दे श्रीवृषभं देवं देवदेवैः[4] समर्चितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं व्यक्तानन्तचतुष्टयम्।। 2।।

अजितं जितकन्दर्पं सम्भवं सम्भवोज्झितम्[5]।
वन्देऽभिनन्दनं[6] भक्त्या त्रैलोक्यप्राणिशर्मदम्[7]।।3।।

नमामि सुमतिं शान्तं भव्यानां सुमतिप्रदम्।
पद्मप्रभं जिनं वन्दे पद्माभं पद्मलाञ्छनम्[8]।।4।।

श्रीसुपार्श्वं जिनाधीशं वन्देऽहं हरितप्रभम्[9]।
जितचन्द्रप्रभं चन्द्रप्रभं भक्त्या नमाम्यहम् ।।5।।

पुष्पदन्तं लसत्कुन्दपुष्पवत्कान्तिसंयुतम्[10]।
शीतलं श्रीजिनं वन्दे शीतलोत्तमवाग्भरम् ।।6।।

श्रेयो जिन जगच्छ्रेयः[11] कारणं भवतारणम्।
वासुपूज्यं[12] जगत्पूज्यं पद्मरागमणिप्रभम्[13]।।7।।

---

[1]ख प्रति ॐ नमो वीतरागाय नमः, ग प्रति श्री वीतरागाय नमः
[2]ग प्रति श्रीमज्जिनाधीसं
[3]कख प्रति बक्ष्ये, ग प्रति वक्षे
[4]ग प्रति सर्व्वदोवेः
[5]क प्रति सम्भवोझितम्
[6]क प्रति वन्देभिनन्दनं
[7]क प्रति प्राणिशर्म्मदम्, ग प्रति प्राणिसर्मदम्
[8]कख प्रति पद्मलांछनम्, ग प्रति पद्मलांछणम्
[9]क प्रति प्रभुम्
[10]क प्रति सुंयुतम्
[11]ख प्रति जगत् श्रेयः
[12]कख प्रति बासुपूज्यं
[13]क प्रति प्रभुं

निर्मलं विमलाधीशं[1] संस्तुवे शर्मदायकम्।
अनन्तानन्तसञ्ज्ञानमनन्तं जिनमद्भुतम्।।8।।

धर्मं सद्धर्मतीर्थेशं भक्तितः सम्भजाम्यहम् ।
शान्तीशं शान्तिदं वन्दे[2] शान्तदान्तैः[3] समाश्रितम्।।9।।

कुन्थुं कुन्थ्वादि[4]जन्तूनां रक्षणे चतुरोत्तमम्।
अरप्रभुं[5] कृतानन्दं नमामि गुणनायकम्।।10।।

मल्लिं सन्मल्लिकादाम सुगन्धोत्तमविग्रहम् ।
इन्द्रनीलप्रभं वन्दे सुव्रतं[6] मुनिसुव्रतम्[7] ।।11।।

नमिं तीर्थेश्वरं वन्दे केवलज्ञानभासुरम्।
लोकालोकस्वभावाब्जद्योतनैकदिवाकरम्[8]।।12।।

नेमिं धर्मरथे नेमिं वन्दे प्रावृड्घनप्रभम्[9]।
पार्श्वनाथं नमाम्युच्चैः[10] स्वकान्त्या कदलीनिभम्[11]।।13।।

संस्तुवे सन्मतिं देवं भव्यानां सन्मतिप्रदम्।
यं[12] वदन्ति बुधा वीरमहावीरादिनामकम् ।।14।।

एते तीर्थकराधीशाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः।
सार्धं[13] कालत्रयोत्पन्नैः सन्तु मे शान्तये जिनाः ।।15।।

दुष्टाष्टकर्मनिर्मुक्तान् सिद्धान् सिद्धिप्रदान् सताम्।
त्रैलोक्यशिखरारूढान् संस्तुवे त्रिजगत्स्तुतान्[14]।।16।।

---

[1]कख प्रति बिमलाधीशं
[2]कख प्रति बन्दे
[3]ख प्रति शान्तदान्तै
[4]ग प्रति कुथ्वादि
[5]ग प्रति अरप्रभं
[6]कख प्रति सुब्रतं
[7]ग प्रति शोब्रतम्
[8]कखग प्रति स्वभावाब्जद्योत
[9]ग प्रति प्रावृड्घनाघणम्
[10]ग प्रति नमाम्योच्चैः
[11]क प्रति निभाम्
[12]क प्रति ये
[13]कखग प्रति सार्द्धम्
[14]ग प्रति तिजत्सुतान्

श्रीसर्वज्ञमुखाम्भोजसमुत्पन्नां सरस्वतीम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदां वन्दे सन्देहहरणे सतीम्[1] ।।17।।

या सती सर्वजन्तूनां नेत्रप्राया हि भारती।
भानुभेव मनोध्वान्तनाशिनी तत्त्वभासिनी ।।18।।

जयन्तु गुरवो नित्यं सूरि[2] पाठकसाधवः।
ये सदा भव्यजन्तूनां संसाराम्भोधिसेतवः।।19।।

कुन्दकुन्दाख्यविद्यादिनन्दिश्रीमल्लिभूषणम्[3]।
श्रुतादिसागरादीनां गुरुणां संस्मराम्यहम्।।20।।

पञ्चैते परमानन्ददायिनः परमेष्ठिनः।
सन्तु मे भव्यजीवानां पञ्चमीगतिनायकाः।।21।।

एतेषां शर्महेतूनां[4] चरणस्मृतिमङ्गलम्।
कृत्वाहं तुच्छबुद्ध्यापि[5] श्रीपालचरितं ब्रुवे।।22।।

यच्चरित्रं सदा सर्वरोगसन्तापनाशनम्[6]।
सिद्धचक्रव्रतोपेतं[7] सिद्धौषधमिवोत्तमम् ।।23।।

यत्पुरा रचितं पूर्वं सूरिभिः श्रुतसागरैः।
तदहं चापि वक्ष्यामि किमाश्चर्यमतः परम् ।।24।।

यस्य श्रवणमात्रेण चरितेन विशेषतः।
पापराशिः क्षयं याति[8] भास्करेणेव[9] दुस्तमः।।25।।

यस्यप्रभावतो नूनं कुष्ठादिव्याधिसञ्चयः।
प्रयाति विलयं सद्यो वायुना वा घनावली ।।26।।

निर्धनाः[10] सद्धनं यस्माद्राज्यभ्रष्टाः स्वराज्यकम्।
स्थानभ्रष्टा निजस्थानं प्राप्नुवन्ति विशेषतः[11]।।27।।

---

[1]ग प्रति सतीन्
[2]ख प्रति सूरी
[3]क प्रति मल्लिभूषण ग प्रति मल्लिभूषणा
[4]ग प्रति एतेषासमीहतूनां
[5]कग प्रति तुछबुद्धयापि
[6]ख प्रति संतापनसनम्
[7]ग प्रति सिद्धचव्रतोपेतं
[8]ग प्रति जाति
[9]क प्रति भास्वरेणेव ग प्रति भास्करोनव
[10]कग प्रति निर्द्धना
[11]ग प्रति विशेतः

इन्द्रनागेन्द्रचक्र्यादि[1] पदं मुक्तिपदं स्थिरम् ।
सिद्धचक्रव्रतेनोच्चैः[2] प्राप्यते नात्र संशयः[3]।।28।।

ततो भव्यैर्जगत्सारं संसाराम्भोधिपारदम्[4]।
सिद्धचक्रव्रतं पूतं समाराध्यं सुखार्थिभिः ।।29।।

इत्यादिकं हृदि ज्ञात्वा प्रभावं भुवनोत्तमम्।
सिद्धचक्रव्रतस्योच्चैस्तच्चरित्रं समुच्यते।।30।।

शृण्वन्तु सुधियो भव्या जम्बूद्वीपेऽत्र सुन्दरे।
पवित्रे भारते क्षेत्रे जिनजन्ममहोत्सवैः।।31।।

तत्र देशो महानासीद्विशालो मगधाह्वयः।
श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्म[5] निवेशो भुवनोत्तमः ।।32।।

यत्र देशे वनादीनां प्रदेशेषु समन्ततः ।
शोभन्ते स्म ध्वजाद्यैश्च जिनसद्मपरम्पराः।।33।।

यत्र भव्या वसन्त्युच्चैर्धनैर्धान्यैर्जनैर्युताः[6]।
पूर्वपुण्यप्रसादेन[7] जयनादेन नित्यशः ।।34।।

यो देशो राजते स्मोच्चैः पुरैर्ग्रामैर्मनोहरैः[8]।
खेटैः संवाहनैश्चापि चक्रीव राजभिर्वृतः[9]।।35।।

नानाकरैर्विभाति स्म यो देशः सम्पदाशतैः।
भव्यानां पुण्यपाकेन निवेशो वा जगच्छ्रियः[10]।।36।।

यत्र मार्गेषु[11] सत्तुङ्गाः सफलाः सर्वपादपाः ।
सुच्छायाः तर्पिणो[12] नित्यं पान्थानां[13] सज्जना यथा।।37।।

[1]ग प्रति वक्र्यादि
[2]ग प्रति व्रतोनोच्चैः
[3]ग प्रति संसयः
[4]ग प्रति संसाराम्वोधिपारदम्
[5]कग प्रति सधर्म
[6]क प्रति वसन्त्यूच्चैर्द्धनैर्द्धान्यैर्जनैर्युताः, ग प्रति वसन्त्युच्चैः र्द्धनिध्यान्येर्जनैर्युताः
[7]ग प्रति पूर्व्वपुन्यप्रशादेन
[8]ग प्रति पुरैर्ग्रारमेर्मनोहरै
[9]ग प्रति खेठै संवाहणै चापि चक्रीवा राजभिवृतः
[10]ग प्रति भव्यानां पुंन्यपाकेन विवेशो वा जगश्रीय
[11]ग प्रति यत्रमार्ग्गेषु
[12]क प्रति सुछायास्तर्पितो, ग प्रतौ सुछायातर्प्पिनो
[13]ख प्रति पन्थानां

नालिकेराम्रखर्जूरवृक्षास्सप्तच्छदादयः।
यत्र नित्यं फलन्तिस्म भव्यानां वा मनोरथाः ।।38।।

स्वच्छतोया विभान्ति स्म[1] यत्र नित्यं जलाशयाः।
पद्मान्विता विशालाश्च ते सतां मानसोपमाः[2]।।39।।

यत्र भव्याः जिनेन्द्राणां तीर्थयात्रादिकर्मभिः।
प्रतिष्ठाभिर्गरिष्ठाभिः[3] सञ्चयन्ति सदा शुभम्[4]।।40।।

वनेऽरण्ये[5] नगेषूच्चैर्यत्र नित्यं मुनीश्वराः।
साधयन्ति सदाचारैः तपः[6] स्वर्गापवर्गकम्।।41।।

स्वर्गागतैर्जनैर्यत्र कृत्वा धर्मं जिनेशिनाम्।
दानपूजातपश्शीलं प्राप्यते सुखमुत्तमम् ।।42।।

इत्यादि सम्पदोपेतः स देशो मगधाभिधः।
वर्ण्यते केन यत्रोच्चैः प्राभवन् जिनपुङ्गवाः ।।43।।

इन्द्रादयः सदा यत्र समागत्य निरन्तरम्।
प्रत्यक्षं श्रीजिनाधीशं पूजयन्ति स्म[7] साङ्गनाः[8]।।44।।

पुरं राजगृहं तत्र पुरन्दरपुरोपमम्।
पञ्चसप्ततलोत्तुङ्गगृहा यत्र निरन्तरम् ।।45।।

नानावर्णध्वजव्रातैर्मरुद्धूतैर्मनोहरैः[9]।
लसद्घाटक[10]कुम्भाद्यैः स्वर्गं वा हसति स्म यत् ।।46।।

यत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां रत्नतोरणसंयुताः।
स्वर्गापवर्गमार्गा वा प्रासादाः प्रविरेजिरे ।।47।।

---

[1]ग प्रति स्वछतोयाविभान्तीस्म
[2]ग प्रति मानशोपमाः
[3]कखग प्रति प्रतिष्टाभिर्गरिष्टाभिः
[4]कखग प्रति श्रुभम्
[5]क प्रति वनेरणे
[6]कग प्रति सारं
[7]ग प्रति पूजंतीस्म
[8]ख प्रति सांगताः
[9]ग प्रति मरुर्धूतैर्मनोहरैः
[10]कग प्रति लसद्घाटक ख प्रति लसद्घातक

यत्पुरं सर्वदा सर्वैर्धनैर्धान्यैर्जनोत्करैः।
नानावस्तुशतैः पूर्णं मणिमुक्ताफलादिभिः।।48।।

भव्यानां पुण्यतो नित्यं चारुपञ्चेन्द्रियोचितैः।
भोगोपभोगसन्दोहैः सञ्जातं[1] पुण्यपत्तनम् ।।49।।

यत्पुर्याश्च[2] चतुर्दिक्षु वनादौ श्रीजिनालयाः।
रत्नादिप्रतिमोपेताः सुरेन्द्राद्यैः समर्चिताः ।।50।।

सर्वदा भव्यसन्दोहमहास्तोत्रशतैः शुभैः[3]।
गीतैर्नृत्यैश्च वादित्रै[4]र्भान्ति[5] स्मोच्चैर्जगद्धिताः ।।51।।

येषां दर्शनमात्रेण भव्यानां पश्यतां तराम् ।
पापं प्रयाति तत्कालं भास्करेण यथा तमः ।।52।।

चम्पकाम्रादिवृक्षौघैः सफलैः सजलाशयैः[6]।
मोहयन्तिस्म ते चित्तं सतां पुण्याकरा यथा ।।53।।

तथा तत्र पुरोत्पन्ना भव्याः सद्धर्मशालिनः ।
रूपसौभाग्यसम्पन्ना जयन्तिस्म सदा सुरान् ।।54।।

यत्र नार्यः सुरूपाढ्याः सम्यक्त्वव्रतमण्डिताः ।
दिव्याभरणवस्त्राद्यैर्लज्जयन्तिस्म[7] देवताः ।।55।।[8]

सन्तो यत्र जनाः सर्वे दानपूजातपोव्रतैः।
सम्यक्त्वशीलसम्पन्नाः साधयन्तिस्म सत्सुखम्[9]।।56।।

यत्र भव्याः सदा सर्वे[10] महादानप्रवाहतः।
कान्तालताः सुवस्त्राद्यैः रेजिरे वा सुरद्रुमाः।।57।।

एवं तत्र वसन्तिस्म सन्तः सत्पुण्यपाकतः।
धर्मार्थकामसम्पन्ना भाविमुक्तिवधूवराः ।।58।।

---

[1]ग प्रति संयातं
[2]कखग प्रति यत्पुराच्च
[3]कखग प्रति श्रुभैः
[4]ग प्रति वादित्रिः
[5]ख प्रति सांन्ति
[6]ग प्रति वृछौघैः सफालै सजलासयैः
[7]ग प्रति लजयन्तिस्म
[8]ग प्रति श्लोक संख्या का क्रम भंग (55=56)
[9]ग प्रति सद्रिसुषं
[10]क प्रति सर्व

यच्च पुत्रोत्सवैर्नित्यं जिनपूजामहोत्सवैः।
विवाहमङ्गलैश्चापि पुरं वा तन्मयं बभौ ।।59।।

एवं शोभाशतैर्युक्ते[1] तस्मिन् राजगृहे पुरे[2] ।
राजाभूच्छ्रेणिको[3] नाम सम्यग्दृष्टिः शिरोमणिः[4]।।60।।

प्रतापनिर्जितारातिमण्डलो महिमास्पदम् ।
भास्करो वा द्वितीयोऽयं कुमार्गतिमिरापहः ।।61।।

नित्यं यः शान्तभावेन[5] स्वकान्त्या यशसा[6] श्रिया ।
निर्दोषेण व्यजेष्टोच्चैश्चन्द्रबिम्बं सलाञ्छनम्[7]।।62।।

कल्पवृक्षो जडश्चिन्तामणिः पाषाणमेव[8] च ।
कामधेनुः पशुः किं तैः समोऽयं[9] क्रियते नृपः ।।63।।

यो विज्ञानी सुधीर्ज्ञाता दाता वाञ्छातिरेकतः।
गम्भीरस्सागराच्चापि[10] महिम्ना[11] मेरूतो महान् ।।64।।

जिनेन्द्रचरणाम्भोज[12]सेवनैकमधुव्रतः।
योऽभवन्मुनिपादाब्जरजोरञ्जितमस्तकः ।।65।।

लसत्किरीट[13]माणिक्यैर्दिव्यवस्त्रैरलङ्कृतः।
पर्यटन् कल्पवृक्षो वा यो बभौ तोषिताखिलः[14]।।66।।

हस्त्यश्व[15]रथपादातिच्छत्रसिंहासनादिभिः।
महामण्डलनाथोऽसौ यो भाश्चक्रधरो[16] यथा ।।67।।

---

[1]ग प्रति शोभासतैर्युक्ते
[2]ग प्रति वरे
[3]कख प्रति राजाभूछ्रेणिको, ग प्रति राजाभूश्रेणिको
[4]ख प्रति सिरोमणिः
[5]ग प्रति शांतभावेण
[6]ग प्रति यसशाश्रिया
[7]ग प्रति बिंबस्यलांछनम्
[8]क प्रति पाषाणं एव, ग प्रति पाषाण एव
[9]ग प्रति कामधेनुं पशुं किं तेः सयोयं
[10]ग प्रति गंभीरस्सागच्चापि (अक्षरलोप)
[11]ग प्रति जिनेन्द्रचणाम्भोज (अक्षरलोप)
[12]ख प्रति महिमा
[13]खग प्रति लसतिरीट
[14]ग प्रति तोषिताषिला
[15]ग प्रति हस्त्यस्व
[16]कख प्रति भाच्चक्रधरो

नानारत्नसुवर्णाद्यैः सम्पूर्णो निधिवत्तराम्।
भण्डारो वर्ण्यते केन नित्यदानैश्च तस्य यः।।68।।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतीति नामभाक् ।
राजविद्याश्चतस्रोऽपि तस्याभूवन् फलप्रदाः[1] ।।69।।

स[2] बभौ भूपतिर्नित्यं परैराजशतैर्वृतः[3]।
यथा स्वर्गे सुधीः[4] शक्रः संयुतः सुरसत्तमैः[5]।।70।।

तथा[6] स राजते[7] राजा राज्याङ्गैः सप्तभिस्तराम्।
जीवादिसप्तभिस्तत्त्वैर्यथा लोकोऽयमुन्नतः ।।71।।

उक्तं च[8]
स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशदुर्गदेशबलं तथा[9] ।
सप्ताङ्गराज्यमित्याहुर्नीतिशास्त्रविचक्षणाः ।।72।।

सन्धिविग्रहयानाख्यमासनं[10] संश्रयस्तथा ।
द्वैधीभावः षडेते च प्रोक्ता राजगुणा[11] बुधैः ।।73।।

तैश्च राजगुणैः षड्भिः[12] राजा राजीवलोचनः ।
स रेजे मुनिनाथो वा[13] षडावश्यककर्मभिः ।।74।।

यथा पञ्चाङ्गमन्त्रेण स प्रभुः प्रविराजितः।
तथा पञ्चनमस्कारमहामन्त्रेण[14] शुद्धधीः[15]।।75।।

---

[1]ग प्रति तस्याभ् सफलप्रदाः
[2]क प्रति सं
[3]ग प्रति परैराजसवृतः (अक्षरलोप)
[4]क प्रति सुधा
[5]ग प्रति सरसत्तमैः
[6]ग प्रति थेते
[7]क प्रति राजितो ग प्रति राजतो
[8]ग प्रति 'उक्तं च' यह पाठ नही है
[9]ग प्रति स्वाम्यमात्यसुरत्कोसदुर्गदेशबलस्तथा
[10]ग प्रति नीख्यमासनं
[11]ग प्रति राजगुणाम्
[12]कखग प्रति षड्भी (षष् शब्द तृतीया बहुवचन षड्भिः)
[13]क प्रति च, ख प्रति बा
[14]ख प्रति पञ्चन्मस्कारः
[15]ख प्रति सुद्धधीः, ग प्रति श्रुद्धधीः

तथा हि
सहायः साधनोपायो देशं कोशं बलाबलम्[1]।
विपत्तेश्च प्रतीकारः पञ्चाङ्गं मन्त्रमाश्रयत्[2]।।76।।

यथागुप्तित्रयेणोच्चैः[3] शोभते मुनिसत्तमः ।
मन्त्रोत्साहप्रभुख्यातशक्तिभिः स प्रभुर्बभौ ।।77।।

न केवलं बहिः शत्रून् जयतिस्म महीपतिः ।
अन्तरङ्गोरूशत्रूंश्च षड्विधान् संव्यजेष्ट सः ।।78।।

उक्तञ्च
कामः[4] क्रोधश्चमानश्च लोभोहर्षस्तथामदः।
अन्तरङ्गोऽरिषड्वर्गः[5] क्षितीशानां[6] भवन्त्यमी[7]।।79।।

तस्य श्रेणिकभूपस्य दिव्यरूपस्य[8] सम्बभौ[9]।
चेलनानामतो[10] राज्ञी रतिर्वाकामभूपतेः।।80।।

रूपलावण्य[11]सौभाग्यभाग्यरत्नाकरक्षितिः।
सा रेजे निजपुण्येन सुव्रता[12] वा मुनेर्मतिः ।।81।।

पात्रदानेन पूतात्मा या[13] सदा शर्मकारिणी[14]।
अभूत्त्रिविष्टपे ख्याता कीर्तिर्वा श्रेयसः[15] प्रभोः।।82।।

जिनेन्द्रचरणाम्भोजसेवने भ्रमरी यथा।
सर्वतत्त्वार्थसन्दोहविज्ञाना वा सरस्वती[16]।।83।।

---

[1]ग प्रति सहीय साधनोपायोदेश्यं कोवलावलम्,
[2]ग प्रति पंचांमंत्रमाश्रयत् (अक्षरलोप)
[3]ख प्रति यथागुप्तत्रयेणोच्चैः, ग प्रति यथागुप्तित्रयेनोच्चैः
[4]क प्रति काम
[5]ख प्रति अंतरंगोरिषड्वर्गः, कग प्रति अंतरंगोरिषड्वर्गाः
[6]ख प्रति क्षतीशानां
[7]क प्रति भवेत्यमी
[8]ग प्रति दिव्यनूपस्य
[9]ग प्रति संवभौ
[10]ग प्रति चेलनामतो(अक्षरलोप)
[11]ग प्रति नूपलावण्य
[12]कख प्रति सुब्रता
[13]क प्रति पूतात्मार्व्य
[14]ख प्रति सर्मकारिणी
[15]ग प्रति श्रेयस
[16]ग प्रति सरसती

दिव्याभरणसद्वस्त्रमण्डिता सा सती बभौ ।
नित्यं दानप्रवाहेण कल्पवल्लीव कोमला ।।84।।

तया चेलनया[1] सार्धं[2] भूपः पञ्चेन्द्रियोचितान्।
भुञ्जन्भोगान्मनोभीष्टान् स बभौ वा मनोभवः[3]।।85।।

तथा राज्ञीशतोपेतो भूरिपुत्रैरलङ्कृतः।
नाम्नाभयकुमाराद्यैः पूर्णचन्द्रो यथोडुभिः।।86।।

स तस्थौ[4] पालयन्प्रीत्या स्वप्रजाः पुत्रवत्सदा ।
चन्द्रकान्तिलसत्कीर्तिर्जिनभक्तिपरायणः ।।87।।

तस्य चारुगुणग्रामो निर्मलो मणिवत्तराम्[5] ।
वर्ण्यते केन यो भूपो भावितीर्थङ्करः[6] परः ।।88।।

अथैकदा महीनाथः सभायामासने स्थितः ।
गङ्गा–तरङ्ग–सङ्काशैः बीज्यमानः स चामरैः[7] ।।89।।

अनेकभूपमौलिधररत्नरञ्जितपङ्कजः[8]।
छत्रादिभिः समायुक्तो देवेन्द्रो वा सुरैर्वृतः ।।90।।

यावदास्ते सुखं तावद्वनपालेन[9] सादरम् ।
नानापुष्पफलान्युच्चैरग्रे[10] धृत्वा प्रणम्य च ।।91।।

विज्ञप्तो देवदेवेन्द्रैर्वन्दितो जिनपुङ्गवः।
वर्द्धमानः[11] समायातो विस्तीर्णे विपुलाचले ।।92।।

यस्य प्रभावतो राजन् सर्वजातिर्वनस्पतिः[12]।
सर्वर्तुर्फलपुष्पौघैर्विरेजे वनिता[13] यथा ।।93।।

---

[1]क प्रति चेलणया
[2]कखग प्रति सार्द्धं
[3]ग प्रति मनोवभौ
[4]ग प्रति सतथौ
[5]ग प्रति मणिस्वतराम्
[6]क प्रति तीर्थंकरं, खग प्रति भावितीर्थकरः
[7]ग प्रति संकासै बीज्यमानै ससामरैः
[8]कखग प्रति मौलिद्धरत्नरंजितपत्कजः
[9]ग प्रति तावद्वनपालेण
[10]ग प्रति नानापुष्पफलाकीर्णेन्युच्चैरग्रे
[11]ग प्रति वर्द्धमानः
[12]ग प्रति सर्वयातिर्वनस्पतिः
[13]क प्रति वनेता

क्रूराः[1] सिंहादयो जीवा[2] मुक्तवैराः परस्परम्।
एकत्र संवसन्त्युच्चैः परमानन्दनिर्झराः।।94।।

नानादेवविमानाद्यैर्जयनादैःसमन्ततः।
दिव्यदेवाङ्गनावृन्दैर्गिरिःस्वर्गायते[3] प्रभो ।।95।।

इतिश्रवणमात्रेण श्रेणिको मगधेश्वरः ।
सिंहासनात्समुत्थाय[4] गत्वा सप्तपदानि[5] च ।।96।।

जय त्वं वीरनाथेति सम्ब्रुवन् हर्षनिर्झरः।
दत्वा तस्मै महादानं तां दिशां[6] सम्प्रणम्य च ।।97।।

आनन्ददायिनीं भेरीं दापयामास सत्वरम्।
तन्निनादेन भव्यौघाः प्रोल्लसन्मुखपङ्कजाः।।98।।

वन्दितुं श्रीमहावीरं केवलज्ञानभास्करम्।
विशिष्टाष्टमहाद्रव्यसामग्रीं चक्रिरे मुदा ।।99।।

भव्यास्ते परमानन्दैर्दिव्यवस्त्रैर्विरेजिरे ।
पूजाद्रव्यशतोपेताः[7] पवित्रा वा सुरोत्तमाः ।।100।।

नार्योऽपि[8] निर्ययुः काश्चित् सुगन्धजलसंभृतम्।
स्वर्णभृङ्गारमादाय मेरुशृङ्गमिवोन्नतः[9]।।101।।

काश्चिच्चन्दनकाश्मीरं समुद्धृत्य[10] प्रमोदतः ।
शीतलं पापसन्तापनाशनं वा जिनोदितम्।।102।।

काश्चिच्छुभाक्षतान्युच्चैः[11]पुण्याङ्कुरशतोत्तमान्[12]।
काश्चिन्नानाप्रसूनानि सुगन्धानि विशेषतः ।।103।।

---

[1]ग प्रति क्रूराम्
[2]क प्रति जीवाः
[3]ग प्रति स्वर्ग्गयते
[4]क प्रति सिंहासनात्समुबाय, ग प्रति सिंहासनात्समुथाय
[5]क प्रति सप्तदापनि
[6]ग प्रति तं दिशां
[7]ग प्रति द्रव्यसतोपेता
[8]ग प्रति निर्योपि
[9]ग प्रति मेरुश्रृंगमिवोत्तमं
[10]कख प्रति समुधृत्य
[11]कख प्रति काश्चित्छुभाक्षतान्युच्चैः, ग प्रति काश्चिशुभाक्षतान्युच्चैः
[12]ग प्रति पुण्यांकुसतोत्तमान् (अक्षरलोप)

काश्चिच्चरूत्करैर्दीपैर्धूपैः[1] सारफलोत्करैः।
सार्धं[2] प्रचेलुरत्यन्तजिनभक्तिपरायणाः।।104।।

एवं नार्यो जिनेन्द्रोक्त[3]धर्मकर्मसु तत्पराः ।
सारशृङ्गारसम्भारा निर्ययुर्वा सुराङ्गनाः ।।105।।

इत्येवं सर्वभव्यौघैः[4] संयुतो नृपसत्तमः ।
चेलनादिप्रियोपेतः परैः पुत्रादिभिर्युतः ।।106।।

योग्ययानं[5] समारुढो विलसच्छत्रचामरः ।
ध्वनद्वादित्रसन्दोहैर्जय[6]कोलाहलस्वनैः ।।107।।

चारणैर्मागधाद्यैश्च स्तूयमानयशोधनः ।
देवेन्द्रो वा लसन्मूर्तिर्निर्ययौ जिनभक्तिभाक् ।।108।।

गत्वानन्दभरेणाशु तं[7] गिरिं विपुलाचलम्[8]।
समारूह्य सुधीस्तुङ्गं कैलाशं वादिचक्रभृत् ।।109।।

समवादिसृतिं वीक्ष्य नानाध्वजशतैर्युतम्[9]।
सन्तुष्टः श्रेणिको राजा[10] सुकेकीव घनावलीम् ।।110।।

त्रिःपरीत्य[11] तदा भक्त्या तां प्रविश्य प्रभोः सभाम् ।
मानस्तम्भादिभिर्नित्यं पवित्रीकृतभूतलम्[12]।।111।।

तं विलोक्य जिनं वीरं केवलज्ञानभास्करम् ।
सुरासुरनराधीशैः समर्चितपदद्वयम् ।।112।।

दिव्यरत्नसुवर्णोरुपीठत्रयसमन्वितम् ।
मेरोः शृङ्गमिवोत्तुङ्गसिंहासनमधिष्ठितम्[13]।।113।।

---

[1]ग प्रति काश्चिच्चरूत्करैर्दीपेर्द्धूपेः
[2]कखग प्रति सार्द्धं
[3]ग प्रति जिनेंप्रोक्त
[4]ख प्रति भव्योघैः
[5]ग प्रति योग्यजानं
[6]ग प्रति ध्वनिद्वादत्रसंदोहैः
[7]कख प्रति गत्वानन्दभरेणाश्रुतम्, ग प्रति गत्वानन्दभरेनास्तुतिम्
[8]ग प्रति विपुलाचले
[9]खग प्रति नानाध्वजशतैर्युताम्
[10]ग प्रति 'वीक्ष्य' शब्द अतिरिक्त
[11]कख प्रति त्रिपरीत्य
[12]ग प्रति भूतलाम्
[13]कखग प्रति सिंहासनमधिष्टितम्

सेवागतत्रिधा चन्द्राकारच्छत्रत्रयान्वितम्।
वीज्यमानं[1] चतुःषष्टिचामरैर्निर्झरोपमैः[2] ।।114।।

सर्वसन्देह[3]विध्वंसि[4]दिव्यध्वनिविराजितम् ।
हतशोकमहाशोकतरूसंश्रितविग्रहम् ।।115।।

कोटिसूर्यप्रभास्पर्द्धिलसद्भामण्डलादिकम् ।
यत्र भव्याः प्रपश्यन्ति[5] स्वकीयं भवसप्तकम्[6]।।116।।

नन्ददेव! जयत्युच्चैः पुष्पवृष्टि[7]समन्वितम् ।
मोहारिविजयोत्पन्नदेवदुन्दुभिः कोटिभिः ।।117।।

समुत्पन्नमहानादैर्गर्जिताखिलभूतलम् ।
चतुस्त्रिंशत्महाश्चर्यैः प्रसिद्धैः रञ्जिताखिलम् ।।118।।

गणैर्द्वादशभिर्नित्यंनिर्ग्रन्था[8]दिभिरावृतम् ।
ज्ञानदर्शनवीर्यादिव्यक्तानन्तचतुष्टयम् ।।119।।

इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्कखेचराद्यैःसमर्चितम्[9]।
नानानरेन्द्रसन्दोहसमाराधितपङ्कजम्[10]।।120।।

विशिष्टाष्टमहाद्रव्यैःसमभ्यर्च्य जिनेश्वरम्[11]।
चकार संस्तुतिं राजा महाभक्तिपरायणः ।।121।।

जय त्वं त्रिजगद्देव! जय चिन्तामणे!प्रभो!।
जय त्वं परमानन्दकारणं भव्यदेहिनाम् ।।122।।

जय त्वं त्रिजगद्बन्धो[12]! जयसर्वज्ञसर्ववित्! ।
जय जन्मजरातङ्कनिवारणभिषग्वरः[13] ।।123।।

---

[1]ग प्रति बीजमान
[2]क प्रति चतुःषष्टीचामरैर्निकरोपमैः
[3]कख प्रति सर्व्वसन्देह
[4]ग प्रति विध्वंसी
[5]ग प्रति प्रपस्यन्ति
[6]ग प्रति सप्तकाम्
[7]ग प्रति तंददेवजयेत्युच्चैः पुष्पविष्टि
[8]ग प्रतौ निग्रन्था
[9]ग प्रतौ समर्चिताम्
[10]ग प्रति पत्कजम्
[11]ख प्रति समभ्यर्च्यः जिनेश्वरम्, ग प्रति समभ्यर्च्य जिनेश्वराम्
[12]क प्रति त्रिगजद्बन्धो
[13]ख निवारणाभिषग्वरः, ग प्रति भेषग्वर

जय त्वं सर्वजन्तूनां करुणारससागर! ।
वीतरागजगज्ज्योतिर्द्योतिताखिलभूतलम्[1] ।।124।।

जय वीर महावीर सन्मते वर्द्धमान![2] भाक्[3] ।
महत्यादि महावीर! जय त्वं धर्मनायक![4] ।।125।।

स्वामिंस्तावत्तमस्तोमो यावन्नोदयते रविः ।
तावज्जनो जड़ो[5] दुःखी यावत्त्वां नाश्रितस्त्रिधा ।।126।।

प्रभो! कल्पलतेवोच्चैर्भक्तिस्ते सौख्यदायिनी।
आसंसारं सुधीर्भूयादाधिर्व्याधिर्विनाशिनी ।।127।।

इत्यादि स्तुतिवाक्यौघैः तं स्तुत्वा जिननायकम्।
भूमौ न्यस्तशिरोदेशो[6] ननाम चरणद्वयम् ।।128।।

ततः श्रीगौतमस्वामीप्रमुखान्मुनिपुङ्गवान् ।
नत्वा स्तुत्वा स्थितो भूपो नरकोष्ठेऽतिभक्तिमान् ।।129।।

तदा तीर्थकराधीश–वीर–श्रीमुखपङ्कजात् ।
वक्तुमिच्छां[7] विना चापि ताल्वोष्ठस्पंदवर्जितः[8] ।।130।।

दिव्यध्वनिः समुत्पन्नः स्पष्टाक्षरकदम्बकः ।
नानादेशागतप्राणी चित्तसम्प्रीणनक्षमः ।।131।।

ध्वनिना तेन पञ्चास्तिकायलक्षणविस्तरम् ।
प्रोवाच सप्ततत्वार्थान् स पदार्थान् जिनेश्वरः ।।132।।

निश्चयाज्जीवितः[9] पूर्वं जीवतीह पुमानयम्[10] ।
जीविष्यतीति[11] जीवोऽसौ प्रोच्यते मुनिपुङ्गवैः ।।133।।

---

[1]ग प्रति जगयज्योति
[2]क प्रति वर्द्धमान्, ग प्रति वर्द्धमाना
[3]कखग प्रति बाक्
[4]ख प्रतौ धर्म्मनायकः
[5]ग प्रति जरो
[6]कखग प्रति शिरोदेशे
[7]कख प्रति वक्तुमिछा, ग प्रति वक्तुमिछां
[8]क प्रति ताल्वोष्टस्पंदवर्जितः, ख ग प्रति ताल्वोष्टस्पंदवर्ज्जितः
[9]ग प्रति निश्चया
[10]क प्रति पुनयम्
[11]कख प्रति 'इति' शब्दाभाव

चेतना लक्षणो जीवः सोपयोगद्वयोऽनिशम् ।
प्रोक्तः सोऽपि द्विधा जीवः संसारी मुक्त एव च ।।134।।

संसारे संसरन्नित्यमष्टकर्मारिवेष्टितः ।
कर्ता भोक्ता स संसारी कर्मणां भवकारिणाम्[1] ।।135।।

सोऽपि संसारिको द्वेधा भव्याभव्यप्रभेदतः ।
रत्नत्रयोचितो भव्यस्तद्विपक्षः परोमतः ।।136।।

गत्यादि मार्गणाभेदैर्गुणस्थानैः सभूतकैः ।
नानाविधो जिनेन्द्रेण प्रोक्तोऽसौ[2] भुवनेशिना ।।137।।

मुक्तो जीवो भवेत्सिद्धो निराबाधो निरञ्जनः ।
दुष्टाष्टकर्मनिर्मुक्तः त्रैलोक्यशिखरे स्थितः ।।138।।

अजीवः पुद्गलः प्रोक्तः षट्प्रकारस्वभावतः ।
तद्भेदाश्च परे स्पर्शरसगन्धाः सवर्णकाः ।।139।।

पृथ्वी जलं तथा छाया चतुःख विषयस्तथा ।
कर्माणुः[3] परमाणुश्च षड्भेदाः पुद्गलेष्वतः[4] ।।140।।

उक्तं च गाथाद्वयम्
अइथूल थूलथूलं थूल[5]सुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होदि छब्भेयं[6] ।।141।।[7]
पुढवी जलं[8] च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू[9] ।
छव्विहभेयं[10] भणियं पुग्गलदव्वं जिणवरेहिं[11] ।।142।।[12]

[1]ग प्रति भवकारिणम्
[2]कख प्रति प्रोक्तासौ
[3]ग प्रति कर्माणः
[4]क प्रति ध्वतः, ग प्रति स्वतः
[5]कख प्रति थूल शब्दाभाव
[6]कखग प्रति सुहुमं च सुहुमसुहुमं धराइयं होइ छभेयं
[7]नियमसार, गाथा संख्या 21 (श्री दि. जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़)
[8]ख प्रति पुढवीजःलं
[9]ग प्रति कम्मपाउग्ग
[10]ग प्रति छव्विहभेयंक
[11]कखग प्रति जिणिंदेहिं
[12]गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा 602 (मूर्तिदेवी जैन ग्रंथमाला, भारतीय ज्ञानपीठ)

धर्मद्रव्यं तयोर्नूनं गतिकारणलक्षणम् ।
हठान्न प्रेरकं लोके मत्स्यानां च जलं यथा[1] ।।143।।

अधर्मस्तु स्थितेर्हेतुर्जीवपुद्गलयोर्मतः।
तरुच्छायेव पान्थानां[2] न तयोः स्थायिकः[3] हठात् ।।144।।

कालाणवो मता नित्यं नवजीर्णत्वकारकाः ।
रत्नराशिरिव प्रोच्चैः पृथग्भूता जगत्त्रये ।।145।।

आकाशोऽप्यवकाशस्य दाता तेषां प्रकीर्तितः ।
स्वस्वभावेन पञ्चानां जीवादीनां निरन्तरम् ।।146।।

मूर्तिमान् पुद्गलस्तेषु परेमूर्तिविवर्जिताः ।
धर्माधर्मनभः कालाः सजीवाः जिनभाषिताः ।।147।।

जीवपुद्गलकौ प्रौक्तौ कुर्वन्तौ च परिणतिम् ।
धर्माधर्मनभः कालास्तिष्ठन्त्येव[4] स्वभावतः[5] ।।148।।

इत्यादिकं जगत्स्वामी विस्तरेण तदा[6] जिनः ।
भव्यानां भाषयामास[7] प्रोच्चैः षड्द्रव्यसङ्ग्रहम् ।।149।।

तथा त्रलोक्यसारञ्च षड्लेश्यास्तत्वसप्तकम् ।
गुणस्थानादिकं सर्वं रहस्यं सञ्जगाद च ।।150।।

अष्टाङ्गं दर्शनं पूतं ज्ञानञ्चाष्टविधं तथा ।
त्रयोदशप्रकारञ्च चारित्रं मुनिसेवितम् ।।151।।

दशलाक्षणिकं धर्मं सर्वजीवहितङ्करम् ।
एतेषां रुचिसंयुक्तं गृहीणां[8] धर्ममाजगौ ।।152।।

पात्रदानं गुणाधानं पूजनं परमेष्ठिनाम् ।
शीलं पर्वोपवासञ्च परोपकृतिमुत्तमाम्[9] ।।153।।

---

[1]क प्रति जथा
[2]ग प्रति पाथानां
[3]कखग प्रति स्थायिका
[4]कखग प्रति कालास्तिष्टन्त्येव
[5]ग प्रति स्वभाववः
[6]ग प्रति नदा
[7]कख प्रति भावयामास
[8]क प्रति ग्रहीणां ग प्रति गृहिणां
[9]कख प्रति परोप्रकृतिमुत्तमाम्, ग प्रति परोप्रकृतिमुत्तमम

इत्येवं सर्ववित्सर्वं लोकालोकस्वरूपकम् ।
द्योतयामास भव्यानां स्वामी सर्वहितङ्करः ।।154।।

श्रुत्वा वीरजिनेन्द्रस्य ध्वनिं स्वर्गापवर्गदम् ।
द्वादशोरु[1] सभा भव्या विकसन्मुखपङ्कजाः ।।155।।

प्रापुस्ते परमानन्दं कविवाचामगोचरम्[2] ।
सत्यं जिनोदितं वाक्यं कस्य सौख्यं करोति न ।।156।।

अथ श्रीश्रेणिकोभूपः समुत्थाय जनैः सह ।
वर्द्धमानं जिनेशिनं[3] पप्रच्छ[4] विनयानतः ।।157।।

विधाय प्राञ्जलिं भक्तया सर्वभव्यहिताय च ।
सिद्धचक्र[5]व्रतं स्वामिन् सार्चनं भुवनार्चितः[6] ।।158।।

केन वा विहितं देव कथं वा क्रियते च तत् ।
किं फलं तस्य तत्सर्वं स्वामिंस्त्वं वक्तुमर्हसि ।।159।।

श्रोतुमिच्छामि[7] भो नाथ! श्रीमतां मुखपङ्कजात् ।
अमृतास्वादने देव! कः सुधीः स्यात्पराङ्मुखः ।।160।।

इत्येवं नृसुरासुरौघविलसन्माणिक्यमौलिप्रभा ।
पानीय प्रविधौतपूत[8]विकसत्पादाब्जयुग्मस्तदा ।
श्रीमद्वीरजिनेश्वरो भयहरो भव्यौघनिस्तारकः ।
श्रीमच्छ्रेणिकभूपतिं प्रतिसभां श्रीपालवृत्तं जगौ ।।161।।

इति श्री सिद्धचक्रपूजातिशयसमन्विते[9] श्रीपालमहाराजचरिते भट्टारकमल्लिभूषणशिष्याचार्य श्रीसिंहनन्दि ब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते[10] ब्रह्मनेमिदत्त[11]विरचिते पीठिकानुवर्णनो नामप्रथमोऽधिकारः ।।1।।

---

[1]ग प्रति द्वादशोक
[2]क प्रति कविवाचामचगौरम्
[3]कख प्रति जिनेशानम्
[4]कखग प्रति पप्रछ
[5]ख प्रति सिद्धिचक्र
[6]ग प्रति भुवनार्चिता
[7]क प्रति श्रोतुमिछामि, खग प्रति स्त्रोनुमिछामि
[8]ख प्रति पूत शब्दाभाव
[9]ख प्रति सिद्धचक्रपूजासयसमन्विते
[10]ख प्रति शन्तिदास
[11]क प्रति ब्रह्मनेमदत्त

द्वितीयोधिकारः

अथ जम्बूमतिद्वीपे समीपे सर्वसम्पदाम्।
मेरोर्दक्षिणदिग्भागे क्षेत्रे भरतसंज्ञके[1]।।1।।[2]

पवित्रे श्री जिनाधीश! सारजन्ममहोत्सवैः।
त्रैलोक्यजनतावृन्दपरमानन्ददायकैः।।2।।

अवन्ति विषयस्तत्र सम्बभौ जनसङ्कुलः।
सज्जनो[3] वा गुणैर्युक्तो मनोनयनवल्लभः।।3।।

यो देशः पत्तनैर्ग्रामैर्पुरैर्खेटैर्मटम्बकैः ।
संवाहनादिभिर्नित्यं बभौ चक्रीव राजभिः ।।4।।

उक्तञ्च
ग्रामो वृत्या वृत्तः स्यान्नगरमुरु चतुर्गोपुरोद्भासिशालम्।
खेटं नद्याद्रिवेष्ट्यां परिवृतमभितः कर्वटं पर्वतेन ।।
ग्रामैर्युक्तं मटम्बं दलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनिः ।
द्रोणाख्यं सिन्धुर्वेलावलयवलयि संवाहनं चाद्रिरूढम् ।।5।।

यत्रवापीतडागादि स्वच्छतोया[4] जलाशयाः।
रेजिरे चाति गम्भीरा मुनीनां मानसोपमाः[5] ।।6।।

गोमहिष्यादयो[6] यत्र भक्षित्वा सरसांस्तृणान्[7] ।
सुखं स्थिता विभान्तिस्म महीर्वा[8] नन्दनाभुवाः[9]।।7।।

धनैर्धान्यैर्जनैर्न्नित्यं संभृतो यो बभौ सदा ।
भव्यानां सर्वसौख्यानामाकरो वा जगद्धितः ।।8।।

---

[1]ग प्रति भरतसंज्ञिके
[2]क प्रति में श्लोक संख्या प्रथम अधिकार के बाद द्वितीय अधिकार में अनवरत लिखी गयी है। क प्रति में उक्त श्लोक क्रमांक 63 है।
[3]क प्रति सजनो
[4]कखग प्रति स्वछतोया
[5]ग प्रति सानसोपमाः
[6]कख प्रति गोमहिष्पादयो, ग प्रति गोमहिख्यादयो
[7]कख प्रति सरसांस्तृणात्
[8]कखग प्रति बहिर्वा
[9]क प्रति नन्दनाभूबः

यत्र क्षेत्रेषु निष्पन्नसर्वधान्येषु गोपिकाः ।
रूपेण मोहयन्तिस्म पान्थानन्यासु[1] का कथा ।।9।।

यत्र पुण्यप्रसादेन संवसन्तिस्म सज्जनाः ।
सम्पदासारसम्पूर्णा जिनधर्मपरायणाः ।।10।।

नार्योयत्र जगत्साररूपसौभाग्यमण्डिताः ।
सम्यक्त्व[2]व्रतसम्पन्ना जयन्तिस्म सुराङ्गनाः ।।11।।

वस्त्राभरणसंयुक्ताः तास्सुपुत्र[3]फलान्विताः ।
शोभन्तेस्म यथा कल्पवल्लर्यः[4] सुमनोहराः ।।12।।

मार्गेषु यत्र सर्वत्र सुपुष्पफलसंयुताः ।
सर्व सन्तर्पिणो रेजुः पादपास्सज्जना यथा ।।13।।

इक्षुवाटेषु यत्रोच्चैर्रसन्तिस्म मनोहरम् ।
सौरभ्यं सूचयन्तिस्म तद्यन्त्राणीव देशजम् ।।14।।

वनादौ यत्र भान्तिस्म प्रोत्तुङ्गाश्च नगे नगे ।
जिनेन्द्रप्रतिमोपेता प्रासादाः शर्मदायिनः ।।15।।

स्वर्णकुम्भध्वजव्रातैर्नाना[5] वादित्रमङ्गलैः ।
आह्वयन्तिस्म देवान्वा जिनेन्द्रस्नपनहेतवे[6]।।16।।

ईतयो यत्र पुण्येन नैवजाता कदाचनः[7] ।
सर्वेऽपि धर्मिणो नित्यं[8] परोपकृतिः तत्पराः ।।17।।

उक्तञ्च
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः[9] शलभाः शुकाः ।
स्वचक्रम्परचक्रञ्च[10] सप्तैताः ईतयः स्मृताः ।।18।।

---

[1]क प्रति पान्थानंन्यासु, ख प्रति पन्थानत्यासु, ग प्रति पन्थानन्यासु,
[2]कखग प्रति सम्यक्त
[3]कख प्रति वस्त्राभरणसंयुक्ताः स्तासुपुत्र
[4]क प्रति वलर्य्यः
[5]ग प्रति ध्वजप्रात्वैनाना
[6]ख प्रति जिनेन्द्रस्नेपनेहिते, ग प्रति जिनेन्द्रस्मपनेहिते
[7]ख प्रति कुदाचनः
[8]खग प्रति नित्यं के स्थान पर यस्मात् प्राप्त
[9]ख प्रति मूषकोः, ग प्रति मूखकाः
[10]क प्रति परचक्रंबा, ग प्रति परिचक्रंच

यत्र भोगोपभोगादि सम्पत्याः सज्जनाः सदा ।
कुर्वन्तिस्म सुरेन्द्राणामत्रायातुं स्पृहां मुदा ।।19।।

यत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां भव्याः सम्यक्त्वपूर्वकम् ।
पात्रदानं जिनेन्द्रार्चां[1] शीलं पर्वोपवासकम् ।।20।।

धर्मंकृत्वा सुखं भुक्त्वा दीर्घकालं मनोहरम् ।
साधयन्तिस्म ते प्रान्ते नित्यं स्वर्गादिमुत्तमम् ।।21।।

निर्ग्रन्था[2] मुनयो यत्र स्वस्थचित्ता निरन्तरम् ।
शुद्धरत्नत्रयेणोच्चैर्यान्ति स्वर्गापवर्गकम् ।।22।।

एवं वर्णाश्रमा यत्र स्वस्वधर्मेषु तत्पराः ।
तिष्ठन्तिस्म[3] सदाप्युच्चैः परमानन्दनिर्झराः ।।23।।

इत्येवं सम्पदोपेतेऽवन्तिदेशे[4] सुखास्पदे ।
अभूदुज्जयिनी नाम्ना नगरी तु गरीयसी ।।24।।

या विशुद्धमहातुङ्गप्राकारेण परिष्कृता ।
सा रेजे[5] स्वयशोराशिनेवोच्चैः[6] परिवेष्टिता।।25।।

महाद्वाराणि चत्वारि रेजिरे रत्नतोरणैः ।
तत्पुरी वनितायाश्च वदनानीव दिक्षु वै ।।26।।

स्वच्छतोयभृताखाता विकसत्पद्मराजिताः ।
सा विशाला विशालायास्तस्याः साटीव सम्बभौ ।।27।।

पञ्चसप्ततलास्तुङ्गा रत्नस्वर्णादिनिर्मिताः[7] ।
यद्गेहा[8] वा हसन्तिस्म[9] ध्वजाद्यैः स्वर्गजां श्रियम् ।।28।।

---

[1]ग प्रति जिनेन्द्राचाम्
[2]ग प्रति निग्रन्था
[3]कख प्रति तिष्टन्तिस्म, ग प्रतौ तिष्ठान्तिस्म
[4]ग प्रति सम्पदोपेतंवंतिदेशे
[5]कख प्रति संरेजु, ग प्रतौ संरेजे
[6]कख प्रति स्वयशोराशिनावोच्चैः
[7]ग प्रति निमिताः
[8]ख प्रति यद्गृहा
[9]ग प्रति हिसन्तिस्म

या पुरी सर्वदा सर्वसारवस्तुसमुच्चयैः ।
सम्भृता सज्जना रेजे श्री वा तद्रूपशालिनी ।।29।।

यत्र भव्यजनाः सौख्यं संवसन्तिस्म पुण्यतः।
धनैर्धान्यैर्जनैर्मान्यैः सज्जनैः परिवारिताः ।।30।।

यदापणेषु सर्वत्र मणिमुक्ताफलादयः।
नाना सुवर्णवस्त्रोरुपट्टकूलादि सम्पदाः ।।31।।

चन्दनागुरुकर्पूरकाश्मीरैला[1]लवङ्गकैः।
अन्यैरष्टादशप्रायैर्धान्यैः स्नेहादिभिः समम् ।।32।।

सदैव सज्जनैर्भुक्त्वा दत्ता नीताश्च वाणिजैः।
तथापि वृद्धितां प्रापुर्मुनीनामृद्धयो यथा ।।33।।त्रिभिः कुलकम्

रूपादिसारसम्पत्या नरा वा सुरसत्तमाः ।
नार्यो निरन्तरं भोगैर्जयन्तिस्म सुराङ्गनाः ।।34।।

यत्र श्रीमज्जिनेद्राणां सुप्रसादा वनादिषु ।
लसत्काञ्चनसद्रत्ननिर्मिताः प्रतिमान्विताः ।।35।।

कनत्काञ्चनसत्कुम्भैर्ध्वजाद्यैः[2] परिशोभिताः ।
नित्यं वादित्रनादौघै[3] घण्टावृन्दैरलङ्कृताः ।।36।।

येषां दर्शनमात्रेण पापं[4] याति[5] क्षयं क्षणात् ।
भास्करेणेव भव्यानां तत्कालं रात्रिजं तमः ।।37।।

मुनयो येषु कुर्वन्ति जिनानां स्तुतिजं कथाम्[6] ।
अनेकैर्भव्यसन्दोहैः सार्धं शर्मशतप्रदाम् ।।38।।

श्रावकाः श्राविका[7] यत्र नित्यं स्नपनपूर्वकम् ।
जिनार्चां रचयन्तिस्म लोकद्वयसुखावहाम्[8] ।।39।।

---

[1]ग प्रति काश्मीरीला
[2]ख प्रति सत्कुम्भैध्वजाद्यैः, ग प्रति सकनत्काञ्चन सत्कूम्भैर्ध्वजाद्यैः
[3]ग प्रति वादित्रनानिर्घोषैः
[4]ग प्रति पायं
[5]ग प्रति पाति
[6]क प्रति स्तुतिजंकथाम्, ग प्रति श्रुतिसंकथाम्
[7]क प्रति श्रीविका, ख प्रति श्रीवका
[8]ग प्रति सुधावहाम्

सदा जैनेश्वरीं वाणीं सर्वसन्देहहारिणीम् ।
श्रृण्वन्तिस्म सुखेन[1] भव्या मुनीनाम्मुखपङ्कजात् ।।40।।

नित्यं सुपात्रदानेन भूरिमानेन सज्जनाः ।
कुर्वन्तिस्म व्रतैः शीलैः सफलं जन्मपावनम् ।।41।।

यत्र नार्यो जिनेन्द्राणां धर्मकर्मणि तत्पराः ।
सारशृङ्गारसन्दोहाः सुपुत्राः कुलदीपकाः[2] ।।42।।

एवं धर्मार्थकामोरूमोक्षाख्यांश्चतुरः सदा ।
साधयन्तिस्म भव्यौघाः पदार्थास्त्रिजनधर्मिणः ।।43।।

तत्रपुर्यां प्रजापालो राजा सप्ताङ्गराज्यभाक् ।
चतुरङ्गबलोपेतः प्रजापालनतत्परः ।।44।।

सौभाग्यसुन्दरी नाम राज्ञी तस्य मनःप्रिया ।
रूपसौभाग्यसम्पन्ना सा सती वा सतां क्रिया ।।45।।

तयोः प्राक्समभूत्पुत्री सुरूपासुरसुन्दरी ।
जाता च द्वितीया पुत्री नाम्ना मदनसुन्दरी ।।46।।

सुरादि सुन्दरी पुत्री पित्रा विप्राय सार्पिता ।
पठनार्थं तया तत्र विप्रपार्श्वे[3] स्वकर्मणा ।।47।।

वेदस्मृतिपुराणानि[4] नाटकानि विशेषतः ।
तथाधीतानि गीतानि सन्नृत्यानि[5] पराण्यपि ।।48।।

कोकशास्त्राणि चित्राणि कामकारिणि[6] कामिनाम् ।
प्राणिनां प्राणहारिणि नरमेधादिकानि च ।।49।।

अश्वमेधममेध्यं वा गजमेधमधोगतेः ।
कारणं पापशास्त्राणि पठितानि तया[7] तथा ।।50।।

---

[1]कखग प्रति सुखे
[2]कग प्रति कुलदीपिकाः
[3]ग प्रति विप्रप्रार्थे
[4]ग प्रति पुराणाविनि
[5]कखग प्रति सनृत्यानि
[6]क प्रति कारीणि
[7]ग प्रति तथा

गो योनिस्पर्शनं पुण्यं यज्ञं गोछागहिंसनम् ।
तच्छेष[1] भक्षणं यज्ञे मद्यपानं च पापकृत् ।।51।।

राजसूयादिकं[2] कर्मघृतयोन्यादिकं तथा ।
सोमपानं जलस्नानं केवलं धर्महेतवे ।।52।।

एणखङ्गझषादीनां[3] मांसेनैव विशेषतः ।
श्राद्धे च पितृवर्गस्य तर्पणं प्राणिमारणम् ।।53।।

मन्त्रतन्त्रादिकं कर्मं सर्वं कर्मनिबन्धनम्।
मिथ्यादृष्टिकुविप्रेण पाठिता सा मदोद्धता[4]।।54।।

मिथ्याशास्त्रवशात्तत्र कुगुरोः सेवनेन च ।
सुरादिसुन्दरी सात्र[5] जाता[6] धर्मपराङ्मुखा ।।55।।

उन्मत्ता सा स्वगर्वेण राजपुत्री विशेषतः ।
कुशास्त्रेणतराञ्चासीन्मर्कटीव[7] चलाशया ।।56।।

कुसङ्गतिवशात्पापात्सा कन्यासुरसुन्दरी।
नष्टबुद्धिस्तदा जाता हा कष्टं दुष्टसङ्गतिः ।।57।।

द्वितीया सा विशुद्धात्मा सती मदनसुन्दरी ।
निर्जिता निजरूपेण[8] यया मदनसुन्दरी ।।58।।

स्वयम्भूतिलकं नाम धर्मिणां तिलकोपमम् ।
गत्वा जिनालयं भक्त्या पापस्य विलयम्मुदा ।।59।।

धौतवस्त्रादिकं धृत्वा[9] जलगन्धाक्षतादिभिः।
नानापुष्पशताद्यैश्च समभ्यर्च्य जिनाकृतीः ।।60।।

---

[1]ग प्रति तछेप
[2]कख प्रति राजसूर्यादिकं
[3]क प्रति एणषङ्गिकझषादीनां, ख प्रति एणषङ्गिगझषादीनां, ग प्रति एणषङ्गिकझसादानां
[4]ग प्रति मदोद्धत्ता
[5]ग प्रति शास्त्र
[6]ख प्रति याता
[7]ग प्रति कुशास्त्रेणतरांसिचान्
[8]ग प्रति निव्रजरूपेण
[9]कखग प्रति कृत्वा

स्तुत्वा[1] नत्वा पुनर्बाला मुनिं यमधराह्वयम् ।
नमस्कृत्य जगद्वन्द्यं धर्मं शुश्राव[2] शर्मदम् ।।61।।

अहिंसा लक्षणं जैनमसत्यं परिवर्जनम् ।
अचौर्यं ब्रह्मचर्यञ्च परिमाणं परिग्रहे ।।62।।

रात्रिभुक्तिपरित्यागमष्टौ मूलगुणान् शुभान् ।
कन्दमूलादिकं त्याज्यं चर्मवारिघृतोज्झनम् ।।63।।

इति श्रुत्वा[3] जिनेन्द्रोक्तं धर्मं मुनिमुखाम्बुजात् ।
शास्त्राभ्यासं चकारोच्चैस्तत्समीपे[4] जगद्धितम् ।।64।।

सर्वशास्त्रमुखप्रायः पूर्वं व्याकरणं शुभम् ।
छन्दोऽलङ्कारमत्युच्चैरभिधानं निधानवत् ।।65।।

नानाकाव्यानि शास्त्राणि[5] पठतिस्म निराकुला ।
षड्द्रव्यसङ्ग्रहं[6] सप्ततत्त्वानां[7] विस्तरं तथा ।।66।।

पञ्चास्तिकायसद्भेदान् पदार्थान्नवनिर्मलान् ।
अष्टाङ्गं सारसम्यक्त्वं वेत्तिस्म ज्ञानमष्टधा ।।67।।

श्रावकाचारमत्युच्चैः शुश्राव मुनिपुङ्गवात् ।
कर्मणां प्रकृतीः[8] सर्वाः जानातिस्म गुणोज्ज्वला[9]।।68।।

चतुर्गतिमहाभेदान् गुणस्थानानि निस्तुषम् ।
पात्रदानं जिनस्नानं[10] पूजनं परमेष्ठीनाम् ।।69।।

शृणोतिस्म सती तत्र द्वादशैव शुभावहाः।
अनुप्रेक्षा गुरोः शिक्षाः तपो भेदान्द्विषट् तथा ।।70।।

---

[1]ग प्रति श्रुत्वा
[2]कख प्रति सुश्राव, ग प्रति धर्मेसुश्राव
[3]ख प्रति स्तुत्वा
[4]ग प्रति चकारोच्चैसत्समीपे
[5]खग प्रति भव्यानि
[6]कखग प्रति षट्द्रव्यसंग्रहं
[7]ग प्रति सप्ततथानां
[8]क प्रति प्रकृति
[9]कखग प्रति गुणोज्वला
[10]ग प्रति जिनस्थानं

इति श्रीजिननाथोक्तं स्वागमं भुवनोत्तमम् ।
मुनेर्यमधराख्यस्य पादमूले जगद्धिते ।।71।।

कन्दर्पसुन्दरी सा च राजपुत्री शुभोदयात् ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना सदाचार[1]विराजिता ।।72।।

निर्गर्वा शोभतेस्मोच्चैर्मुनेर्वामतिरुज्ज्वला ।
कुलस्य दीपिकेवासौ त्रैलोक्यविदिताभवत् ।।73।।

साधूनां सङ्गतिः सत्यं फलत्युच्चैस्सदा सुखम् ।
भव्यानां कल्पवल्लीव परमानन्ददायिनी ।।74।।

उक्तञ्च
जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचिसत्यम् ।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम् ।
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।।75।।[2]

एकदा यौवनं प्राप्तां ज्येष्ठां कन्यां विलोक्य च ।
राजा जगाद भो पुत्रि! वरं प्रार्थय वाञ्छितम्[3] ।।76।।

सुरादि सुन्दरी प्राह भो राजन्! देहि मां त्वकम् ।
अहिच्छत्रपुराधीश–पुत्राय गुणशालिने ।।77।।

अर्यादिदमनायोच्चैः कामभोगसुखार्थिने ।
तत्समाकर्ण्य भूपोऽपि शुभेलग्ने शुभेदिने ।।78।।

विवाहविधिना तस्मै तां ददौ सुरसुन्दरीम् ।
विभूत्या सोऽपि तां लात्वा गतोऽरिदमनो गृहम् ।।79।।

अथैकदा सुता सा च सुधीर्मदनसुन्दरी ।
कृत्वा पञ्चामृतैः स्नानं जिनानां सुखकोटिदम् ।।80।।

पूजां विधाय सद्वस्तुसन्दोहैः सुजलादिभिः ।
तच्च गन्धोदकं पित्रे ददौ परमपावनम् ।।81।।

---

[1]ग प्रति सदोचार
[2]भर्तृहरि कृत नीतिशतक में उद्धृत, ग प्रति में श्लोक क्रमांक 75 और 76 दिया है
[3]ग प्रति वांबितम्

प्रजापालः प्रभुस्तत्र सभायां परमादरात् ।
वन्दित्वा तत्समादाय चकार निजमस्तके ।।82।।

तां विलोक्य सुतां शान्तां नवयौवनमाश्रिताम् ।
कोमलाङ्गी–सुरुपाढ्यां करपल्लवशोभिताम् ।।83।।

नेत्रपुष्पोज्ज्वलां[1] पुण्यतरुवल्लीमिवोत्तमाम् ।
कल्याणकारिणीं मत्वा कल्याणोचितविग्रहाम् ।।84।।

पिता प्राह सुते! त्वञ्च भगिनीव वरं वद ।
यस्तुभ्यं[2] रोचते भद्रे! तस्मै त्वां संददाम्यहम् ।।85।।

तन्निशम्य पितुर्वाक्यं तदा मदनसुन्दरी ।
धर्मयुक्तिविचारज्ञा शास्त्रसिन्धु[3]महातरी ।।86।।

अहो तात! कुलोत्पन्नकन्यानां नैवयोग्यता ।
यद्वरो याच्यते[4] देव! स्वेच्छया[5] भो महीपते![6] ।।87।।

यस्मै पिता ददातीह स्वपुत्रीं गुणशालिनीम् ।
भर्त्ता स एव लोकेऽस्मिन् न्यायोऽयं कुलयोषिताम् ।।88।।

अतः पूर्वं प्रमाणं मे त्वमेवात्र विचक्षणः ।
पश्चान्मे कर्मपाकेन यद्भावीह भविष्यति ।।89।।

पुत्रिवाक्यं सुयोग्यं च समाकर्ण्य महीपतिः ।
मूढात्मा मानतश्चित्ते कुपितो चिन्तयत्तदा ।।90।।

पश्य पुत्र्यानया[7] प्रोक्तं प्राधान्यं निजकर्मणः ।
अहं वृथा कृतो गाढं मूढया च महीपतिः ।।91।।

कस्मैचिद्विश्वनिन्द्याय[8] दत्त्वेमां पुत्रिकां ध्रुवम् ।
पश्याम्यस्याश्च[9] पुण्यस्य माहात्म्यञ्चेति दुष्टधीः ।।92।।

---

[1]ग प्रति नेत्रपुष्फोज्वलां
[2]क प्रति यत्तुभ्यं, खग प्रति यंतुभ्यं
[3]ग प्रति धर्मयुक्तिविचारज्ञास्याास्त्र
[4]ग प्रति यद्वरोज्याचते
[5]ख प्रति स्वछया, ग प्रति स्वेक्षया
[6]कखग प्रति भो महीपते
[7]ग प्रति पश्यपुत्रीन्यया
[8]ग प्रति कस्मैचद्विश्वनिन्द्याय
[9]ख प्रति पशाम्यस्याश्च

चित्ते विचार्य तामूचे याहि पुत्रि! गृहं तदा ।
साऽपिमत्वा पितुश्चित्तं सनम्रा मन्दिरं ययौ ।।93।।

युक्तं दुष्टजनस्यैवं[1] साधूक्तं न सुखायते ।
यथा पित्तज्वरस्येव[2] शर्करा च विषायते ।।94।।

अथैकदा प्रजापालो राजा सैन्यादिसंयुतः ।
वनक्रीडां व्रजन्नुच्चैश्चामरादि विराजितः ।।95।।

तदा कर्मवशात्तत्र श्रीपालं सम्मुखागतम् ।
द्विशरीरं समारुढ़ं पलाशछत्रिकान्वितम् ।।96।।

कुष्ठिना सप्तशत्या[3] च वेष्ठितं मक्षिकाशतैः ।
स्वयञ्चोदुम्बराकारकुष्ठेन परिपीडितम् ।।97।।

सर्वेषां कुष्ठिनां तेषां राजत्वेन विराजितम् ।
गर्दभादिकसामग्र्या समेतं काहलान्वितम्[4] ।।98।।

गोपुच्छचामरद्वन्दे कुष्ठिनौ तस्य पार्श्वयोः[5]।
छत्रस्य धारकः कुष्ठी जलधारी च कुष्ठिकः ।।99।।

ताम्बूलदायकः[6] कुष्ठी कुष्ठिनोऽप्यङ्गरक्षकाः ।
सामन्ताः कुष्ठिनो घण्टावादित्रेषु च कुष्ठिनः ।।100।।

मन्त्रिणः कुष्ठिनस्तस्य सेवकाः कुष्ठिनस्तथा ।
तीव्रकर्मविपाकेन भाण्डागारी[7] च तादृशः ।।101।।

इत्यादिकुष्ठिभिर्युक्तं तं समालोक्य दूरतः ।
साश्चर्यं मन्त्रिणं प्राह भो मन्त्रिण्! कोऽयमद्भुतः ।।102।।

मन्त्री जगौ प्रभो! कुष्ठिराजोऽयं क्षत्रियान्वयः[8]।
श्रीपालो नाम चायाति[9] भवन्तं याचितुं ध्रुवम् ।।103।।

---

[1]कख प्रति जनस्यैव
[2]ग प्रति पित्तज्वरस्येह
[3]कखग प्रति कुष्टिनां सप्तशत्यां
[4]कग प्रति कोहलान्वितम्
[5]क प्रति तस्यपार्श्वगौ
[6]ग प्रति ताम्बूलदायः
[7]ग प्रति भाण्डीगारी
[8]कग प्रति क्षित्रियान्वयः
[9]ग प्रति वायाति

मन्त्रिवाक्यं समाकर्ण्य प्रजापालः स्वमानसे ।
पुत्र्याः द्वेषं बहन्मूढः स्वाहङ्कारकदर्थितः[1] ।।104।।

पुत्र्याः योग्यो[2] वरोऽयं हि समायातो विचार्य तं[3]।
पुरीबाह्ये गृहं तस्मै दापयामास सत्वरम् ।।105।।

स्वयं स्वगृहमागत्य[4] जगौ मदनसुन्दरीम् ।
भो सुते! तव भाग्येन वरः कुष्ठी समागतः ।।106।।

तन्निशम्य सुता प्राह[5] भो पितः! श्रृणुतादरात्[6]।
यस्तुभ्यं रोचते देव! स मे गाढं मनोऽम्बुजः ।।107।।

पुनर्जैनमते दक्षा जगौ मदनसुन्दरी ।
जन्तूनां कर्मणा सर्वं भवेद्देव![7] शुभाशुभम् ।।108।।

विलोक्य कन्यकां राजा केवलं कर्मवादिनीम् ।
मन्त्रिणं प्राह भो! पश्य मन्त्रिन्नद्यापि गर्विणी ।।109।।

नैव मुञ्चति कन्येयं स्वमतं मतिवर्जिता[8]।
अतोऽहं तत्करिष्यामि कार्यं चित्ते विचारितम्[9]।।110।।

जगौ मन्त्री नराधीश[10]! लोके तेऽत्र भविष्यति ।
अपकीर्तिर्यशोहानिः पश्चात्तापोऽपि चेतसि ।।111।।

जितदेवाङ्गना कन्या कुष्ठिने[11] किं प्रदीयते ।
चिन्तामणिं कथं देव! क्षिप्यते कर्दमे त्वया ।।112।।

दुराग्रही नृपश्चाह भो मत्रिण्! श्रूयतां वचः[12] ।
अयं चाऽपि न सामान्यो दृश्यतेऽत्र[13] महीतले ।।113।।

---

[1]क प्रति कदर्थतः
[2]ख प्रति पुत्र्यायोग्ये
[3]ग प्रति वः
[4] ग प्रति गृहमागत्य
[5]खग प्रति साह
[6]ग प्रति श्रृणुतादरान्
[7]कखग प्रति भवेद्देव
[8]ख प्रति सुञ्चति कन्येयं स्वमतं मतवर्जिता, ग प्रति स्वमतिं
[9]ग प्रति चित्तेविचारिर्यतम्
[10]ग प्रति निराधीश
[11]ग प्रति कुष्टेनि
[12]ग प्रति मत्रिपे श्रूयतां वाचः
[13]ग प्रति साम्यान्यो दृश्यतेत्

छत्रचामरघण्टाद्यैः झल्लरीनादसुन्दरैः[1] ।
राजचिन्हैः समायुक्तो राजाप्येष भवत्यहो ।।114।।

स्थातव्यं च भवद्भिर्भो माध्यस्थं मन्त्रिसत्तमः ।
एवमुक्त्वा क्रुधो भूपो वर्जितोऽपि बुधैर्जनैः ।।115।।

कारयामास कन्यायाः विवाहं शुभवासरे ।
स तस्याः कुष्ठिना सार्धं स्वहठाल्लोक[2]निन्दितः ।।116।।

धिक्कोपं धिक्मूढत्वं धिग्गर्वं[3] पापकारणम् ।
अस्थानेऽपि महीनाथो येन जातो[4] दुराग्रही ।।117।।

तद्विलोक्य तदा माता तस्याः[5] सौभाग्यसुन्दरी ।
शोकं चकार हा कष्टं किं कृतं कर्म भूभुजा[6]।।118।।

तदा स्वमातरं[7] प्राह पुत्री मदनसुन्दरी ।
भो माता![8] क्रियते शोकः कथं सन्तापकारकः ।।119।।

शुभाशुभं भवत्युच्चैर्भो माता! कर्मणा कृतम् ।
जन्तोऽस्मान्ममैवात्र[9] शरण्यं जिनशासनम् ।।120।।

इत्येवं जिनधर्मज्ञा निश्चला सा गुणोज्ज्वला[10]।
मातरं बोधयामास सती सन्तोषशालिनी ।।121।।

निन्दन्तिस्म तदा केचिद्राजानं युक्तिवर्जितम्।
केचिद्राज्ञीं च केचिद् च विधातारं परेजनाः ।।122।।

विवाहानन्तरं तत्र भर्त्तुः पाणिविमोचने ।
प्रणामं कुर्वतीं[11] पुत्रीं सतीं कल्पलतामिव ।।123।।

---

[1]ग प्रति घण्टाद्य्यैर्झल्लरीनादसुन्दरौः
[2]ग प्रति स्वहताल्लोक
[3]ग प्रति धिग्मर्वं
[4]ग प्रति महीनाथे जेन यांतो
[5]ग प्रतौ मातास्याः
[6]खग प्रति भूभुज
[7]ख प्रति मातुरं
[8]क प्रति भो मातः
[9]ग प्रतौ जन्तोस्तस्मान्मेसैवात्र
[10]कखग प्रति गुणोज्वला
[11]क प्रति कुर्वति

पश्यन्राजा स्वचित्ते च पश्चात्तापेन तापितः ।
हा मया किं कृतं कर्मं सुतायाः कष्टकारणम् ।।124।।

क्वेयं कन्या स्वरूपेण विडम्बितसुराङ्गना ।
क्वायं वरो गलत्कुष्ठी[1] पीडितो निजकर्मणा ।।125।।

कोमलां मालतीमालां सुन्दरां चित्तहारिणीम् ।
कारीषाग्नौ क्षिपत्यज्ञस्तथा च मया[2] का कृतम् ।।126।।

चिन्तारत्नं यथा कोऽपि मूढः क्षिपति कर्दमे ।
कन्यारत्नं तथा दिव्यं मयास्थाने नियोजितम्[3] ।।127।।

सन्ति दुष्टा नराः केचित्स्वार्थिनः शत्रुकादिषु ।
मां विहाय न कोऽप्यस्ति पुत्री सन्तापकारकः ।।128।।

भूताविष्टो नरश्चापि वेत्ति किञ्चिद्धिताहितम् ।
अहं किञ्चिन्न जानामि मूढात्मा पापकर्मणा ।।129।।

यो विचारं विना कार्यं करोति मतिवर्जितः ।
पश्चात्तापेन पापेन तप्यते स यथाक्रमम्[4] ।।130।।

शुभाशुभं भवेन्नित्यं जन्तूनां कर्मपाकतः ।
किं करोत्यथवा लोके पितामाता च बान्धवाः ।।131।।

इत्यादिकं विधायोच्चैः पश्चात्तापं नराधिपः ।
ददौ तस्मै तदा सप्तभूमिप्रासादमुत्तमम् ।।132।।

दिव्याभरणवस्त्राणि स्वर्णमाणिक्यसञ्चयम् ।
दासीदासशतान्युच्चैश्चामरादिविभूतिभिः ।।133।।

ददातिस्म[5] तदा राजा राजचिन्हानि भूरिशः ।
श्रीपालाय महात्तुङ्गमातङ्गतुरगादिभिः[6] ।।134।।

श्रीपालोऽपि तदा प्राप्तसम्पदासारसञ्चयः ।
स्वप्रासादे तया सार्धं संस्थितः सपरिच्छदः[7] ।।135।।

---

[1]क प्रति गलत्कुष्टी
[2]कखग प्रति मय
[3]ख प्रति निजोजितं, ग प्रति नियोजिताम्
[4]कख प्रति यथाहकम्
[5]ग प्रति ददतिस्म
[6]खग प्रति नुरगादिभिः
[7]कखग प्रति सपरिछदः

कुष्ठिनोऽपि पृथक् सर्वे परे भूमि[1]गृहेषु च ।
श्रीपालं तं समाश्रित्य तस्थुः सेवा विधायिनः ।।136।।

इत्थं विवाहविधिना स नरेन्द्रपुत्रीम् ।
सम्प्राप्य पावनमतिं जिनधर्मरक्ताम् ।।
यावत्स्थितो विधिवशेन च भावि भूतिः ।
श्रीपालनामनृपतिश्च तदा प्रसङ्गः ।।137।।[2]

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयान्विते श्रीपालमहाराजचरिते[3] भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य[4] श्रीसिंहनन्दि[5] नामाङ्किते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते मदनसुन्दरीविवाहवर्णनो नामद्वितीयोऽधिकारः।।2।।

---

[1]ग प्रति भूरि
[2]क प्रति में श्लोक क्रमांक 300 दिया है
[3]क प्रति महाराजाचरित्रे
[4]ग प्रति शिख्याचार्य
[5]ग प्रति सिंहनिन्द

तृतीयोऽधिकारः

अथैकदा तया[1] तत्र स नीतो जिनमन्दिरम् ।
भार्यया पापसन्तापनाशनं शर्ममन्दिरम् ।।1।।

समभ्यर्च्य जिनाधीशान् सुरासुरसमर्चितान् ।
स्तुतिं सञ्चक्रतुस्तत्र दम्पती तौ सुखप्रदम्[2] ।।2।।

जय त्वं श्रीजिनाधीश! सर्वदेवेन्द्रवन्दितः ।
जयत्वं गुणमाणिक्यरञ्जिताखिलभूतलः[3] ।।3।।

जय त्वं भव्यसंदोहकमलाकरभास्करः।
दुष्टदारिद्र्यरोगाग्निशमनैक घनाघनः ।।4।।

जय सर्वेशतीर्थेशवीतरागजगद्धितः ।
जय देव! दयासिन्धो! भव्यबन्धोऽप्यबन्धनः ।।5।।

जन्ममृत्युजरातङ्क[4]नाशनैकभिषग्वरः ।
जय तेजोनिधे देव! लोकालोकप्रकाशकः ।।6।।

जय त्वं जिनराजोच्चैः सप्ततत्वार्थदीपकः ।
जय सर्वज्ञसंसिद्धस्वयंसिद्धविशुद्धिभाक् ।।7।।

अहो स्वामिन्! जिनेन्द्र! त्वं शुद्धरत्नत्रयान्वितः ।
पोतस्त्वमेव भो देव! संसाराम्भोधितारणे ।।8।।

इत्यादिकं महाभक्त्या स्तुत्वा श्रीमज्जिनेश्वरान् ।
नत्वा पुनः पुनर्गाढं परमानन्ददायकान् ।।9।।

ततस्तत्र विलोक्योच्चैः सुगुप्ताचार्यमुत्तमम्[5] ।
नत्वा तत्पादयोर्मूले संस्थितौ शर्मदायिनि ।।10।।

तन्मुनेर्धर्म[6]वृद्ध्या तौ संतुष्टौ मानसेतराम् ।
पीयूषधारया सिक्तौ यथा रोमाञ्चिताङ्गकौ ।।11।।

---

[1]ग प्रति तया शब्दाभाव
[2]ग प्रति सुषप्रदम्
[3]ग प्रति ताषिलभूतलः
[4]क प्रति जयजन्मजरातङ्क, ग प्रति जन्मजन्मजरातंक
[5]ग प्रति सगुप्ताचार्य
[6]कखग प्रति तन्मुनेर्द्धर्म

पुनर्नत्वा मुनिं प्राह तदा मदनसुन्दरी ।
भो स्वामिन्! भव्यजन्तूनां मज्जतां भवसागरे ।।12।।

हस्तावलम्बनं देव! त्वया दत्तं महामुने! ।
दर्शनज्ञानचारित्ररत्नत्रयविराजितः ।।13।।

श्रूयतां भो! कृपां कृत्वा वचो मे ज्ञानलोचनः ।
मया संस्थापितं[1] कर्म पिता मे कुपितस्तराम् ।।14।।

मुनिर्जगाद भो पुत्री यत्त्वया सुखदुःखयोः ।
कर्मबीजं[2] कृतं तच्च सम्यक्त्वं स्थापितं त्वया ।।15।।

चिन्तां मा कुरु भो पुत्रि! भर्त्ता तेऽयं भविष्यति ।
दिव्यरूपी च निर्व्याधी राज्यं प्राप्स्यति च ध्रुवम् ।।16।।

सा प्रोवाच[3] सती तत्र पुनर्मदनसुन्दरी ।
भो स्वामिन्! भवता प्रोक्तं तत्सत्यं सम्भविष्यति ।।17।।

तत्रोपायं कृपासिन्धो! भाले!त्वं वक्तुमर्हसि ।
रात्रेर्ध्वान्तं[4] निराकर्तुं कः क्षमो भास्करं विना ।।18।।

तन्निशम्य मुनीन्द्रोऽपि जगौ संज्ञानलोचनः ।
शृणुत्वं सावधानेन चेतसा ते[5] गदाम्यहम् ।।19।।

सम्यक्त्वपूर्वकं पुत्रि! जिनधर्मप्रपालनम् ।
पूजनं सिद्धचक्रस्य सर्वरोगनिवारणम् ।।20।।

भो सुते! सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति जिनधर्मतः ।
स्वर्गोमोक्षश्च धर्मेण का वार्ता परवस्तुषु[6] ।।21।।

धर्मश्चिन्तामणिर्लोके धर्मः कल्पतरुर्महान् ।
धर्मः कामदुघा[7]धेनु धर्मो बन्धुर्जगत्त्रये ।।22।।

---

[1]ख प्रति संस्थपितं
[2]क प्रति कर्मवीर्यम्
[3]खग प्रति चोवाच
[4]कखग प्रति रात्रेध्वान्तं
[5]कखग प्रति त
[6]ग प्रति वार्न्ना परस्तुषु
[7]खग प्रति कामदुहा

धर्मः संसारवाराशौ पोतोऽयं भव्यदेहिनाम् ।
धर्मो मातापिता मित्रं धर्मो निधिरनुत्तरः ।।23।।

तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि[1]शृणु श्रीपालभूपते![2]।
भो सुते! त्वमपि व्यक्तं सावधाना शृणु ध्रुवम्[3]।।24।।

।। अथ दर्शनम् ।।[4]

सम्यक्त्वज्ञानवृत्तानि धर्मं प्राहुर्गणाधिपाः ।
योऽत्र भव्यान् समुद्धृत्य धरत्युच्चैः पदे सुखम् ।।25।।

तत्रादौ पालनीयं हि सम्यक्त्वं भव्यदेहिभिः ।
भूरिसंसारवाराशि तारणैकक्षमं मतम् ।।26।।

अधिष्ठानं यथाशुद्धं प्रासादस्थितिकारणम् ।
तथापि च[5] क्रियाकाण्डं शृङ्गारं दर्शनं मतम्[6]।।27।।

तत्सम्यक्त्वं भवेत्पुत्रि! निश्चयश्चेति मानसे ।
काले कल्पशते चापि नान्यथा जिनभाषितम् ।।28।।

पुनस्ते तस्य सद्भेदान् सम्यक्त्वस्य गदाम्यहम् ।
श्रूयतां वत्स भो पुत्रि! सुखकोटिविधायकान् ।।29।।

देवोऽर्हन् दोष[7]निर्मुक्तो धर्मोऽयं दशधास्मृतः ।
निर्ग्रन्थोऽसौ[8] गुरुश्चेति श्रद्धा सम्यक्त्वमुच्यते ।।30।।

जिनोक्तसप्ततत्त्वानां ज्ञातुमिच्छा[9] भवेद्रुचिः ।
या सा श्रद्धा तदेव स्यात्सम्यक्त्वं[10] भव्यदेहिनाम् ।।31।।

निःशङ्किकतादिभिर्युक्तं सम्यक्त्वं चाष्टभिर्गुणैः ।
पापं निहन्ति[11] भव्यानां सन्मन्त्रो वा विषं ध्रुवम् ।।32।।

---

[1]ख प्रति प्रवर्क्ष्यमि
[2]ग प्रति भूतले
[3]क प्रति फलम्
[4]कखग प्रति में उक्त शीर्षक नहीं है
[5]ख प्रति तथापि, ग प्रति तथा तपः
[6]खग प्रति प्रभो
[7] ग प्रति देवोर्हन्दोर्हन्दोष
[8]खग प्रति निग्रन्थो
[9]कखग प्रति ज्ञातुमिछा
[10]ग प्रति शान्सम्यक्त्वं
[11]ख प्रति निहिति

सम्यक्त्वेन युतो जीवस्त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत्[1]।
तद्विनाव्रतयुक्तोऽपि संसारी नात्र संशयः ।।33।।[2]

सदृष्टिर्बन्ध[3]निर्मुक्तो स्त्रीनपुंसकतां तथा ।
दुर्गत्यादीनि दुःखानि नैव प्राप्नोति संसृतौ ।।34।।

किन्तूच्चैर्देवमानुष्यभवैः कैश्चित्सुखावहैः ।
भुक्त्वा सुखं जगत्सारं सम्प्राप्नोति शिवास्पदम् ।।35।।

इति मत्वा महाभव्यैः सम्यक्त्वं मुक्तिकारणम् ।
पालनीयं जिनेन्द्रोक्तं संसाराम्भोधि तारणम् ।।36।।

ये भव्याः प्रतिपालयन्ति नितरां सम्यक्त्वरत्नं हृदि ।
श्रीमज्जैनपदाब्जचिन्तनपरा निःशङ्कितााद्यैर्गुणैः ।।
दुर्गत्यादि–समस्तदोषहरणं सत्सम्पदाकारणम् ।
तेषां सङ्गममाश्रयन्ति मुदिताः स्वर्गापवर्गश्रियः ।।37।।

।। इति दर्शनाधिकारः ।।

।। अथ ज्ञानम् ।।[4]

यज्ज्ञानं[5] श्रीजिनेन्द्रोक्तं विरोधपरिवर्जितम् ।
तज्ज्ञानं शर्मदं नित्यं समाराध्यं बुधोत्तमैः ।।38।।

संज्ञानं[6] लोचनप्रायः[7] सततं सर्वदेहिनाम् ।
तत्प्रमादं समुत्सृज्य संश्रयन्तु सुखार्थिनः[8]।।39।।

यत्र काव्यपुराणेषु चरित्रेषु विशेषतः[9]।
अहिंसा परमोधर्मस्तत्सञ्ज्ञानं बुधैर्मतम् ।।40।।

---

[1]ग प्रति भावेत्
[2]ग प्रति 'नन' इति अतिरिक्त शब्द
[3]कग प्रति बध
[4]कखग प्रति में उक्त शीर्षक नहीं है
[5]ग प्रति यज्ज्ञानीम्
[6]ग प्रति संज्ञानें
[7]क ख प्रति प्रायं
[8]ग प्रति संस्रयन्तु सुषार्थिनः
[9]ग प्रति विशेषितः

मन्त्रतन्त्रादिकैर्यत्र पशूनां हिंसनं मतम् ।
तत्कुज्ञानं सदा त्याज्यं नरकादि गतिप्रदम्[1] ।।41।।

किं बहूक्तेन[2] भो भव्याः सञ्ज्ञानं शर्मकोटिदम्[3] ।
स्वदेशे परदेशे च संज्ञानी पूज्यते यतः[4] ।।42।।

सद्ज्ञान[5]शून्यैर्बहुभिस्तपोभिः सङ्क्लेशलाक्ष्यैर्बहुभिर्भवैश्च ।
यत्पापमाहन्तुमशक्यमज्ञैः तद्धन्यते चैकभवेन सद्ज्ञैः ।।43।।

वाचनापृच्छनाप्रायैः[6] स्वाध्यायैः पञ्चभिस्तथा[7] ।
सदा जैनमतं ज्ञानं समाराध्यं विचक्षणैः[8] ।।44।।

ज्ञानं निर्वृतिसाधनं जिनपतेः ज्ञानं जगद्योतकम् ।
ज्ञानं संशयमोहविभ्रमहरं ज्ञानं सतां लोचनम् ।।
ज्ञानं तीव्रतपो विधानममलं कुज्ञाननिर्नाशनम् ।
ज्ञानं कीर्तिविवेकवैभवकरं संसेव्यतां सज्जनाः ।।45।।
।।इति ज्ञानाधिकारः।।

।।अथ चारित्रम्।।

चारित्रं च द्विधा प्रोक्तं मुनिश्रावकगोचरम् ।
मुनीनां महदित्युच्चैः श्रावकाणामणूच्यते ।।46।।

हिंसादिपञ्चपापानां सर्वथा त्यागतो महत् ।
मुनीनां शुद्धचारित्रमुत्कृष्टं मुक्तिसाधनम् ।।47।।

एकदेशेन हिंसादि त्यागादणुसमाहूतम् ।
श्रावकाणां व्रतं पूतं स्वर्गादिसुखदायकम् ।।48।।
तदहं संप्रवक्ष्यामि[9] संक्षेपेण सुखप्रदम् ।
चारित्रं श्रावकाणां हि लोकद्वयहितावहम् ।।49।।

---

[1]ग प्रति प्रतम्
[2]ग प्रति बहोक्तेन
[3]ग प्रति ज्ञानंदर्शर्मकोटिदम्
[4]ग प्रति ज्यतः
[5]ख प्रति संज्ञान
[6]कख प्रछनाप्रायैः
[7]खग प्रति सदा
[8]खग प्रति जैनं ज्ञानं दयाध्यानं समाराध्यं विचक्षणैः
[9]ग प्रति संप्रविक्ष्यामि

इन्द्रनागेन्द्रचक्र्यादि पदं यस्मात्समाप्यते ।
तच्चारित्रं जिनैः प्रोक्तं जयतात्सर्वदेहिनाम् ।।50।।

मकारत्रयसंत्यागः सहोदुम्बरपञ्चकैः ।
श्रावकाणां पुरा प्राहुः सन्तो मूलगुणाष्टकम् ।।51।।

नामतोऽपि पलं त्याज्यं सद्भिः पापशतप्रदम् ।
यत्कुले तत्कुलं पूज्यं पवित्रीकृतभूतलम् ।।52।।

वारुणी वर्जनीया हि कुलादिक्षयकारिणी ।
या च दुःखप्रदा प्रोक्ता सद्भिः वैतरणी यथा ।।53।।

मक्षिकावमनं निन्द्यं मधुत्याज्यं विचक्षणैः ।
जन्तुकोटिभिराकीर्णं प्रत्यक्षं कलिलाकृतिः ।।54।।

वटादिपञ्चकं पापं भिल्लादीनां हि भक्षणम् ।
जन्तवो यत्र विद्यन्ते तत्त्याज्यं दुःखकारणम् ।।55।।

तथा चर्माश्रितं तोयं तैलं हिंगुघृतं त्यजेत् ।
सुधीर्जैनमते दक्षो मांसव्रतविशुद्धये ।।56।।

उक्तञ्च
शौचाय कर्मणे नेष्टं कथं स्नानादिहेतवे[1]।
चर्मवारि पिबन्नेष व्रती न जिनशासने ।।57।।

तथा सुश्रावकैस्त्याज्या[2] जिनवाक्यपरायणैः ।
हिंसा साङ्कल्पिकी नित्यं त्रसाणां भयकारिणी ।।58।।

देवतामन्त्रतन्त्रार्थं सर्वथा त्रसदेहिनाम् ।
हिंसा साङ्कल्पिकी त्याज्या जैनपक्षोऽयमुत्तमः ।।59।।

दयावल्ली सदा सेव्या सतां सद्गतिदायिनी ।
स्वर्गमोक्षफलान्युच्चैर्या ददात्युपकारिणी ।।60।।

सत्सम्पत्प्रमदाप्रमोदजननी विघ्नौघनिर्नाशिनी ।
शान्तिक्षान्तिविशुद्धकीर्तिकमला सत्सङ्गसम्भाविनी[3]।।
नित्यं जीवदया जगत्त्रयहिता श्रीमज्जिनेन्द्रोदिता[4]।
भो भव्या भवतां भवाब्धितरणिः कुर्यात्सदा मङ्गलम् ।।61।।

---
[1]क प्रति श्नानादिहेतवे
[2]क प्रति स्त्याज्य
[3]कख प्रति सत्सङ्ग विभाविनी ग प्रति सत्सङ्गमंभाविनी
[4]ग प्रति श्रीमज्जिनेन्द्रोदि

सत्यं हितं मितं पथ्यं विरोधपरिवर्जितम् ।
वाच्यं कर्णामृतं वाक्यं विवेकविशदैर्नरैः ।।62।।

सत्येन विमलाकीर्तिः सत्येन कमलामला ।
सत्येन परमो धर्मः सत्येन सुखमुत्तमम् ।।63।।

सत्येन शीततां याति वह्निश्चापि भयानकः।
समुद्रः स्थलतामेति शत्रुर्मित्रायते सुते! ।।64।।

सत्येन परमानन्दो विश्वासः सर्वदेहिनाम् ।
तस्मात्सर्वप्रकारेण सत्यं वाच्यं हितार्थिभिः ।।65।।

सत्यं शर्मशतप्रदं शुभकरं सत्यं सुकीर्तिप्रदम् ।
सत्यं जीवदयाद्रुमौघविलसत्पानीयमाहुर्बुधाः।।
सत्यं सर्वजनप्रतीतिजनकं सत्यं सुसम्पत्प्रदम् ।
सत्यं दुर्गतिनाशनं गुणकरं सत्यं श्रयन्तूत्तमाः ।।66।।

स्तेयं पापप्रदं ज्ञेयं हेयं सद्भिः सुखार्थिभिः ।
यतो भव्या भवन्त्युच्चैर्निधीनां पतयः क्रमात् ।।67।।

स्थापितं पतितं चापि[1] परद्रव्यं च विस्मृतम् ।
पथे वा पथिनाग्राह्यं यत्तृतीयमणुव्रतम् ।।68।।

बाह्यप्राणा धनान्युच्चैर्जनानामिति निश्चयात् ।
ततो दयापरैर्नित्यं तत्त्याज्यं धर्महेतवे ।।69।।

ये हरन्ति परद्रव्यं लोभग्रहवशीकृताः ।
तैर्हृताश्च[2] परप्राणाः परं पुत्रि! किमुच्यते ।।70।।

स्तेयं पापशतप्रदं धनहरं लज्जाकरं दुःकरम्[3]।
कीर्तिस्फीतिहरं[4] कुलक्षयकरं निर्वाणसम्पद्धरम् ।।
ये भव्याः परिवर्जयन्ति नितरां संतोषलक्ष्मीर्युताः ।
ते प्राप्य त्रिदशादि सौख्यमतुलं नित्यं लभन्ते सुखम् ।।71।।

यत्परस्त्री परित्यागो मनोवाक्कायतः सताम् ।
संतोषो निजभार्यायां स्यात्तुर्यं तदणुव्रतम् ।।72।।

---

[1]ग प्रति पतितंश्चापि
[2]ग प्रति तैर्द्वताश्च
[3]क प्रति दुःखरम्
[4]कखग प्रति कीर्त्रिस्फीर्त्रिहरं

ये परस्त्रीरताः पापा विवेकपरिवर्जिताः ।
तेषां दुःखानि[1] जायन्ते लोकेऽत्रैव परत्र च ।।73।।

परस्त्री स्वयमायाताः सापि सन्त्यज्यते बुधैः ।
सर्पिणीव सदा राजन्! शीललीला समुन्नतैः ।।74।।

कुलस्त्रीभिस्तथालोक्य कामदेवाकृतिं सदा ।
परो नराः परित्याज्यो भ्रातातातोऽयमित्यलम् ।।75।।

शीलं सौख्यकरं प्रमोदजनकं शीलं कुलोद्योतकम् ।
शीलं सारविभूषणं गुणकरं शीलं च लक्ष्मीकरम् ।।
शीलं सुव्रतरक्षणं[2] शुभकरं शीलं यशः कारणम् ।
तस्मात्पुत्रि! बुधा जिनेन्द्रकथितं शीलं श्रयन्ति त्रिधा ।।76।।

यत्प्रमाणं भवेन्नित्यं श्रावकाणां परिग्रहे ।
तदणुव्रतमाम्नातं पञ्चमं पूर्वसूरिभिः ।।77।।

संख्यां विना न संतोषो जायते भुवि देहिनाम् ।
तस्माद्भव्यैः प्रकर्त्तव्या सा संख्या सर्ववस्तुषु ।।78।।

संतोषेण भवेन्नित्यं सत्सुखं भव्यदेहिनाम् ।
युक्तं पद्माकराणां हि प्रकाशं कुरुते रविः ।।79।।

मत्वैवं[3] धनधान्यादि चतुष्पदपरिग्रहे ।
परिमाणं प्रकर्तव्यं सदा सद्भिः सुखार्थिभिः ।।80।।

एतान्यणुव्रतान्युच्चैः श्रावकाणां भवन्त्यलम् ।
पञ्चप्राहुर्बुधा रात्र्यभुक्तिं षष्ठमणुव्रतम् ।।81।।

यत्कीटपतङ्गादेर्भक्षणात्[4] निशिभोजनम् ।
त्याज्यं पापप्रदं नित्यं मांसव्रतविशुद्धये ।।82।।

रात्रिभुक्तिपरित्यागात्सम्पदा विविधा भवेत् ।
रूपलावण्यसौभाग्यसम्प्राप्तिश्च दिने–दिने ।।83।।

---

[1]ग प्रति दुःषानि
[2]ग प्रति स्वव्रतरक्षणं
[3]कख प्रति मत्वेवं
[4]ग प्रति भक्षिणात्

रात्रौ भूरिपतङ्गकीटपतनात्तद्भक्षणात्प्राणिनाम् ।
पापं पारविवर्जितं भवति भो भव्या! भवोत्पादकम् ।।
तस्मात्साधुजनैर्विचारचतुरैर्त्याज्यं निशाभोजनम् ।
येनस्यात्सुखकोटिरत्नपरतः कीर्तिः प्रमोदः परः ।।84।।

जलानां गालनं पुण्यं प्रसिद्धं भुवनत्रये ।
तस्मादगालितं तोयं वर्जनीयं विवेकिभिः ।।85।।

षट्त्रिंशदङ्गुलं[1] वस्त्रं चतुर्विंशति विस्तृतम्[2]।
तद्वस्त्रं[3] द्विगुणीकृत्य तोयं तेन तु गालयेत् ।।86।।

तस्मात्तोयं[4] समानीतं गालयित्वातियत्नतः ।
तज्जीवसंयुतं तोयं पुनस्तत्रैवमुच्यते ।।87।।

गालितं तोयमत्युच्चैः सम्मूर्च्छति[5] मुहूर्ततः ।
प्रासुकं यामयुग्माच्च सदुष्णं प्रहराष्टकात् ।।88।।

कर्पूरैलालवङ्गाद्यैः सुगन्धैः सारवस्तुभिः ।
प्रासुकं क्रियते तोयं कषायद्रव्यकैस्तथा ।।89।।

कन्दमूलञ्च सन्धानं काञ्जिकं गृञ्जनं तथा ।
नवनीतं पुष्पशाकं च बिल्वालाम्बुफलं त्यजेत् ।।90।।

तथा मौनव्रताद्युच्चैर्यदुक्तं जिनपुङ्गवैः ।
तत्सर्वं पालनीयं हि श्रावकाणां जगद्धितम् ।।91।।

दिग्देशानर्थदण्डोच्चैर्नामान्येतानि धीधनैः ।
गुणव्रतानि त्रीण्येव पालनीयानि शर्मणे ।।92।।
दिग्व्रतं कथ्यते तच्च सर्वदिक्षु दयापरैः ।
योजनैः क्रियते संख्या जन्मपर्यन्तकं हि यत् ।।93।।

तन्मध्ये नित्यशस्स्तोकसंख्या सङ्क्रियते बुधैः ।
देशव्रतं तदाख्यातं भो सुते! पूर्वसूरिभिः ।।94।।

---

[1]ग प्रति षट्त्रिंशदंगुणलं
[2] ग प्रति विस्मृतम्
[3]ग प्रति तद्वस्तं
[4]कग प्रति यस्मात्तोयं
[5]कख प्रति सन्मुर्छति, ग प्रति सम्मूर्छेति

त्यज्यते विफलारम्भो यत्सदा धर्मवेदिभिः ।
पृथ्वीजलादिवातोरूवनस्पति विराधकः ।।95।।

तथा कुक्कुर[1]मार्जारकीरमर्कटकादयः ।
दुष्टजीवान्न पोष्यन्ते तत्तृतीयं[2] गुणव्रतम् ।।96।।

उक्तञ्च
पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च ।
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ।।97।।[3]

सामायिकं व्रतं[4] पर्वोपवासो भोगयुग्मकम् ।
संविभागोऽतिथीनां च शिक्षाव्रतचतुष्टयम्[5]।।98।।

समता सर्वजीवेषु संयमे शुभभावना ।
हिंसारम्भपरित्यागस्तावत्कालं जगद्धितः ।।99।।

चैत्यभक्तिस्तथा पञ्चगुरुभक्तिः विशेषतः ।
वैराग्यभावना चित्ते तथा दुर्ध्यानवर्जनम्[6]।।100।।

द्वित्रिसन्ध्यं सुते! भव्यैः सामायिकविधिर्महान् ।
स्वर्गमोक्षसुखप्राप्त्यै कर्तव्यो निश्चलाशयैः ।।101।।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां चतुर्धाहारवर्जनम् ।
सशीलं सदयोपेतं तद्द्वितीयं[7] व्रतं मतम् ।।102।।

भोगोपभोगयोः संख्या श्रावकाणां च या भवेत् ।
शिक्षाव्रतं[8] तृतीयं तत् सञ्जगुर्मुनिसत्तमाः ।।103।।

संविभागो भवेत् त्यागस्त्यागो दानञ्च पूजनम् ।
तद्दानं च बुधैर्देयं[9] त्रिधा पात्राय भक्तितः ।।104।।

---

[1]कखग प्रति कुर्क्कुर
[2]ग प्रति तत्रृयं
[3] रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक संख्या 75
[4]ग प्रति सामायकव्रतं
[5] कख प्रति सिष्याव्रतचतुष्टय
[6]ग प्रति दुध्यनिवर्जनम्
[7]कखग प्रति तद्वितीय
[8]ग प्रति शिख्याव्रतं
[9]क प्रति बुधैर्ज्ञेयं

मुनीन्द्रः श्रावकः शुद्धस्सम्यग्दृष्टिश्च केवलम् ।
इति पात्रत्रिभेदेभ्यो[1] दानं देयं चतुर्विधम् ।।105।।

आहाराभयभैषज्यशास्त्रदानं[2] जगद्धितम् ।
देयं पुत्रि! सुपात्रेभ्यो विधिना धर्महेतवे ।।106।।

पात्रदानेन भो राजन्! नाना सत्सम्पदां सुखम् ।
प्राप्यते परमानन्दो भो सुते! शृणु वत्सले! ।।107।।

आहारौषधशास्त्रदानमभयं दानं सुपात्रे त्रिधा ।
ये भव्या निजशक्तिभक्तिसहिता[3] नित्यं शुभं कुर्वते ।।
ते[4] भव्या धनधान्यमान्यविभवं भुक्त्वा[5] चिरं पावनम् ।
पश्चात्स्वर्गसुखं समाप्य सततं मोक्षं[6] लभन्ते परम् ।।108।।

जिनेन्द्रभवनोद्धारं प्रतिमाः पापनाशनाः ।
ये कारयन्ति[7] धर्मज्ञास्ते सम्यग्दृष्टयो भुवि ।।109।।

कृत्वा पञ्चामृतैर्नित्यमभिषेकं जिनेशिनाम् ।
ये भव्याः पूजयन्त्युच्चैस्ते पूज्यन्ते सुरादिभिः ।।110।।

तथा श्रीमज्जिनेन्द्राणां पूजां पापप्रणाशिनी ।
ये कुर्वन्ति महाभव्यास्ते लभन्ते सुखं परम् ।।111।।

यथा देवस्तथा जैनीवाणी सन्मार्गदर्शिनी ।
गुरुणां चरणाम्भोजद्वयं पूज्यं[8] सुखार्थिभिः ।।112।।

पुनः स्तुत्वा[9] जिनान्नत्वा ये जयं कुर्वते बुधाः ।
ते भव्याः सत्सुखं प्राप्य निर्वृत्तिं यान्ति वेगतः ।।113।।
पूज्यपूजाक्रमेणोच्चैर्भव्यः पूज्यतमो भवेत् ।
तस्माद्भव्यजनैर्नित्यं पूज्यपूजा न लङ्घ्यते ।।114।।

तीर्थेशामभिसेवनात् सुरवरैः संस्नाप्यते सादरम् ।
संपूज्यो वर पूजनैः स्तवनतः स्तुत्योभवेद्धार्मिकैः ।।

---

[1]क प्रति त्रिपात्रभेदेभ्यो
[2]ग प्रति आहारालयभैषज्य
[3]क प्रति निजभक्तिशक्तिसहता
[4]ग प्रति जे
[5]क प्रति भुक्ता
[6]क ग प्रति सौख्यं
[7]ग प्रति कार्रयन्ति
[8]क प्रति द्वयंज्य
[9]ग प्रति श्रुत्वा

संजप्यो जपनेन निर्मलधियां ध्येयः सदा ध्यानतो ।
जीवः श्रीजिनबोधतो गुणनिधिः प्रान्ते भवेत्केवली ।।115।।

अन्ते सल्लेखना कार्या जैनतत्वविदाम्बरैः ।
अनन्यशरणीभूतैः श्रित्वा श्रीपरमेष्ठिनः ।।116।।

त्यक्त्वा[1] मोहादिकं ग्रन्थं क्षमां कृत्वा च जन्तुषु ।
रागद्वेषं परित्यज्य शुद्धात्मध्यानतत्परैः ।।117।।

एवं गुणव्रतं त्रेधा शिक्षाव्रत[2]चतुष्टयम् ।
शर्मदं सूरिभिः प्रोक्तं भव्यानां शीलसप्तकम् ।।118।।

इत्युच्चैर्जिनभाषितं शुभतरं स्वर्मोक्षलक्ष्मीकरम् ।
ये[3] धर्मं प्रतिपालयन्ति सुधियो[4] धर्मानुरागान्विताः ।।
ते भव्यास्त्रिदशादि सौख्यमतुलं सम्प्राप्य रत्नत्रयात् ।
पश्चाद्यान्ति शिवालयं सुखमयं श्रीबोधसिन्धुस्तुतम् ।।119।।

इत्येवं गुरुणा तेन प्रोक्तं धर्मं जिनेशिनाम् ।
श्रुत्वा श्रीपालराजस्तं समुत्थाय[5] कृताञ्जलिः ।।120।।

भक्तितः तं मुनिं नत्वा सुगुप्ताचार्यमुत्तमम् ।
भो स्वामिन्! त्रिजगन्नाथं मुक्त्वा[6] श्रीमज्जिनेशिनाम्[7] ।।121।।

तथा साधून्मुनीन्द्रांश्च परित्यज्य कदाचन ।
अन्यस्मै न करिष्यामि नमस्कारं महामुने! ।।122।।

इत्यादिकं प्रजल्पोच्चैः परमानन्दनिर्झरः ।
सम्यक्त्वं[8] त्रिजगत्सारं स्वीचक्रे परमार्थतः[9] ।।123।।

पुनर्मुनिर्जगादोच्चैः शृणु त्वं पुत्रे! वच्मि ते ।
सर्वसिद्धिप्रदं सिद्धचक्रपूजा विधानकम् ।।124।।

---

[1]ग प्रति त्यक्ता
[2]ग प्रति शिष्याव्रत
[3]ग प्रति वे
[4]ग प्रति सुधिषो
[5]ग प्रति समुत्छाय
[6]क प्रति मुक्ता
[7]ग प्रति श्रीमज्जिनेस्वरम्
[8]ग प्रति सम्यक्तं
[9]ग प्रति परमार्थितः

येन[1] श्रीसिद्धचक्रस्य पूजनेन जगत्त्रये ।
रोगशोकसहस्त्राणि[2] क्षयं यान्ति क्षणार्द्धतः ।।125।।

शत्रवो मित्रतां यान्ति विघ्ना सर्वे प्रयान्ति च ।
शान्तिस्सम्पद्यते शीघ्रं वह्निश्चापि जलायते ।।126।।

विषं निर्विषतामेति पशवः पन्नगादयः ।
तेऽपि सर्वे प्रशाम्यन्ति सिद्धचक्रप्रपूजनात् ।।127।।

डाकिनी शाकिनी चापि भूताः प्रेतादयः खलाः ।
वैरभावं परित्यज्य सेवां कुर्वन्ति भक्तितः ।।128।।

पुत्रमित्रकलत्रादि सज्जनाश्चितरञ्जनाः ।
भवन्ति स्नेहिनो नित्यं सिद्धचक्रप्रसादतः ।।129।।

सारदेवेन्द्रचक्र्यादि सम्पदाविविधाः सदा ।
मणिमुक्ताफलप्रायाः संप्राप्यन्ते पदे पदे ।।130।।

अहो राजन्नहो पुत्रि! यच्छुभं भुवनत्रये ।
तत्सर्वं सिद्धचक्रस्य पूजनेन भवेदलम्[3] ।।131।।

किं सुते! बहुनोक्तेन सिद्धचक्रविधानतः ।
प्राप्नुवन्ति सदा भव्याः स्वर्गमोक्षश्रियो ध्रुवम् ।।132।।

तत्कथं क्रियते चेति विधानं शृणु पुत्रिके!
आषाढे कार्तिके मासे[4] फाल्गुने सुमनोहरे ।।133।।

यदा यदा समायाति पर्वनन्दीश्वरं[5] शुभम् ।
तदा तदा समारभ्य विधानमिदमुत्तमम् ।।134।।

शुक्लाष्टमी समारभ्य दिनान्यष्टौ जगद्धिते ।
जिनेन्द्रभवने शोभां कृत्वा त्रैलोक्यमोहिनीम् ।।135।।

गृहीत्वा सद्गुरोराज्ञां भव्यानां शर्मदायिनीम् ।
यथाशक्ति समादाय सत्तपोऽपि सुखप्रदम् ।।136।।

---

[1]कख प्रति यत्
[2]कख प्रति सहश्राणि
[3]ग प्रति नभेवेलम्
[4]क प्रति मासि
[5]ग प्रति नान्दीश्वरं

ब्रह्मचर्यव्रतं पूतं गृहीत्वा च दिनाष्टकम् ।
कारयित्वा च जीवानां समारीं[1] शर्मकारिणीम् ।।137।।

स्वर्णादि विहिते पात्रे पवित्रे सुमनोहरे ।
चन्दनागुरुकर्पूरद्रव्येण[2] शुभकारिणा ।।138।।

सिद्धचक्रमहायन्त्रं समुद्धृत्य विचक्षणैः ।
पूर्वाचार्योपदेशेन हकाराद्यैर्महाक्षरैः ।।139।।

सौवर्णं राजतं ताम्रं यन्त्रं वा क्रियते शुभम् ।
जिनेन्द्रप्रतिमाग्रे च पीठे संस्थाप्य निश्चले ।।140।।

तद् द्वयं[3] पञ्चपीयूषैः सत्तोयेक्षुघृतादिभिः ।
दुग्धैर्दधिप्रवाहैश्च स्नापयित्वा महोत्सवैः ।।141।।

कर्पूरागरूकाश्मीरचन्दनैलादिवस्तुभिः ।
सर्वौषध्या जलेनोच्चैः प्रक्षाल्य परमादरात् ।।142।।

कर्पूरवासितैः स्वच्छैः पवित्रैस्तीर्थवारिभिः ।
पूजनीयं जगत्पूज्यं सर्वसिद्धिकरं परम् ।।143।।

चारूचन्दनकाश्मीरकर्पूरागरूसद्द्रवैः।
चर्चनीयं जगत् पापतापसंदोहनाशनम्[4]।।144।।

अक्षतैरक्षतैर्धौतैस्तुङ्गपुञ्जीकृतैः सितैः ।
पूज्यते परमानन्ददायकं मुक्तिनायकम् ।।145।।

जातीचम्पकपुन्नागैः पद्मोघैः कुसुमोत्करैः ।
इत्यादिभिः समभ्यर्च्य चर्चयन्तु बुधोत्तमाः ।।146।।

पक्वान्नैश्चारूपीयूषैर्व्यञ्जनाद्यैरनुत्तरैः ।
दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यदावानलघनाघनम् ।।147।।

अर्च्यते रत्नकर्पूरसद्दीपैर्ध्वान्तनाशनैः ।
अज्ञानतमसः स्तोमविध्वंसनमनुत्तरम् ।।148।।

---

[1]ग प्रति संसारीं
[2]ख प्रति द्रवेण
[3]कख प्रति तद्वयं
[4]क प्रति तप

कृष्णागरु[1]महाधूपैः पूज्यते परमादारात् ।
दुष्टाष्टकर्मकाष्टौघदहनैकहुताशनम् ।।149।।

नालिकेराम्रजम्बीरदाडिमादिफलोत्करैः ।
स्वर्गमोक्षसुखप्राप्त्यै समाराध्यं विचक्षणैः ।।150।।

तोयगन्धाक्षताद्यैश्च दत्वार्घं भव्यसत्तमः ।
स्वर्णपात्रे पुनश्चार्घं कृत्वा स्तुतिमिमां पठेत् ।।151।।

सम्यक्त्वादि गुणौघरत्ननिलयं देवेन्द्रवृन्दार्चितम् ।
दुष्कर्मारिकठोरदारूदहनं योगीन्द्रसंसेवितम् ।।
लोकालोकविलोकनैककुशलं संसारसन्तापहम् ।
भक्तया मुक्तिसुखैककारणमहं श्रीसिद्धचक्रं स्तुवे ।।152।।

जय सिद्ध[2]चक्रदेवाधिदेव सुरनरविद्याधरविहितसेव ।
जय सिद्धदेव[3]भयचक्रमुक्त मुक्तिस्त्रीसङ्गम शर्मशक्त ।।153।।

जय सिद्धचक्रपरमात्मरूप पावनगुणरञ्जित परमभूप[4] ।
जय सिद्धचक्रकर्मारिवीर दुस्तरभवसागर लब्धतीर ।।154।।

जय सिद्धचक्रसम्यक्त्वसार सञ्ज्ञानसमुद्रसमाप्तपार ।
जय सिद्धचक्रदर्शनविशुद्ध वीर्यार्जितगुणगणमणि समिद्ध ।।155।।

जय सिद्धचक्र सूक्ष्मस्वाभाव अवगाहनगुण सम्पूर्णभाव ।
जय सिद्धचक्र गुरुलघुविमुक्त[5] अव्याधिबाधलक्षणनिरुक्त ।।156।।

जय सिद्धचक्र दुर्गति विनाश दुर्व्याधिहरणजनपूरिताश ।
जय सिद्धचक्र करुणासमुद्र भुवनत्रयमण्डननत[6] मुनीन्द्र ।।157।।

जय सिद्धचक्र लोकप्रसिद्ध कालत्रय सम्भवभावबुद्ध ।
जय सिद्धचक्र चारित्रसार मुनिजन संसेवित मुक्तिहार ।।158।।

---

[1]कखग प्रति कृष्लागरु
[2]ग प्रति सिद्धि
[3]ग प्रति सिद्धचक्र
[4]क प्रति रूप
[5]कख प्रति विमुक्ति
[6]ग प्रति नतीन्द्र

जय सिद्धचक्र कविराजपूज्य सम्प्राप्य[1] शिवालय परमराज्य ।
जय सिद्धचक्र हतदोषचक्र तनुवातस्थित सन्नम्रशक्र[2] ।।159।।

जय सिद्धचक्र चित्तौघहरण निजनाममन्त्र[3] सम्पत्तिकरण ।
जय सिद्धचक्र निश्चलचरित्र भवसागरतारणयानपात्र ।।160।।

इति सिद्धसमूहं[4] निर्गतमोहं यः स्तोति विशुद्धमतिः।
सम्भवति गुणचन्द्रः परमजिनेन्द्रः सिद्धिसौख्यसम्पत्तिततिः।।161।।

अष्टोत्तरशतेनोच्चैर्जपैः पापप्रणाशनैः ।
'असिआउसा'–इत्येवं जपनीयं च तद्धितम् ।।162।।

तत्स्नानगन्धतोयेन सिक्तोयं तव[5] वल्लभः।
गतव्याधिस्तथा कामदेवो वा सम्भविष्यति ।।163।।

इत्यादि सिद्धचक्रस्य विधानं शर्मदायकम् ।
श्रुत्वा सा पतिना सार्धं तदा मदनसुन्दरी ।।164।।

तद्व्रतं[6] त्रिजगत्सारं ग्राहयित्वा निजं पतिं ।
गृहीत्वा च स्वयं भक्त्या परमानन्दनिर्भरा ।।165।।

मुनिं नत्वा सुभावेन गृहमागत्य सा सती ।
सिद्धचक्रमहायन्त्रं चारु चामीकरोद्भवम् ।।166।।

कारयित्वा तदा शीघ्रं पूर्वोक्तविधिना शुभम् ।
सामग्रीं संविधायोच्चैर्जगच्चेतोऽनुरञ्जिनीम् ।।167।।

स्वयं स्नात्वा पवित्रात्मा धौतवस्त्रसमन्विता ।
जिनेन्द्रभवने रम्ये कृत्वा शोभां मनः प्रियाम् ।।168।।

अष्टम्यां[7] जिनबिम्बानि सिद्धं संस्थाप्य चासने[8]।
पञ्चामृतैश्च संस्नाप्य गीतवादित्रमङ्गलैः।।169।।

---

[1]क प्रति सम्प्राप्त
[2]ग प्रति संनस्त्रशक्र
[3]ग प्रति मात्र
[4]ग प्रति सिद्धिचक्रसमूहं
[5]ग प्रति भव
[6]ग प्रति वद्व्रतं
[7]ग प्रति जिनवेंकनि
[8]ग प्रति चासमे

विशिष्टाष्टमहाद्रव्यैर्जलगन्धाक्षतादिभिः ।
पूजामेकं गुणाञ्चक्रे सिद्धचक्रस्य शर्मदाम् ।।170।।

रात्रौ जागरणं कृत्वा संघेन महता सह ।
नवम्यां दशधोपेतां तथा स्नपनपूर्वकम् ।।171।।

दशम्यां शतधा पूजामेकादश्यां सहस्त्रधा[1] ।
द्वादश्यां तद्दशोपेतां त्रयोदश्याञ्च लक्षिकाम् ।।172।।

दशलक्षगुणां पूजां चतुर्दश्यां विधाय च ।
कोटिधा पूर्णिमायाञ्च पूजां चक्रे शुभाशया ।।173।।

तदा श्री[2] जिनसिद्धानां स्नानगन्धोदकेन च।
तच्चन्दनान्वितेनोच्चैः तया च परमादरात् ।।174।।

नित्यं यथा यथा भर्त्ता सिक्तो लिप्तस्तथा तथा ।
दिनं दिनं प्रतिव्यक्तं सिद्धचक्रप्रभावतः ।।175।।

स श्रीपालो लसत्भालो दिव्यमूर्तिभवंस्तदा ।
अष्टमे च दिने प्राप्ते नष्टव्याधिर्बभूव च ।।176।।

पूर्वरूपादपि प्राप्तरूपसौभाग्यसम्पदः ।
कामदेवसमाकारः कान्त्याजितसुधाकरः ।।177।।

त्रिजगद्वनितावृन्दमनोमाणिक्यमोहनः ।
सिद्धचक्रप्रसादेन जगद्व्याप्तयशोधनः[3] ।।178।।

तथा तया[4] तदा सर्वे ते सप्तशतकुष्ठिनः[5]।
तेन गन्धाम्बुना शीघ्रं विहिता व्याधिवर्जिताः ।।179।।

सिद्धचक्रस्य पूजायाः फलं प्रत्यक्षतामितम् ।
तेऽपि संवीक्ष्य जैनेन्द्रधर्मे लग्नाः स्वभावतः ।।180।।

---

[1]कग प्रति सहश्रधा
[2]कख प्रति च
[3]कख प्रति यशोधरः
[4]ग प्रति तथा
[5]ग प्रति कुदृष्टिनः

सत्यं सत्सङ्गतिर्लोके फलत्युच्चैर्महाफलम् ।
कल्पवल्लीव सत्सौख्यं परमानन्ददायिनीम् ।।181।।

तदा तौ दम्पती हृष्टौ सिद्धचक्रप्रभावतः ।
रेजाते शक्रपौलोम्यौ क्रीडन्तौ वा महीतले ।।182।।

नानाभोगशतैर्नित्यं स्वपञ्चेन्द्रियतर्पणैः ।
सुखं प्रीत्या प्रभुञ्जानौ संस्थितौ पुण्यपाकतः ।।183।।

पात्रदानं जिनेन्द्रार्चा नित्यं स्नपनपूर्वकम् ।
स्वशीलं चोज्ज्वलं पर्वोपवासमति[1]निर्मलम् ।।184।।

तदा प्रभृतिनित्यञ्च सिद्धचकस्य पूजनम् ।
धर्मपरोपकाराद्यैश्चक्रतुस्तौ निरन्तरम् ।।185।।

किं बहूक्तेन भो भव्याः! तयोस्तत्र सुखप्रदा ।
पूजा श्रीसिद्धचक्रस्य जाता कल्पलतेव सा ।।186।।

अथैकदा समाकर्ण्य स्वपुत्रं परमोदयम् ।
तन्मातरं समयातां सतीमुज्जयिनीं पुरीम् ।।187।।

श्रीपालः सम्मुखं गत्वा सहर्षः सपरिच्छदः ।
नत्वा तत्पादयोर्भक्त्या[2] सुधीस्तां गृहमानयत् ।।188।।

मदनादिसुन्दरी तां श्वश्रू[3] मत्वा सुभक्तितः ।
ननाम[4] चरणद्वन्दे तस्या विनतमस्तका[5] ।।189।।

सा श्वश्रूश्च मुदा प्राह तदा त्वं भो वधूत्तमे! ।
श्रीपालनृपतेरस्य पट्टदेवी भवत्यलम्[6] ।।190।।

ततः साऽपि प्रसन्नात्मा वधूः सद्धर्मवत्सला[7]।
स्नानभोजनसद्वस्त्रताम्बूल[8]विनयादिकम् ।।191।।

---

[1]ग प्रति पर्वोपवासम
[2]कखग प्रति भूत्या
[3]कखग प्रति श्वश्रूम
[4]ग प्रति ननम
[5]ग प्रति मस्तिका
[6]ग प्रति भवत्येलम्
[7]ग प्रति सधर्मवत्सला
[8]ग प्रति सद्वस्तत्राम्बूल

प्राधूर्णकक्रियां कृत्वा[1] सज्जनानन्ददायिनीम्[2]।
पुनर्नत्वा च तां प्राह भो माता! कृपया वद[3]।।192।।

कस्मादत्र समायाता भवती भुवनोत्तमा।
कीदृशोऽयं च मत्कान्तः किं गोत्रो मे समादिश ।।193।।

सा जगाद सती प्रोच्चैरङ्गदेशे मनोहरे ।
चम्पापुर्यां नराधीशः सिंहसेनो महानभूत् ।।194।।

तस्याग्रमहिषी चाहं स्वनाम्ना कमलावती ।
मत्पुत्रोऽयं शुभो जातः श्रीपालः कर्मयोगतः ।।195।।

जाते द्विवार्षिके चास्मिन्[4] सिंहसेनो नृपो मृतः ।
के के नैव गताः काले भो बाले! श्रूयतां वचः ।।196।।

आनन्दमन्त्रिणा तत्र राज्येऽयं बालकोऽपि च ।
संस्थापितो यदा तत्र पितृव्यश्चास्य दुष्टधीः ।।197।।

वीरादिदमनो नाम विषं दातुं समुद्यतः ।
मन्त्रिणा मे तदाख्यातं तेनाहं त्रस्तमानसा ।।198।।

एतं[5] बालकमादाय सम्प्रणम्य[6] च वेगतः।
वाराणसीं[7] पुरीं प्राप्ता देशत्यागो[8] हि दुर्जनात् ।।199।।

पूर्व पापेन तत्रापि कुष्ठरोगेण पीडितः।
अयं बालस्तदा तत्र कुष्ठिभिरेतकैः खरम्[9]।।200।।

विधाय कलहं नीत्वा कृत्वा च निजनायकम् ।
अत्रानीतस्तथा सिद्धचक्रपूजा प्रभावतः ।।201।।

---

[1]ग प्रति क्रित्वा
[2]ग प्रति सज्जनानांददायिनीम्
[3]ग प्रति वदः
[4]ग प्रति चास्मिन्न
[5]ग प्रति एनं
[6]कखग प्रति सम्प्रणस्य
[7]क प्रति एवं वाणारसीं
[8]कख प्रति देशत्यागे
[9]ग प्रति स्वरम्

त्वत्पुण्येनापि[1] भो वत्से! कामदेवसमोऽजनि[2]।
तत्सर्वं भवत्याः[3] पुण्यं श्रुत्वाहं च समागताः ।।202।।

समाकर्ण्य तदा सर्वं भर्तुराख्यानकं शुभम् ।
निधानं[4] वा समासाद्य तुष्टा मदनसुन्दरी ।।203।।

अथैकदा प्रजापालो वनक्रीडां महीपतिः ।
कृत्वा गृहं समागच्छन् पुरीबाह्ये मनोहरे ।।204।।

प्रासादोपरि भूमौ च तदा श्रीपालमुत्तमम् ।
तया सार्धं समालोक्य कामदेवसमाकृतिम् ।।205।।

तज्जारशङ्कया चित्ते स्वस्य वक्तुमधोमुखम् ।
कृत्वा संचिन्तयामास हा क्रोधान्धेन पापिना ।।206।।

कुष्ठिने स्वसुता दत्ता मया विगत चेतसा ।
कन्यया च कुलं नष्टं मदीयं यशसा समम् ।।207।।

तदा तं मानसं मत्वा कन्यायाः मातुलो महान् ।
सञ्जगाद प्रभो कस्माल्लज्जितं च त्वया वद ।।208।।

प्रभुः प्राह सदुःखेन[5] विनष्टा कन्यका[6] किल ।
मातुलोऽपि जगौ राजन्मैवं ब्रूहि कदाचन[7]।।209।।

तेजस्ते शीलनिर्मुक्तं सम्भवेन्नैव भूतले ।
किन्त्वाभ्यां सिद्धचक्रस्य विहितं पूजनं प्रभो! ।।210।।

तेन पुण्येन जातोऽयं श्रीपालो व्याधिवर्जितः ।
कन्येयं श्रीजिनेन्द्रोक्तधर्मद्रुमलतोपमा ।।211।।

नैवान्यायं[8] करोत्येषा स्थिरा वा मेरूचूलिका ।
स्वशीलेन पवित्रात्मा सन्मतिर्वा महामुनेः ।।212।।

---

[1]ग प्रति त्वत्पुणेनापि
[2]ग प्रति जिनिः
[3]क ख प्रति भवतो, ग प्रति नवतोः
[4]ग प्रति निधा
[5]क ख ग प्रति सुदुःखेन
[6]क प्रति कन्यया
[7]ग प्रति कदाचिनः
[8]ग प्रति न्यैवान्यायं

तन्निशम्य प्रजापालः सानन्दो विस्मयान्वितः ।
तयोः समीपमायातो राजा सस्नेहमानसः ।।213।।

तमायातं समालोक्य श्रीपालश्चप्रियान्वितः ।
अभ्युत्थानादिकं कृत्वा ननाम विनयेन च ।।214।।

तदा प्रभुः सुतां[1] प्राह भो सुते कुलदीपिके!।
जिनेन्द्रचरणाम्भोजसमभ्यर्चनकोविदे![2] ।।215।।

सत्यं ते पुण्यकर्मात्र फलितं कल्पवृक्षवत् ।
सिद्धचक्रप्रसादेन परमानन्ददायकम् ।।216।।

एवं पुत्रीं प्रशस्योच्चैः स्वाङ्कमारोप्य सादरम् ।
श्रीपालञ्च जगादैवमहो श्रीपालपुण्यभाक्! ।।217।।

त्वमेव भुवने सिद्धचक्रसेवाविधायकः ।
अतो गृहाण[3] सप्ताङ्गं राज्यं मे शर्मदायकम् ।।218।।

श्रीपालस्तं प्रणम्योच्चैः राजानं समुवाच सः ।
अहो! नरेन्द्रतत्सत्यं राज्यं ते मे भवत्यलम् ।।219।।

तुष्टस्तेन प्रभुर्मत्वा तस्य मानसमुन्नतम् ।
श्रीपालं तं प्रशस्याशु[4] तस्मै प्रीत्या पुनर्ददौ ।।220।।

देशकोषपुरग्राममत्तमात्तङ्गसद्रथान् ।
नाना तुरङ्गमांस्तुङ्गान् वस्तुवास्तुसमुच्चयम् ।।221।।

सम्मान्य सरसैर्वाक्यैः परमानन्ददायकैः ।
सुधीः स्वगृहमायातो विकसन्मुखपङ्कजः ।।222।।

तदा तत्र जगत्सारः जैनधर्मस्य शर्मदः ।
लोकोद्योतकरस्यापि प्रद्योतश्च महानभूत् ।।223।।

---

[1]ग प्रति श्रुतां
[2]ग प्रति कोविदो
[3]ग प्रति गृहीण
[4]कखग प्रति प्रशस्याश्रु

ततो धर्मप्रसादेन श्रीपालः कान्तया समम् ।
संस्थितः सुखसम्पन्नो धर्मकार्येषु तत्परः ।।224।।

इत्थं श्रीजिनसिद्धचक्रविलसत्पूजा प्रभावेण वै ।
भूत्वा कामसमाकृतिर्गुणनिधिः श्रीपालनामानृपः ।
नानाभोगविलाससौख्यनिलयः कीर्त्या जगद् व्यापकः ।
तत्रस्थोऽपि परोपकारनिरतस्तस्थौ समं कान्तया ।।225।।

प्रत्यक्षं जिनधर्मकर्मनिरतः श्रीपालनामानृपः।
जातो व्याधिविवर्जितो गुणनिधिः सत्सम्पदामण्डितः।
मत्वैवं भवसिन्धु[1]तारणपरं धर्मं सुशर्माकरम् ।
भो भव्याः! प्रभजन्तु निर्मलधियस्त्यक्त्वा प्रमादं सदा ।।226।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयान्विते श्री[2]पालमहाराजचरिते भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य–श्रीसिंहनन्दि– ब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीपालराजधर्मश्रवण– श्रीसिद्धचक्रपूजनसमस्तव्याधि–विनाशराजसम्मानादि व्यावर्णनोनाम तृतीयोऽधिकारः ।।3।।

[1]ग प्रति भवस्यन्धु
[2]ग प्रति श्री शब्द दो बार आया

चतुर्थाधिकारः

अथैकदा निशम्योच्चैः[1] श्रीपालो गायनादिभिः[2] ।
प्रजापालमहीभर्तुर्नाम्ना स्वस्य[3] कृतां स्तुतिम् ।।1।।

स्वचित्ते चिन्तयामास हा कष्टं मम जीवितम् ।
श्रूयतेऽहं[4] सदा नाम्ना श्वसुरस्य महीतले ।।2।।

मत्पितुः श्रूयते नैव नामाप्यत्र कदाचन ।
मया निर्गमितं तच्च मन्दभाग्येन साम्प्रतम् ।।3।।

इत्यादि चिन्तयाक्रान्तं स्वभर्त्तारं विलोक्य च ।
कन्दर्पसुन्दरी साह किं स्वामिन्मुखपङ्कजे ।।4।।

म्लानताकारणं ब्रूहि सुधीर्मे[5] करुणापरः ।
श्रीपालस्सञ्जगौ कान्ते! मत्पितुर्नामनिर्गतम् ।।5।।

श्रूयते श्वसुरस्यैव नामसर्वत्र सर्वदा ।
अतो मे जायते दुःखं मानसे च प्रिये![6]शृणु ।।6।।

मातुलस्य भगिन्याश्च श्वसुरस्यापि योषितः ।
नाम्ना धनेन जीवन्ति भवन्त्येतेऽधमाधमाः ।।7।।

भुजोपार्जितवित्तेन भुञ्जते ये सुखं किल ।
तेऽत्र सत्पुरुषा लोके परे दुर्मानशालिनः ।।8।।

धनं विना न भातीह नरो लोके निरन्तरम् ।
यथा सुगन्धताहीनो नानाकुसुमसञ्चयाः ।।9।।

विस्तारयन्ति ये कीर्तिं स्वकीयोपार्जितैर्धनैः ।
धन्यास्ते एव संसारे चन्द्रकान्तिमिवोज्ज्वलाम् ।।10।।

अतो देशान्तरं[7] गत्वा धनञ्चोपार्ज्य निर्मलम् ।
पश्चात्संसारसौख्यानि भुज्यते निश्चयात्प्रिये! ।।11।।

---

[1]ख प्रति निशाम्योच्चैः
[2]ग प्रति गाइनादिभिः
[3]ग प्रति स्वरस्य
[4]कख प्रति स्तूयतेऽहं
[5]ग प्रति सुधर्मे
[6]ग प्रति प्रये
[7]ग प्रति देश्यान्तरं

नागवल्लीदलं रत्नं पुरुषोऽपि सपुण्यवान् ।
देशान्तरेषु मान्यन्ते भो कान्ते! श्रूयते वचः ।।12।।

कान्तवाक्यं समाकर्ण्य कम्पिता किल कामिनी ।
वने वातेन वा वल्ली कोमलाङ्गी सुगन्धिनी ।।13।।

उवाच सुन्दरी सा च वियोगं सोढुमक्षमा ।
अहं ते पद्मिनीवोच्चैर्भास्करस्य दिवि[1] प्रभो! ।।14।।

ततस्त्वया समं नाथं समेष्यामि सुनिश्चितम् ।
ज्योत्स्ना चन्द्रेण सार्धं च यथा गच्छति नित्यशः ।।15।।

छाया वा पुरुषेणैव[2] सन्मतिर्वा मुनीशिना ।
नीतिर्वा भूभुजा सार्धं प्रीतिर्वा[3] सज्जनेन च ।।16।।

इत्यादिकं प्रिया प्रोक्तं श्रीपालस्तन्निशम्य च ।
प्रोवाच मधुरां वाणीं शृणु त्वं प्राणवल्लभे! ।।17।।

कान्तया गमनं सार्धं विदेशे दुःखकारणम् ।
पुंसां यानेऽशने स्थाने शयने[4] दुर्जने वने ।।18।।

कामिन्यः कोमलाङ्ग्यश्च स्वभावेन सदा प्रिये! ।
त्वं च राजसुता नित्यं मालतीव सुकोमला ।।19।।

तथा तातादयस्ते च श्रुत्वा वार्तामिमां[5] ध्रुवम् ।
वारयिष्यन्ति मां गाढमुपायैर्विविधैर्ध्रुवम्[6] ।।20।।

तस्मादागम्यते यावन्मया लक्ष्म्या समं शुभे ।
तावत्त्वं तिष्ठ भो कान्ते! पितुरन्ते सुखेन च ।।21।।

पुनः पुनः प्रिये! मत्वा स्वचित्ते मङ्गलं मम ।
मा[7] वादीस्त्वं निषेधार्थं सर्वकार्ये विचक्षणे! ।।22।।

---

[1]कखग प्रति निशि
[2]कखग प्रति पुरुषेणामा
[3]कखग प्रति स्फीतिर्वा
[4]ग प्रति शये
[5]ग प्रति वात्रामिमां
[6]ग प्रति गायमुपायैर्विवुधैध्रुवम्
[7]ख प्रति म

इत्याक्षेपैर्निषिद्धा[1] सा जगौ नाथ कदा तव ।
दर्शनं वद मे सत्यं भो स्वामिन्! प्राणरक्षकम् ।।23।।

वर्षैर्द्वादशभिः सत्यं संयोगो मे त्वया समम् ।
तेनोक्तमिति साकर्ण्य[2] सञ्जगाद प्रभो! शृणु ।।24।।

तुच्छ बुध्याऽपि ते किञ्चिद्वचो वक्ष्ये विचक्षण! ।
श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मो विस्मार्य न कदाचनः ।।25।।

चिन्तनं सिद्धचक्रस्य कर्त्तव्यञ्च त्वयानिशम् ।
सारपञ्चनमस्कारान्स्वामिन्स्वर्गापवर्गदान् ।।26।।

नित्यं चिन्तयतः पुन्सो भवन्ति सुखकोटयः[3]।
पच्चैते गुरुवस्तस्मात् त्वया ध्येया निरन्तरम् ।।27।।

स्मर्तव्या जननी नित्यं दासिका चाहकं सदा ।
चतुर्विधं महादानं पूजनञ्च जिनेशिनाम् ।।28।।

कर्तव्यं भो! सदा नाथ! रक्षणं च निजात्मनः ।
त्वं सर्वं सर्वदा दक्षो जानास्येव हिताहितम्[4]।।29।।

यत्ते निगद्यते नाथ! तत्सत्यं शृणु त्वादरात्[5]।
लोके कल्पतरोर्व्यक्तं क्रियते तोरणार्पणम् ।।30।।

इति मुक्तो यदा भर्ता निर्गतो मन्दिरात्तदा ।
वस्त्रप्रान्ते धृतो गाढं रुदन्त्या कान्तया तया ।।31।।

अमङ्गलमिदं भद्रे! मुञ्च मां गमनक्षणे ।
तेनोक्तं सा जगादैवं शृणु त्वं प्राणवल्लभ! ।।32।।

प्राणान् मुञ्चामि किं पूर्वं किं वा वस्त्रं वदात्र मे ।
आक्षिप्य वसनं यासि यदा त्वं नासि सद्भटः ।।33।।

त्वं चेन्मच्चेतसो यासि तदा मन्ये भटोत्तमम् ।
तदाकर्ण्य प्रियालापं स प्रोवाच[6]शृणु[7] प्रिये! ।।34।।

---

[1]ग प्रति र्निषिद्धाः
[2]ख प्रति माकर्ण्य
[3]ख प्रति सुषकोटयः
[4]ग प्रति 'हि' शब्द अतिरिक्त
[5]ग प्रति श्रुणुतादरात्
[6]ग प्रति वचः
[7]ख प्रति 'श्रुणु' शब्द लोप

द्विषट्सम्वत्सरः प्रान्ते यदा नायामि निश्चितम् ।
आज्ञा श्रीसिद्धचक्रस्य निगद्येति विनिर्गतः ।।35।।

नत्वा स्वमातरं प्राह भो! मातस्ते[1] प्रसादतः।
गत्वा देशान्तरं शीघ्रमानयिष्यामि सद्धनम् ।।36।।

आदेशं देहि मे शीघ्रं गमनार्थं महामते! ।
पूजा श्रीजिनसिद्धानां कर्तव्याः[2] च विशेषतः ।।37।।

रक्षा[3] वध्वाश्च[4] ते मातः धर्मकर्मविदाम्बरे!।
धर्मध्यानेन दानेन स्थातव्यं चात्र मन्दिरे ।।38।।

पुत्रवाक्यं समाकर्ण्य सा सती कमलावती ।
मत्वा तन्निश्चियं चित्ते गमने चतुराशया ।।39।।

सञ्जगाद सुतं पुत्र! शृणु त्वं गुणमन्दिर! ।
सर्वथा चेत्त्वया भद्र! गन्तव्यं साम्प्रतं सुधीः ।।40।।

त्वं धर्मज्ञोऽसि शूरोऽसि[5] भक्तोऽसि जिनशासने ।
किं ते वाच्यं तथाप्युच्चैर्मातुः स्नेहो वदत्ययम् ।।41।।

सर्वदा सर्वयत्नेन सर्वकार्येषु सिद्धिदाः ।
समाराध्यास्त्वया चित्ते श्रीपञ्चपरमेष्ठिनः[6] ।।42।।

अहो पुत्र! सदा कार्यं सर्वत्र जिनदर्शनम् ।
पापसन्तापसन्दोहहुताशनघनाघनम् ।।43।।

तथा पुत्र! विधेयो हि स्वयत्नश्च विशेषतः ।
जले स्थले वनेऽरण्ये पुरे राजकुलेषु च ।।44।।

विश्वासो नैव कर्त्तव्यश्चार्वाकादिषु धीधनैः ।
द्यूतकारेषु दुष्टेषु क्रूरेषु पशु जन्तुषु ।।45।।

---

[1]क प्रति मातास्ते
[2]कखग प्रति कर्तव्या
[3]ग प्रति रक्षी
[4]कखग प्रति बध्वाश्च
[5]ग प्रति 'शूरोऽसि' इति शब्दाभाव
[6]क प्रति पञ्च श्रीपरमेष्टिनः

इत्यादिकं भणित्वा च माता साश्रु विलोचना ।
तं समालिङ्ग्य गन्धाद्यैर्विधाय तिलकं शुभम् ।।46।।

दध्यक्षतादिकं[1] क्षिप्त्वा[2] मस्तके शुभदर्शनम् ।
भूयात्ते दर्शनं शीघ्रं समुवाच वचो हितम् ।।47।।

एवं विसर्जितो मात्रा सोऽपि नत्वा पुनश्चताम् ।
नमः सिद्धेभ्यः इत्युच्चैर्भणित्वा निर्ययौ गृहात् ।।48।।

स श्रीपालस्तदा मार्गे संव्रजन् पुण्यसम्बलः ।
नाना पुराकरग्रामान्वनदुर्गादिकान् क्रमात् ।।49।।

स्मरन् पञ्चनमस्कारान् संसाराम्भोधि पारदान् ।
भृगुकच्छपुरं प्राप दिनैः कैश्चित्पराक्रमी ।।50।।

तत्राऽस्ति धवलो श्रेष्ठी[3] भूरिवित्तसमन्वितः ।
शतानिपञ्च यस्योच्चैर्यानपात्राणि सन्ति च ।।51।।

तदा तस्य च ते पोताश्चलिताः सुभटैरपि ।
सागरेण सरन्तिस्म विपुण्यं वा मनोरथाः ।।52।।

स श्रेष्ठी धवलाख्यस्तु व्याकुलो विस्मयान्वितः ।
नैमित्तिकं प्रति प्राह किमेतदिति भो सुधीः! ।।53।।

नैमित्तिकेन तेनोक्तं द्वात्रिंशल्लक्षणो नरः ।
करिष्यति करस्पर्शं व्रजिष्यन्ति तदाप्यमी ।।54।।

तदाकर्ण्य च स श्रेष्ठी तं विलोकयितुं नरान् ।
प्रेषयामास सर्वत्र सादरं कार्यसम्भ्रमी ।।55।।

पुण्यतस्ते तदा वीक्ष्य श्रीपालं स्वगुणोज्ज्वलम्।
पुरप्रवेशमायातं पश्यन्तं पुरजां श्रियम् ।।56।।

मत्वा तं तादृशं भव्यं कोटीभटशिरोमणिम् ।
निधानमिव सन्तुष्टाः सम्प्रणम्य पुनः पुनः ।।57।।

---

[1]क प्रति दर्भाक्षतादिकं
[2]ग प्रति छिध्वा
[3]कखग प्रति श्रेष्टी

कृत्वा महाग्रहं शीघ्रं तमानिन्ये[1] तदन्तिकम् ।
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतं संविलोक्य च सुन्दरम् ।।58।।

ताम्बूलासनसद्वस्त्रैः श्रेष्ठीसन्मान्य सञ्जगौ ।
अहो! त्वं दृश्यसे कोऽपि महानत्र महीतले ।।59।।

पोतान् समुद्रतीरस्थांश्चालय त्वं सुधीर्मम ।
चालयामि भणित्वेति श्रीपालः सुमहोत्सवैः ।।60।।

शुभे दिने शुभे लग्ने समभ्यर्च्य जिनेश्वरान् ।
स्मृत्वा पञ्चनमस्कारान् सर्वसिद्धिविधायकान् ।।61।।

सिद्धेभ्योऽपि पुनर्नत्वा यावत् स्पृशति पाणिना ।
पोतान् हुंकारनादेन महासुभटसत्तमः ।।62।।

तदा तन्नादतः शीघ्रं पोतस्थाः क्षुद्रदेवताः ।
नष्टाः श्रीपालपुण्येन सुपुण्येनेव चेतयः ।।63।।

तदा[2] तत्स्पर्शमात्रेण पोतास्ते जलधौ जवात् ।
प्रचेलुः परमानन्दं कुर्वन्तः सज्जना यथा ।।64।।

अहो पुण्यस्य माहात्म्यं महतां केन वर्ण्यते ।
यत्करस्पर्शमात्रेण दुःसाध्यमपि सिद्धयति ।।65।।

तरन्तो जलधौ पोता ध्वजव्रातैश्च रेजिरे ।
श्रीपालस्य यशो लक्ष्मीर्नन्दनाः सधना यथा ।।66।।

तत्प्रभावं समालोक्य श्रेष्ठी हृष्टो जगाद तम् ।
त्वं भो वीर! मया ज्ञातो लक्षणैः पौरुषेण च ।।67।।

सत्यं त्वं क्षत्रियोत्पन्नो महाभटशिरोमणिः ।
सर्वकार्यसहस्रेषु[3] शूरो वा हनुमान् महान् ।।68।।

त्वं मे पुत्रसमो धीमान्! मयामागच्छ[4] साम्प्रतम् ।
यत्तुभ्यं रोचते वित्तं तत्ते दास्यामि निश्चितम् ।।69।।

---

[1]कखग प्रति तमानिन्यः
[2]कग प्रति तथा
[3]कख प्रति सहश्रेषु
[4]ख प्रति मया मासह मागच्छ, ग प्रति सया मा गच्छ

अस्त्वेवं प्रतिपद्योच्चैः श्रेष्ठिवाक्यं भटोत्तमः ।
सार्धं तेन तमारुह्य श्रीपालश्चलितो मुदा ।।70।।

नाना वस्तुसहस्राणि समादाय प्रहर्षतः ।
अनेकैर्वणिजां पुत्रैरनेकैर्भटसत्तमैः ।।71।।

प्रोतुङ्गं कुप्य[1]वस्त्राद्यैर्महारक्षकनायकैः।
शस्त्रवादित्रसंघातैश्चलितौ सुखतश्च तौ ।।72।।

गच्छन्तस्ते प्रपश्यन्ति दिशि केचिच्च तारकम्[2]।
केचिज्जलप्रमाणञ्च ब्रुवन्तिस्म भटोत्तमाः ।।73।।

केचिन्महद्धनं धीरा रक्षन्तिस्म सुयत्नतः ।
केचिद्धर्मकथां भव्याः कुर्वन्तिस्म स्वलीलया ।।74।।

चलानि यान[3]पात्राणि रेजिरे सागरे तदा ।
नक्षत्राणि यथा व्योम्नि निर्मले विपुले तराम् ।।75।।

महाकल्लोलसध्वस्तै[4]र्महाध्वनिसमन्वितैः ।
स रेजे सागरस्तत्र महत्वं वा ब्रुवन्निजम्[5]।।76।।

गृह्णन्तु साररत्नानि यूयं वैदेशिका मम ।
महादातेव सन्दृष्टः सिन्धुस्तैस्संवदन्ति वा[6] ।।77।।

एवं ते सागरे सर्वे यावद्गच्छन्ति लीलया ।
तावद्बर्बरराजस्य वीक्ष्य तान्[7] क्रूरतस्कराः ।।78।।

प्रापुस्ते शस्त्रसंघातैर्युद्धं कृत्वा च दारुणम् ।
बद्ध्वा[8] तं श्रेष्ठिनं सार्धं भटैर्दशसहस्त्रकैः[9]।।79।।

---

[1]क प्रति कप, ख प्रति कूप
[2]ग प्रति तारकाम्
[3]कखग प्रति यानि
[4]कख प्रति सद्वस्तै
[5]ख प्रति द्रुवन्निजम्, 'इवः' शब्द अतिरिक्त
[6]ख प्रति वदन्निव
[7]कख प्रति वीक्ष्य ताः
[8]ख प्रति बद्धा
[9]ख प्रति भटैर्दशसहश्रकैः

शीघ्रं ते धनमादाय यावद्गच्छन्ति दुर्मदाः ।
श्रेष्ठी प्राह तदा कुत्र श्रीपालः सुभटोत्तमः ।।80।।

श्रुत्वा जनैश्च तां वार्तां श्रीपालः सिंहविक्रमः ।
महाधनुर्धरो वेगात्समुत्थाय प्रकोपतः ।।81।।

सिंहनादं विधायोच्चैर्गत्वा तत्पृष्ठतो महान् ।
कृत्वा युद्धं तदा रौद्रं जित्वा तान् बर्बरान् द्रुतम् ।।82।।

अमोचयन्निजं तत्र श्रेष्ठिनं तंश्च शक्तितः ।
सार्धं तैश्चर्भटैः सर्वं पश्चादादाय तद्धनम् ।।83।।

यशः सारं स सम्प्रापसुधीर्मेघेश्वरो[1] यथा ।
सत्यं स्वपूर्वपुण्येन किं किं न स्याच्च भूतले ।।84।।

एकेन तेन ते[2] सर्वे निर्जितास्तस्कराः खराः[3]।
सत्यं भानुः करोत्युच्चैरेकाकी तिमिरक्षयम् ।।85।।

श्रीपालोऽपि दयालुत्वात् धृत्वा चौरांश्च तान् पुनः ।
भोजनाद्यैः सुसम्मान्य निःशल्यान् सञ्चकार च ।।86।।

तदा बर्बरराजोऽपि लज्जितः तस्य भक्तितः ।
अहो दया समुद्रोऽयं श्रीपालो जिनधर्मभाक् ।।87।।

दुष्टानामपि चौराणामस्माकं चापि शर्मकृत् ।
अयं कोऽपि महानुच्चैर्मेरोरपि महीतले ।।88।।

उक्तञ्च[4]
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः[5] काञ्चनं कान्तियुक्तम्[6]।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुदञ्चेक्षुदण्डम् ।।
घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारूगन्धम् ।
प्राणत्यागे प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ।।89।।

---

[1]कख प्रति मेंघेश्वरे
[2]ग प्रति 'ते' शब्दाभाव
[3]ग प्रति स्वराः
[4]खग प्रति 'उक्तञ्च' नास्ति
[5]ग प्रति पुनंश्चद
[6]ग प्रति कान्तिज्युक्तम्

एवं चित्ते विचार्याशु श्रीपालं सञ्जगाद सः ।
अस्मद्देशं दयां कृत्वा समागच्छ भटोत्तमः ।।90।।

अस्माकं प्राणदाता त्वं कुर्मो भक्तिं वयं तव ।
यतः प्रत्युपकारेण कृतकृत्यो भवाम्यहम् ।।91।।

तदाकर्ण्य च स श्रेष्ठी श्रीपालं प्रत्यभाषत ।
तत्र गन्तुं न ते युक्तं कार्यमेतद्विहाय च[1] ।।92।।

ततो बर्बरराजोऽपि सारवस्तुशतैर्भृतान्[2] ।
श्रीपालाय ददौ प्रीत्या सप्तपोतान्समुन्नतान् ।।93।।

तथा ते बर्बराः प्रीताः श्रेष्ठी चापि परस्परम् ।
साररत्नानि[3] वस्तूनि गृहीत्वा स्वं पदं ययुः ।।94।।

ततस्ते श्रेष्ठिनः पोताः समुल्लङ्घ्य च सागरम् ।
रत्नद्वीपं सुखं प्रापुर्मुनयो वा जगत्तटम्[4] ।।95।।

महाभवनसंयुक्तं साररत्नादिभिर्भृतम् ।
तं द्वीपं ते समालोक्य सन्निधिं वा ययुर्मुदम् ।।96।।

पोतेभ्यस्ते[5] समुत्तीर्य भोजनादि विधाय च ।
स्वस्य व्यापारमाकर्तुं सलग्नाः श्रेष्ठिमुख्यकाः[6] ।।97।।

श्रीपालस्तु तदा तस्मिन्द्वीपे दृष्ट्वा जिनालयम् ।
सहस्र[7]कूटसंयुक्तं त्रैलोक्यतिलकाह्वयम् ।।98।।

सौवर्णं पञ्चधारत्नकान्त्यारञ्जितदिग्मुखम् ।
जिनेन्द्रप्रतिमोपेतं सुरासुरनमस्कृतम् ।।99।।

सहस्रशिखराबद्धध्वजव्रातैर्मरुद्धतैः ।
भव्यानां दर्शयन्तं वा मार्गं स्वर्गापवर्गयोः ।।100।।

---

[1]ग प्रति द्विहा च
[2]ग प्रति बर्बरराज्योपि साषस्तुशतैर्भृतान्
[3]खग प्रति साररत्नादि
[4]ग प्रति यगत्तटं
[5]ग प्रति पोतेभ्योस्ते
[6] कखग प्रति श्रेष्टिमुख्यकाः
[7]ग प्रति सहश्र

मेरो शृङ्गमिवोत्तुङ्गं गणयन्तं नभोऽङ्गणम् ।
महिम्ना परमानन्दं कुर्वन्तं भव्यदेहिनाम् ।।101।।

महाघण्टानिनादैर्वा तर्जयन्तं[1] घनाघनम् ।
कृष्णागुरूलसद्धूपैः[2] सुगन्धीकृतभूतलम् ।।102।।

दर्शनेन जगत्पापतापसन्दोह[3]नाशनम् ।
अनेकरचनोपेतं भव्यचेतोऽनुरञ्जनम् ।।103।।

तस्य द्वारञ्च संवीक्ष्य दत्तवज्रकपाटकम् ।
तत्रस्थ द्वारपालञ्च समपृच्छत्[4] सविस्मयः ।।104।।

द्वारपालक! ब्रूहि त्वं केनेदमररद्वयम् ।
दत्तमुच्चैः स च प्राह शृणु त्वं भो विचक्षण! ।।105।।

एतत् कपाटयुग्मञ्च देवैरपि न शक्यते ।
समुद्घाटयितुं तत्र कः समर्थः परो नरः ।।106।।

ततः सोऽपि करोतिस्म हस्तेन स्पर्शनं यदा ।
तदा तत्पुण्यपाकेन[5] तत्कपाटमुरुद्वयम्[6] ।।107।।

जातमुद्घाटितं शीघ्रं परमानन्ददायकम् ।
यथा[7] नेत्रद्वयं रम्यमौषधेन महात्मनः[8] ।।108।।

निधानं वा समासाद्य तदा सन्तुष्टमानसः[9]।
जय कोलाहलं कुर्वन् प्रविष्टो जिनमन्दिरम् ।।109।।

तत्र श्रीमज्जिनेद्राणां[10] प्रतिमाः[11] पापनाशनाः ।
प्रोत्तुङ्गा रत्ननिर्माणाः पश्यतिस्म जगद्धिताः ।।110।।

---

[1]ग प्रति तार्यन्त
[2]कखग प्रति कृष्ला
[3]ग प्रति संदेह
[4]कखग प्रति समपृछत्
[5]ग प्रति तत्पुंन्यपाकेन
[6]ग प्रति कपाटद्वयं स्वयम्
[7]ग प्रति अथा
[8]ग प्रति महात्मन
[9]ग प्रति सन्तुष्टमानसम्
[10]ग प्रति श्री जिनेद्राणां
[11]ख प्रति प्रतिमा

कृत्वा महाभिषेकञ्च तासां सम्पद्विधायकम् ।
पञ्चामृतैर्जगत्सारैः प्रचुरैः परमादरात् ।।111।।

पुनस्तां पूजयामास सुधीर्देवेन्द्रपूजिताः ।
कर्पूरवासितस्वच्छतोयधाराभिरुत्तमाः ।।112।।

चन्दनागुरुकाश्मीरसदृशैः सर्वशान्तये ।
विशुद्धाक्षतसत्पुञ्जैः पुण्यपुञ्जैरिवामलैः[1] ।।113।।

जातीचम्पकपुन्नागपद्माद्यैः कुसुमोत्करैः ।
पूजाञ्चकार पूतात्मा भव्यचेतोऽनुरञ्जनैः ।।114।।

नैवेद्यैर्बहुभिर्भेदैर्दुःखदारिद्रयहारिभिः ।
रत्नकर्पूरदीपोघैः दीपिताखिलदिग्मुखैः ।।115।।

कृष्णागुरुसमुद्भूतैर्धूपैः सौभाग्यदायकैः ।
नालिकेराम्रजम्बीरैः फलैर्मुक्तिफलप्रदैः ।।116।।

अर्घादिभिः समभ्यर्च्य वस्तुसारैः सुखाकरैः ।
सञ्चकार स्तुतिं चेति शर्मसन्दोहदायिनीम् ।।117।।

जय त्वं जिनसर्वज्ञ! वीतरागजगद्धितः ।
जय जन्मजरातङ्कपङ्कप्रक्षालनं क्षमः ।।118।।

जय देव! जगद्वन्द्यपादपद्मद्वयप्रभो! ।
जय निःशङ्कनिर्द्वन्द्वनिर्मदप्रमदप्रद! ।।119।।

जय श्री जिनसद्भानो! लोकालोकप्रकाशकः।
जय श्री जिनचन्द्र! त्वं शान्तिकान्तिप्रदायकः।।120।।

जय त्वं मुक्तसङ्गोऽपि सर्वसम्पद्विधायक! ।
जय तेजोनिधे! देव! दर्शिताखिलभूतल![2] ।।121।।

जय संसारवाराशौ दत्तहस्तावलम्बनः ।
त्वमेव भव्यजीवानां दुःखदावघनाघनः ।।122।।

त्वमेव परमानन्दस्त्वमेव गुणसागरः ।
त्वमेव करुणासिन्धुर्बन्धुस्त्वं भव्यदेहिनाम् ।।123।।

---

[1]कख प्रति रिवोमलैः
[2]ग प्रति भूतरलः

अहो स्वामिन्! जड़ो लोकस्तावद्दुःखी भवार्णवे ।
यावत्त्वं भक्तिभारेण वीक्षितो न सुखाकरः ।।124।।

आसंसारमतो देव! पूतं ते चरणद्वयम् ।
अनन्यशरणीभूतं भूयान्मे शरणं प्रभो! ।।125।।

इत्यादिकं महास्तोत्रं पवित्रं शर्मकारणम् ।
कृत्वा जयादिकं नत्वा निर्ययौ[1] जिनमन्दिरात् ।।126।।

तावत्तत्र समागत्य विद्याधरनरेश्वरः ।
कश्चिज्जगाद तं प्रीत्या श्रीपालं परमोदयम् ।।127।।

श्रृणु त्वं भो महाभाग! रूपनिर्जितमन्मथ! ।
अहं विद्याधरो राजा रत्नद्वीपेऽत्र शर्मदे ।।128।।

राज्यं करोमि मत्पत्नी[2] मेघमाला गुणोज्ज्वला[3]।
पुत्रौ चित्रविचित्राख्यौ समुत्पन्नौ मनः प्रियौ ।।129।।

पुत्री मदनमञ्जूषा सर्वलक्षणसंयुता ।
रूपलावण्यसौभाग्यशीलरत्नाकरक्षितिः ।।130।।

एकदाहं महाप्रीत्या ज्ञानसागरयोगिनम् ।
सम्प्रणम्य कृतः प्रश्नो भो स्वामिन्! मे सुतावरः ।।131।।

को भावी त्वं कृपां कृत्वा सुधीर्मे[4] वक्तुमर्हसि ।
स च प्राह मुनिः स्वामी ज्ञानसागरसञ्ज्ञकः ।।132।।

अस्मिन्द्वीपे जिनेन्द्राणां सहस्रशिखरान्विते ।
चैत्यालये महावज्रकपाटयुगलं दृढम् ।।133।।

उद्घाटयिष्यति व्यक्तं महाकोटिभटः पुमान् ।
यः स भर्त्ता सुतायास्ते भविष्यति न संशयः ।।134।।

अद्य प्रकृष्टपुण्येन स त्वं चात्र समागतः ।
श्रुत्वाहं[5] सेवकादत्र त्वां द्रष्टुं च सुधीरितः ।।135।।

---

[1]ग प्रति निर्यमौ
[2]क प्रति सत्यस्त्री, ख प्रति सत्पत्नी स्त्री
[3]कखग प्रति गुणोज्वला
[4]कख प्रति सुधर्म्मे
[5]क प्रति श्रृत्वाहं

अतो मन्दिरमागत्य मदीयं पुण्यपावनम् ।
परिणीय सुतां मे त्वं सत्यं कुरु मुनेर्वचः ।।136।।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विनयेन समन्वितम् ।
श्रीपालस्तं जगादोच्चैरेवमस्तु तदा मुदा ।।137।।
ततो विद्याधरो राजा सन्तुष्टो मानसे तराम् ।
श्रीपालं गृहमानीय गुणरत्नविभूषितम् ।।138।।

शुभे लग्ने दिने रम्ये महोत्सवशतैरपि ।
विवाहविधिना तस्मै श्रीपालाय सुतां ददौ ।।139।।

सतीं मदनमञ्जूषां दिव्यभूषां गुणोज्ज्वलाम् ।
कोमलां कल्पवल्लीं वा मनोनयनवल्लभाम् ।।140।।

नानारत्नसुवर्णादिमणिमुक्ताफलोत्करम् ।
पट्टकूलानि चित्राणि सुवस्त्राणि[1] पुनर्ददौ ।।141।।

दासीदासगजाश्वादिसमूहं गुणशालिने ।
चन्दनागरूकर्पूरं सारवस्तुशतानि च ।।142।।

तथा[2] सन्तुष्टचित्तः सन् सुविद्यां बन्धमोचिनीम् ।
परशस्त्रहरां[3] विद्यां ददातिस्म[4] जगद्धिताम् ।।143।।

सत्यं पुण्यवतां पुंसां जिनधर्मप्रसादतः।
सम्भवन्ति सदा सर्वसम्पदाः शर्मदा मुदा ।।144।।

श्रीपालोऽपि स्वपुण्येन समादाय स्वकामिनीम्[5]।
महाविभूतिसंयुक्तः श्रेष्ठिनः पार्श्वमाययौ[6]।।145।।

एकदा तं प्रियं प्राह मञ्जूषामदनादिका ।
कति प्रमाणास्ते सन्ति कामिन्यो गुणमण्डिताः ।।146।।

अस्ति[7] ते जननी कुत्र सती सद्गुणशालिनी ।
वद त्वं मे प्रभो! सर्वं वृत्तं ते शर्मदायकम् ।।147।।

---

[1]क प्रति विचित्राणि सवस्त्रा
[2]क प्रति तथा
[3]क प्रति ददतिस्म
[4]ख प्रति स्त्रकामिनी
[5]ग प्रति पार्श्वमायधौ
[6]कख प्रति अस्तु
[7]ग प्रति सोऽपिः

उवाच कामिनीं सोऽपि श्रीपालः शृणु सुन्दरि![1]।
अवन्तिविषये पुर्यामुज्जयिन्यां[2] गुणोज्ज्वलाम्[3] ।।148।।

अस्ति मे जननी पूता स्वनाम्ना कमलावती ।
भामिनी राजपुत्री च सती मदनसुन्दरी ।।149।।

अङ्गरक्षकशूराश्च[4] सप्तोच्चैस्ते शतानि मे ।
तथाङ्गविषये चम्पापुर्यां चापि प्रवर्तते ।।150।।

वीरादिदमनो नाम पितृव्यो[5] भूपतिस्तथा ।
जगौ वृत्तान्तकं सर्वं स्वकीयं कामिनीं प्रति ।।151।।

सापि भर्तुः समाकर्ण्य सर्वसम्बन्धमुत्तमम् ।
सन्तोषं कमपि प्राप सत्यं भर्ता गुणाकरः ।।152।।

इति विशदविभूत्या सारकन्यादिरत्नम्[6]।
परमगुणसमुद्रः श्र्यादिपालो नरेन्द्रः ।।
प्रचुरगुणमुदारं प्राप्तवान् शर्मसारम् ।
स जयतु जिनदेवो यस्य धर्म[7]प्रसादात् ।।53।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयं प्राप्ते श्रीपालमहाराजचरिते[8] भट्टारकश्रीमल्लिभूषण– शिष्याचार्य[9] श्रीसिंहनन्दिब्रह्मनेमिदत्तविरचिते[10] श्रीपालमदनमञ्जूषाविवाहव्यावर्णनो नाम चतुर्थोऽधिकारः ।।4।।

---

[1]कख प्रति सुन्दरि, ग प्रति सुन्दरी
[2]कख प्रति पूर्यामुज्जयिन्यां
[3]ग प्रति गुणोज्ज्वले
[4]ग प्रति शूरासश्च
[5]ग प्रति पित्रिव्यो
[6]ग प्रति सा कन्यादिरत्नम्
[7]ग प्रति 'प्रर्म' इति शब्द अतिरिक्त
[8]कख प्रति चरित्रे
[9]ग प्रति शिख्याचार्य
[10]क प्रति विरचते

पञ्चमोऽधिकारः

अथ श्रेष्ठी विधायोच्चैर्व्यापारं तत्र लीलया ।
रत्नदीपे सुरत्नाद्यैर्वस्तुसारसमुच्चकैः ।।1।।

यानपात्राणि सम्भृत्वा निधानानीव वेगतः।
स्वदेशं गन्तुकामश्च सञ्चचाल[1] परिच्छदैः ।।2।।

पोतस्थः सागरे गच्छन् दृष्ट्वा श्रीपालकामिनीम्।
रूपसौभाग्यसम्पन्नां तिरस्कृतसुराङ्गनाम् ।।3।।

पापी कामातुरश्चित्ते चिन्तयामास दुष्टधीः ।
अहो यस्य गृहे चैषा नारी धन्यः स एव हि ।।4।।

यावन्न[2] प्राप्यते भोक्तुं कान्तारत्नमिदं मया ।
तावत्सर्वं वृथा मेऽत्र सम्पदा जन्मजीवितम् ।।5।।

सत्यं दुरात्मनश्चित्ते परवस्तुप्रियं सदा ।
रक्तपा पररक्तस्य पानं रक्ता यथा सदा ।।6।।

ततः कामाग्नि सन्तप्तो गृहीतो वा पिशाचकैः।
एकं वणिग्वरं प्राह शृणु त्वं मित्र! मे वचः ।।7।।

अस्याः संयोगदानेन दीयतां जीवितं[3] मम ।
अन्यथा मित्र! विद्धि त्वं गतं मां यममन्दिरम् ।।8।।

तं निशम्य सुधीः सोऽपि सञ्जगाद वणिग्वरः ।
अहो श्रेष्ठिन्! महापापं परस्त्रीचिन्तनं च यत् ।।9।।

दुर्गतिर्मानभङ्गश्च धननाशो यशोहतिः ।
परस्त्रीसङ्गमेनात्र सम्भवेन्नरकक्षितिः ।।10।।

परस्त्रीरूपरागेण बहवो नष्टबुद्धयः ।
विनाशं प्रापुरत्रोच्चैः पावके वा पतङ्गकाः ।।11।।

---

[1]ग प्रति संचवावाल
[2]ग प्रति यावन्य
[3]क प्रति जीवितां

श्रीमज्जिनागमे प्रोक्तं श्रूयते वचनं सदा ।
रावणः कीचकाद्याश्च तद्दोषेण क्षयं गताः ।।12।।

अन्येषां का कथा येन नीयते वायुना गजः ।
कथं सन्तिष्ठते तत्र वराको मशको ध्रुवम् ।।13।।

श्रीपालः सङ्कटे चाऽपि परोपकृतितत्परः[1]।
वीराग्रणी रणे येन मोचितस्त्वं च बर्बरात् ।।14।।

अस्याऽपि वञ्चने चात्र महापापं प्रजायते ।
पूर्वं त्वया सुतोऽयं मे भणितञ्चेति धीधनः ।।15।।

एषा मदनमञ्जूषा वधूस्तस्मात्तव ध्रुवम् ।
एतां वाञ्छन्[2] सुधीश्चित्ते लोके त्वं किं न लज्जसे।।16।।

एषः कोटिभटश्चापि मत्वा[3] ते दुष्टचेष्टितम् ।
क्षणार्द्धेन महाकोपात् क्षयं ते च करिष्यति ।।17।।

अहो श्रेष्ठिन्! महापापी कामसर्पोऽयमुद्धतः ।
त्वया सन्तोषमन्त्रेण जेतव्यः प्राणनाशकः ।।18।।

इत्येवं बोधितश्चापि स श्रेष्ठी पापकर्मणा ।
न[4] मेने वचनं तस्य भाविदुर्गतिदुःखभाक् ।।19।।

ततोऽन्यवणिजं प्राह पापीकामग्रहाहतः ।
लक्षद्रव्यं प्रदास्यामि श्रीपालं पातयाम्बुधौ ।।20।।

सोऽपि पापी दुराचारी धनलोभेन[5] मायया[6] ।
उत्थितोऽयं[7] महामत्स्यः सर्वनाशं करिष्यति[8] ।।21।।

इति कोलाहलं कृत्वा कारयित्वा परानपि ।
श्रीपालपातनोपायं सञ्चक्रे दुष्टमानसः ।।22।।

---

[1]ग प्रति रोपकृतितत्परः
[2]ग प्रति वांछ
[3]ग प्रति ममत्वा
[4]ग प्रति ने
[5]ख प्रति धनलाभेन
[6]ग प्रति मायमां
[7]ग प्रति उच्छितोऽय
[8]कख प्रति करिष्यसि

श्रीपालस्तु तदाकर्ण्य तं द्रष्टुं[1] सुभटाग्रणी ।
रज्वा स्तम्भोपरि यदा संझटन् जवतो महान् ।।23।।

रज्जुं[2] छित्वा तदा शीघ्रं पातितस्तेन[3] सागरे ।
तादृशः स पवित्रात्मा किं पातकमतः[4] परम् ।।24।।

श्रीपालोऽपि सुधीस्तत्र सागरे सम्पतन्नपि ।
स्मरन् पञ्चनमस्कारान् सिद्धचक्रं पुनः पुनः ।।25।।

निमज्य जलधौ शीघ्रं तत्प्रभावात् समुच्छलन् ।
जलोपरि स्वपुण्येन सम्प्राप्तः पद्मवत्तरत् ।।26।।

अवीक्ष्य पोतकं तत्र वञ्चितोऽपि दुराशयैः।
भुजाभ्यां सन्तरन्नुच्चैः समुद्रमपि दुस्तरम् ।।27।।

स समुद्रं समुत्तीर्य[5] क्रमेण शुभयोगतः ।
अनेकजन्तुसङ्कीर्णं निर्भयः सुभटाग्रणीः ।।28।।

द्विधा रत्नत्रयेणोच्चैः भवाब्धेः पारमुत्तमम् ।
मुनिर्वा स तदा प्राप दलवर्तनपत्तनम् ।।29।।

सत्यं पञ्चनमस्कारप्रभावः केन वर्ण्यते ।
जलं स्थलायते येन वह्निश्चापि जलायते ।।30।।

शत्रुर्मित्रायते येन[6] सर्पो दामायते ध्रुवम् ।
विषं[7] सुधायते[8] शीघ्रं शूलं सिंहासनायते ।।31।।

सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि मन्त्रराजप्रसादतः ।
पापराशिः क्षयं याति भास्करेणेव दुस्तमः ।।32।।

सिंहव्याघ्रादयः क्रूराः पशवः प्राणहारिणः।
तेऽपि सर्वे प्रशाम्यन्ति त्यक्तवैराः स्वभावतः ।।33।।

---

[1]कख प्रति दृष्टुं, ग प्रति दृष्टं
[2]कख प्रति रजुं, ग प्रति रज्जं
[3]ग प्रति पातितस्येन
[4]ग प्रति पातक मृतः
[5]ग प्रति तं समुद्रं समुत्तीर्य्या
[6]ग प्रति ये
[7]ग प्रति विखं
[8]कख प्रति सुधीयते

दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यराज्यसङ्कटरोगजम् ।
भयं भियेव संयाति[1] शान्तिः सम्पद्यते यतः ।।34।।

कुक्कुरोऽपि[2] सुरो जातो यत्प्रभावेन भूतले ।
चौरश्चाऽपि दिवं प्राप प्रसिद्धमिदमद्भुतम् ।।35।।

राक्षसा व्यन्तराः क्रूराः मन्त्रेणैतेन सर्वथा ।
मुक्तवैराश्च ते नित्यं सेवां कुर्वन्ति सादराः ।।36।।

दुर्गतिश्च क्षयं याति मन्त्रराजप्रसादतः ।
पुनर्नायाति रुष्टेव सतां जन्मनि–जन्मनि ।।37।।

सद्गतिः स्वयमायाति सत्पञ्चत्रिंशदक्षरैः ।
आकृष्टेव सदा लोकत्रयलक्ष्मी समन्विता ।।38।।

इन्द्रनागेन्द्रचक्र्यादिपदं शर्मशतप्रदम् ।
प्राप्यते भो महाभव्याः! सन्मन्त्रात्परमेष्ठिनाम् ।।39।।

मन्त्रोऽयं कल्पवृक्षश्च[3] चिन्तामणिरनुत्तरः ।
कामधेनुश्च भव्यानां वाञ्छितार्थं समर्पणे ।।40।।

माता पिता तथा बन्धुर्मित्रं मन्त्रोऽयमुत्तमः ।
ततो भव्यैः समाराध्यः सुखे दुःखे च सर्वदा ।।41।।

किं[4] बहूक्तेन भो भव्याः! मन्त्रेणैतेन निश्चितम् ।
क्रमेण भव्यैः सम्प्राप्य स्वर्गो मोक्षश्च शर्मदः ।।42।।

इति मन्त्रप्रभावेण पत्तनं दलवर्त्तनम् ।
स श्रीपालो यदा प्राप तदा तत्र महीपतिः ।।43।।

विख्यातो धनपालाख्यो वनमाला प्रिया सती ।
तयोः पुत्रास्त्रयो जाता विख्यातास्ते स्वपौरुषैः ।।44।।

मनोहरः सुतो ज्येष्ठः सुकण्ठश्च परोमतः ।
श्रीकण्ठस्तृतीयो ज्ञेयस्त्रयस्ते कुलदीपकाः ।।45।।

---

[1] ग प्रति संजाति
[2] खग प्रति कुर्कुरोऽपि
[3] ग प्रति कल्पवृक्षस्यश्च
[4] ग प्रति 'इति मन्त्र' शब्द अतिरिक्त

पुत्री च गुणमालाख्या सञ्जाता सुगुणान्विता ।
रत्नमालेव पूतात्मा सती सज्जनसंस्तुता ।।46।।

एकदा भूपतिः[1] सोऽपि धनपालस्तु भक्तितः[2]।
पपृच्छ[3] मुनिमानम्य ज्ञानिनं परमादरात् ।।47।।

अहो स्वामिन्! सुताया मे को वरोऽत्र भविष्यति ।
तन्निशम्य जगादोच्चैर्मुनिः शृणु महीपते![4] ।।48।।

यो भुजाभ्यां समुत्तीर्य समुद्रञ्चागमिष्यति ।
स ते सुतापतिर्भावी तत्समाकर्ण्य भूपतिः ।।49।।

तदा प्रभृति सद्भृत्यान् स्वांस्तमन्वेषणे चणान् ।
योजयामास सर्वत्र तदा ते पुण्ययोगतः[5]।।50।।

तत्र वृक्षतले संस्थं श्रीपालं श्रमहानये ।
स्थिरच्छायां[6] तमालोक्य पादपं वातिभक्तितः ।।51।।

सत्यं स एव पूतात्मा समायातः सुपुण्यतः ।
मत्वेति मानसे तुष्टा गत्वा तं भूपतिं जगुः ।।52।।

श्रुत्वा तद्धनपालोऽपि स्वयमागत्य भूपतिः ।
तं विलोक्य निधानं वा सन्तुष्टो लक्षणैर्युतम् ।।53।।

वस्त्राभरणसन्दोहैः सुधीः सम्मान्य सादरम् ।
मन्दिरं निजमानीय सर्वलोचनसुन्दरम् ।।54।।

शुभेलग्ने दिने रम्ये सज्जनैः परिवारितः ।
विवाहविधिना तस्मै ददौ कन्यां गुणोज्ज्वलाम् ।।55।।

तां सतीं गुणमालाख्यां सर्वाभरणभूषिताम् ।
कोमलां कल्पवल्लीव मनोनयनवल्लभाम् ।।56।।

---

[1]क प्रति भूपिताः
[2]ग प्रति भुक्तितः
[3]कख प्रति पप्रछ
[4]ग प्रति महीत्पतेः
[5]ग प्रति ज्योगतः
[6]कख प्रति स्थिरच्छायं, ग प्रति स्थिरत्थायं

महोत्सवशतैः कृत्वा परमानन्दनिर्भरः ।
नानारत्नसुवर्णाद्यैर्वाहनौघैः समन्विताम् ।।57।।

तथा महीभुजा तेन श्रीपालः पुण्यसम्बलः ।
सम्प्राप्य परमानन्दं भाण्डागारी पदे धृतः ।।58।।[1]

सत्यं सतां महापुण्यमाहात्म्यं भुवनादिकम्[2] ।
येन भव्याश्च सर्वत्र लभन्ते सम्पदा शतम्[3] ।।59।।

एवं स्वपुण्यपाकेन[4] स श्रीपालो गुणोज्ज्वलः ।
राजपुत्रीं समासाद्य भुञ्जन् भोगान् सुखं स्थितः।।60।।

कुर्वन् धर्मं जिनेन्द्राणां दानपूजाव्रतादिकम् ।
यावत्तावत्प्रवक्ष्यामि किं जातं तत्र सागरे ।।61।।

समुद्रे पतिते तस्मिन्[5] श्रीपालो गुणशालिनः ।
कैश्चिद्दुर्जनकैः सार्धं स श्रेष्ठी धवलः कुधीः[6]।।62।।

पापी मायान्वितस्तत्र किं जातमिति सम्ब्रुवन्।
मायया रोदनञ्चक्रे शिरो धृत्वा च दुर्जनः ।।63।।

श्रीपालः पतितः सिन्धौ जनकोलाहलं तदा ।
श्रुत्वा मदनमञ्जूषा महादुःखभरा हता ।।64।।

विद्युत्पातेन वल्लीव पपात किल मूर्छिता ।
सखीभिर्जलसेकाद्यैः रुदन्ती चोत्थिता तदा ।।65।।

हा नाथ! क्व गतोसि त्वं मां विहायात्र सागरे ।
चक्रवाकीमिवैकाकी महाभयशतङ्करे ।।66।।

अहो स्वामिन्! क्व[7] तिष्ठामि क्व गच्छामीति साम्प्रतम्।
यूथभ्रष्टेव सारङ्गी विरहानलवेष्टिता ।।67।।

---

[1]कख प्रति में श्लोक अभाव
[2]कखग प्रति भुवनातिगम्
[3]ग प्रति सताम्
[4]क प्रति सुपुण्यपाकेन
[5]ग प्रति तस्मात्
[6]खग प्रति खलः
[7]ग प्रति क

हाऽहं स्वामिन्! क्व पश्यामि त्वां[1] मे प्राणप्रियं प्रभो! ।
सान्धकारात्वभूवं च निशा वा चन्द्रवर्जिता ।।68।।

पद्मिनीव गतच्छाया भास्करेण विना भुवि ।
जाताऽहं त्वां विना नाथ! पादपेन विना लता ।।69।।

हा मया मुनिं सन्तापः कृतो वा पूर्वजन्मनि[2] ।
तेन पापेन मे नाथ! वियोगस्तेऽजनि ध्रुवम् ।।70।।

किं वा कस्याश्च कामिन्याः वियोगो विहितो मया ।
मिथ्याभावेन वा दग्धं काननं वह्निना घनम् ।।71।।

इत्येवं सा प्रकुर्वाणा रोदनं शोकपूरिता ।
अश्रुपातप्रवाहेण स्नाता वा दुःखसागरे ।।72।।

यावत्तावत्स पापिष्ठो धवलो मलिनो हृदि ।
तां सतीं[3] स्ववशे कर्तुं दूतीः संप्राहिणोत् कुधीः ।।73।।

जगुस्तास्तां समभ्येत्य शृणु त्वं सुन्दरी ध्रुवम् ।
श्रीपालः सागरे मग्नः पुनर्नायाति ते पतिः ।।74।।

श्रेष्ठिनं सद्धनैः पूर्णं दातारं भोगिनं सदा ।
रूपसौभाग्यसम्पन्नं भज त्वं राजपुत्रिके! ।।75।।

शरीरं सुन्दरं गाढं रूपं ते भुवनोत्तमम् ।
मा वृथा कुरु[4] भो भद्रे! पुष्पं वा निर्जने वने ।।76।।

तत्समाकर्ण्य सा तासां वचनेनातिपीडिता ।
दग्धा दावानलेनेव संसिक्ता क्षारवारिणा ।।77।।

दूतीः प्रति क्रुधा प्राह रे पापिन्यः खलाः किल ।
शीलवत्यः कथं नार्यः सेवन्ते पुरुषान्तरम् ।।78।।

---

[1]क प्रति त्वम्
[2]कखग प्रति परजन्मनि
[3]ग प्रति सताम्
[4]ग प्रति क्व तु

मेरुर्वा चलति स्थानात् सिन्धुर्मुञ्चति वा स्थितिम्[1]।
अग्निर्वा जलतामेति नैव हानिः सतीव्रते ।।79।।
सर्वेषां मण्डनं शीलं स्त्रीणां चाऽपि विशेषतः ।
शीलहीना वृथा नारी कुर्कुरीव खरी यथा ।।80।।

शीलं रक्षन्ति लोकेऽत्र निर्मलं प्राणवत्सदा ।
ये नरा योषिताश्चाऽपि[2] ते पूज्यन्ते सुरादिभिः ।।81।।

दूतिका लूतिका यूयं पापिन्यः[3]शृणुतादरात् ।
अयं पितृसमः[4] श्रेष्ठी नष्टधीः किं प्रजल्पति ।।82।।

शीलच्छेदेन लोकेऽत्र नासिकाच्छेदनं ध्रुवम् ।
मस्तकच्छेदनं चाऽपि प्राप्नुवन्ति दुराशयाः ।।83।।

ततो घोरे महाश्वभ्रे छेदनं भेदनं घनम् ।
ताडनं तापनं दुःखं सहन्ते पापकर्मणा ।।84।।

स खलो धवलो मूढो विकलो मदनातुरः ।
मद्यपानीव निर्लज्जो वक्तीदं पापदं वचः ।।85।।

पापिन्यो योषिता यूयं नीचा लोके स्वभावतः ।
युष्माकं न कथं लज्जा कुर्कुरीणामिव क्षितौ ।।86।।

इत्युत्तरप्रहारैः ताः संहताः प्रययुः खलाः ।
महामन्त्रप्रभावैर्वा सर्पिण्यो दुष्टचेतसः ।।87।।

ततः श्रेष्ठी स्वयं प्राप्तः पापी तां बोधितुं खलः ।
देहि मे सुरतं भद्रे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।88।।

सा जगौ रे दुराचार पापी! त्वं धर्मवर्जितः ।
मा वादीः पापदं वाक्यं क्षयं यासि क्षणार्द्धतः ।।89।।

सत्यं त्वं नरके घोरे गन्तुकामस्तु जल्पसि ।
याहि याहि कुधीर्वक्त्रं लात्वा कृत्स्नं मदग्रतः ।।90।।

---

[1]कखग प्रति स्थितम्
[2]कखग प्रति योषितश्चाऽपि
[3]ख प्रति यूयं पापन्यः, ग प्रति यूषां पापिन्यः
[4]ग प्रति पित्रिसमः

नाहं शीलं जगत्सारं स्वर्गमोक्षैकसाधनम् ।
स्वप्ने चापि त्यजामीह किं पुनर्बहुजल्पनैः ।।91।।

स्वभर्त्तुर्दर्शनं कृत्वा गृहीत्वा वा जिनोदितम् ।
तपः शर्मकरं[1] नूनं कार्यं पानाशनं मया ।।92।।

इत्यादि नियमं कृत्वा स्मरन्ती[2] परमेष्ठिनः ।
यावदास्ते सती तत्र तावत्तच्छीलपुण्यतः ।।93।।

निजासनप्रकम्पेन जिनशासनदेवताः ।
व्यन्तराश्च समागत्य महाकोपेन दारुणाः ।।94।।

महावातशतैस्तीव्रैर्यानपात्राणि सागरे ।
कल्लोलैश्चालयामासुः शीघ्रं वा प्रलयोद्भवैः ।।95।।

घूमन्ते चक्रिरे गाढ़ं पापं वा तस्य पापिनः ।
मुखे तं ताडयामास देवी पद्मावती क्रुधा ।।96।।

क्षेत्रपालोऽपि लातेन जघान श्रेष्ठिनं खलम् ।
अधोमुखं बबन्धोच्चैः पृष्ठहस्तां सुरः परः ।।97।।

पोतान् प्रज्ज्वालयामास देवी ज्वालादिमालिनी ।
साधूनां सर्वदा सत्यं पीडा प्राणप्रहारिणी ।।98।।

तथा तस्य मुखे क्षिप्त्वा मलं कोपेन ते जगुः ।
पुनः पापिन् करोषीत्थं पापकर्म वद त्वकम् ।।99।।

एवं तैः पीडितो गाढ़ं स पापी भयकम्पितः ।
पतित्वा पादयोस्तस्यास्त्वं मे पूज्या सती ध्रुवम् ।।100।।

सर्वं क्षमस्व मे देवि! यन्मया पापिना कृतम् ।
शीघ्रं तां साधुं सम्बोध्य सुप्रसन्नाञ्चकार च ।।101।।

सत्यं सतां मतिः पूर्वं दुर्धिया पीड़िते सति ।
यथा चान्धो न[3] जानाति ललाटे ताडनं बिना ।।102।।

---

[1]कखग प्रति शर्माकरं
[2]कख प्रति स्मरन्ति
[3]ग प्रति चान्धानो

तदा ते देवदेव्यादयो[1] जिनशासनवत्सलाः ।
सतीं मदनमञ्जूषां शीलसद्रत्नभूषिताम् ।।103।।

दिव्याभरणवस्त्राद्यैः पूजयन्तिस्म सादरम् ।
नत्वा स्तुत्वा स्वभावेन स्वस्थानं प्रययुः सुखम् ।।104।।

साऽपि श्रीमज्जिनाधीशपादपद्मद्वयेरता ।
स्मरन्ती मानसे तस्थौ पोते श्रीपरमेष्ठिनः ।।105।।

अथ श्रेष्ठी दिनैः कैश्चित्समं पोतैर्विधेर्वशात् ।
उल्लंघ्य सागरं प्रापत् पत्तनं दलवर्त्तनम् ।।106।।

रत्नादिकं समादाय प्राभृतं स्वजनैर्वृतः ।
गत्वा राजालयं श्रेष्ठी धृत्वाग्रे तं ननाम च ।।107।।

भूपतिः प्राभृतं वीक्ष्य कृत्वा सम्भाषणं पुनः ।
तस्मै श्रीपालहस्तेन स ताम्बूलमदापयत् ।।108।।

तदा श्रेष्ठी समालोक्य श्रीपालं महिमास्पदम्[2]।
स्वाननं स मषीवर्णं चक्रे कोऽयं विचिन्तयत् ।।109।।

सज्जनं वीक्ष्य दुष्टात्मा दुर्जनो दुर्मनो भवेत् ।
भास्करस्योदये युक्तं घूकः स्यादन्धकः कुधीः ।।110।।

स निर्गत्य सभायाश्च पप्रच्छ[3] द्वारपालकम् ।
कोऽयं श्रीपालकश्चेति ब्रूहि भो द्वाररक्षकः ।।111।।

अहो श्रेष्ठिन्! स च प्राह श्रीपालोऽयं भटोत्तमः।
भुजाभ्यां सागरं चापि समुत्तीर्य स्वपुण्यतः ।।112।।

अत्रागत्य नृपस्यास्य जमाता समजायत ।
कन्यायाः गुणामालायाः प्राणनाथो विचक्षणः ।।113।।

तन्निशम्य भयत्रस्तः श्रेष्ठी चित्ते विचिन्तयत्[4] ।
अहो मया कृतं कार्यं विधिश्चक्रे तथान्यथा ।।114।।

---

[1]कखग प्रति देवदेव्याद्या
[2]ग प्रति नहिमास्पदम्
[3]ग प्रति पपप्रच्छ
[4]ग प्रति व्यचिन्तयन्

जामातायं नृपस्यासीन् महाविभवसंयुतः ।
इदानीं मे न जानेऽहं किमप्यग्रे भविष्यति ।।115।।

इत्यनुध्याय पापात्मा मन्त्रं कृत्वा कुमन्त्रिभिः ।
चाण्डालकान्समाहूय बहुरूप[1]विधायकान् ।।116।।

नृत्यं कृत्वा नृपस्याग्रे यूयं पश्चाद्वदत्विदम्[2]।
अस्माकं त्वं सुतो वत्स! श्रीपाल! क्व गतोऽसि च ।।117।।

सिद्धे कार्ये च युष्मभ्यं दास्येऽहं भूरिशो धनम् ।
श्रीपालप्राणनाशार्थं[3] तानेवं प्राह पापकृत् ।।118।।

तेऽपि नीचा धनार्थं च लम्पटाः कपटाः खलाः ।
राजाग्रे वेगतो गत्वा कृत्वा रागं मनः प्रियम् ।।119।।

नानारूपैश्च नृत्यैश्च वादित्रैश्च मनोहरैः ।
उच्चैः प्रोच्छलनैश्चापि सस्त्रीकाहावभावकैः ।।120।।

गानादिभिस्तदा सर्वे रञ्जयन्तिस्म भूपतिम् ।
सम्प्रदर्श्य कलाः सर्वास्तां सभां च विशेषतः ।।121।।

तदा हृष्टो महीनाथस्तेभ्यो दापितवान् धनम् ।
सुधीः श्रीपालहस्तेन वस्त्रादिकसमन्वितम् ।।122।।

राजाज्ञया यदा सोऽपि श्रीपालो दातुमुद्यतः ।
तावत्ते तं समालोक्य कृत्वा[4] संरोदनं खलाः ।।123।।

तन्मध्ये कोऽपि चाण्डालो जगौ पापीति तं प्रति ।
अरे पुत्र! गतस्त्वं तु[5] क्वैतैर्भूरिदिनैर्मम ।।124।।

काचिन्नीचा गले[6] लग्ना रुदन्ती पुत्र पुत्र च ।
त्वं दृष्टोऽसि मम प्राणवल्लभो बहुभिर्दिनैः ।।125।।

---

[1]क प्रति बहुसूप
[2]ग प्रति पश्चाद्वयंत्विदम्
[3]ग प्रति श्रीपालप्राणनाशार्त्बं
[4]ग प्रति समालोक्यत्नत्वा
[5]क प्रति गतस्त्वं, खग प्रति गतस्त्वंत
[6]ग प्रति काचिन्नीचागमे

काचिन्मे देवरो मूढा काचिन्मे बन्धुरग्रजः ।
जामाता पापिनी काचिद्भागिनेयश्च सापरा ।।126।।

एकश्चाण्डालकः प्राह भो राजन्नयमुत्सुकः ।
कुटुम्बकलहं कृत्वा रुष्टोऽसौसागरेऽपतत् ।।127।।

अद्य भाग्येन संजीवन् दृष्टोऽयं बन्धुभिर्ध्रुवम् ।
अन्यैश्चाण्डालकैश्चाऽपि स्वेच्छया लपितं खलैः[1] ।।128।।

धनपालस्तदा राजा महाविस्मय शोक[2] भाक्[3] ।
भो श्रीपाल! जगादैतत् किं सत्यं मे वद द्रुतम् ।।129।।

तन्निशम्य सुधीस्सोऽपि श्रीपालो निजमानसे ।
कर्मोदयोऽयमित्युच्चैस्तूष्णीभावेन संस्थितः ।।130।।

ततो भ्रान्त्यातिरुष्टेन भूभुजा तेन तत्र सः ।
द्विधा कर्त्तुञ्च वेगेन नीचहस्ते समर्पितः ।।131।।

तैश्चश्मशानकं नीतो मारणार्थं यदा तदा ।
सखीमुखात्समाकर्ण्य भर्तुर्वृत्तं सुदुःसहम् ।।132।।

गत्वा प्रेतवनं तत्र गुणमालातिशोकिनी ।
अहो कान्त! जिनेन्द्रोक्तज्ञातसिद्धान्तसन्मते! ।।133।।

अद्यापि किं त्वया नाथ! कुलं पूतं च गोप्यते ।
जगौ स्वामिन्! कृपां कृत्वा वद व्यक्तं विचक्षणः ।।134।।

नोचेत्प्राणान् विमुञ्चामि पुरस्ते प्राणवल्लभः ।
इत्याग्रहेण सोऽप्याह शृणु त्वं सुन्दरि! ध्रुवम् ।।135।।

श्रेष्ठिनो धवलस्यास्य पोते कान्ताऽस्ति मेऽधुना ।
नाम्ना मदनमञ्जूषा विद्याधरनृपात्मजा ।।136।।

सा मे सर्वं विजानाति कुलं वृत्तादिकं तथा ।
इत्येवं गुणमाला च श्रुत्वा पतिमुखाम्बुजात् ।।137।।

---

[1]क प्रति स्वेच्छयापि नरखलैः, ख प्रति स्वेच्छयापितरखलैः
[2]कख प्रति 'शोक' इति शब्दाभाव
[3]क प्रति 'सुधी' शब्द अतिरिक्त

शिविकां सा समारुह्य गत्वा तत्र द्रुतं सती ।
गदित्वा वृत्तकं भर्तुः कुलं पप्रच्छ तां प्रति ।।138।।

श्रुत्वा मदनमञ्जूषा तद्वृत्तं चाऽह भो शुभे ।
श्रीपालः क्वास्ति मे ब्रूहि गुणमाला तदावदत् ।।139।।

भद्रे! नीचकुलोत्पन्नदोषेणात्र श्मशानके।
मार्यमाणः खलैर्नीचैस्तिष्ठतीति खलात्मजैः[1] ।।140।।

मया[2] कुलं प्रपृष्टेन धीमता तेन चाग्रहात् ।
प्रेषिताऽहं समीपं ते साम्प्रतं कुलजल्पने! ।।141।।

जगौ मदनमञ्जूषा शीघ्रमागच्छ सुन्दरि[3] ।
राजानं दर्शय त्वं मे तदग्रे तत्कुलादिकम् ।।142।।

वक्ष्येऽहं तत्समाकर्ण्य सा नीता गुणमालया ।
तत्र राजावदत्पुत्रि कोऽयं कस्य कुलं किमु ।।143।।

सती मदनमञ्जूषा जगाद शृणु भो प्रभो![4] ।
सर्वं तस्यात्र वृत्तान्तं कथयामि महात्मनः ।।144।।

अङ्गदेशे च चम्पायां सिंहसेनो नरेश्वरः ।
कमलादिवती राज्ञी तयोः पुत्रोऽयमुज्ज्वलः ।।145।।

वाणिज्यार्थं समायातः श्रीपालोऽयं भटोत्तमः ।
रत्नद्वीपे जिनेन्द्राणां त्रैलोक्यतिलकाह्वये ।।146।।

चैत्यालये महावज्रकपाटो[5]द्घाटने प्रभो! ।
प्राप्तमत्सङ्गमो धीरो मद्रूपासक्तचेतसा ।।147।।

पापिना श्रेष्ठिनाऽनेन क्षिप्तो घोरे महार्णवे ।
सुधीः स्वपुण्ययोगेन समुत्तीर्य महार्णवम् ।।148।।

इहागत्य प्रभो नूनं जामाता तेऽभवत्तराम् ।
अत्रागतेन तेनाऽपि धवलेन दुरात्मना ।।149।।

---

[1]ग प्रति खलात्मजे
[2]ग प्रति माया
[3]ग प्रति सुदरि
[4]ग प्रति 'प्रभो' इति शब्दाभाव
[5]ग प्रति महाज्रकपाटो

महाकपटकूटेन मारणार्थं च साम्प्रतम् ।
एतद्विरूपकं देव! सर्वं चक्रे शृणु प्रभो! ।।150।।
जिनसिद्धमहानामवाचालोऽयं सदामलः ।
चाण्डालः कथ्यते केन पापिष्ठेन प्रभो! वद ।।151।।

तदा श्रवणमात्रेण स भूपो धनपालभाक् ।
नष्टसन्देहसन्दोहः[1] शीघ्रमुत्थाय सज्जनैः ।।152।।

सार्धं तत्र समागत्य श्मशाने[2] भूरिभीतिदे ।
श्रीपालस्याग्रतः स्थित्वा प्राञ्जलिः प्राह भो सुधीः! ।।153।।

अहो श्रीपाल! भूपाल! जिनाज्ञापाल! भूतले ।
मया चाज्ञानिना तीव्रं पीडितोऽसि भटोत्तमः ।।154।।

चाण्डालैर्वञ्चितेनोच्चैस्त्वं क्षमां कर्तुमर्हसि ।
यतः सन्तो भवन्त्येव पीडिताश्च हितङ्कराः ।।155।।

श्रीपालोऽपि तदा प्राह शृणु भूप! मदीरितम् ।
अहं कोटीभटो लोके नो शक्ये बाधितुं परैः ।।156।।

किन्तु कर्मोदयं राजन्! विनोदेन विलोकयन् ।
तूष्णीं स्थितो महाभाग! किं पुनर्भूरि जल्पनैः ।।157।।

धनपालोऽवदद्राजा त्वं महान् मन्दरादपि ।
गम्भीरः सागराच्चापि क्षमासारः क्षमागुणैः ।।158।।

शीललीला प्रवाहेण जितः सिन्धोरपि त्वया ।
सत्कुलेन कलङ्की च चन्द्रश्चापि तिरस्कृतः ।।159।।

श्रीमज्जिनेन्द्र[3]चन्द्राणां चरणार्चनकोविदः ।
त्वमेव पात्रदानेन द्वितीयोवाऽदि दानकृत् ।।160।।

परोपकारसद्रत्नरोहणा[4]द्रिस्त्वमेव च ।
चारुसौभाग्यसन्दोहपयः क्षीराब्धिरुत्तमः ।।161।।

---

[1]ग प्रति सन्दोहः इति शब्दाभाव
[2]ग प्रति श्मश्याने
[3]ग प्रति मज्जिनोन्द्र
[4]ग प्रति रोहिणा

कृपां विधाय भो भव्य! समागच्छ पुरं सुधीः ।
मत्कृत्याघ[1]रजोराशिक्षालनाय क्षमाजलैः ।।162।।
इत्यादि मधुरैर्वाक्यैस्तं श्रीपालं नृपस्तदा ।
कारयित्वा क्षमां गाढं विनयेन महोत्सवैः ।।163।।

वस्त्राभरणसन्दोहैः सुधीः सम्मान्य भक्तितः ।
मत्तमातङ्गमारोप्य जयकोलाहलस्वनैः ।।164।।

चलच्चामरसच्छत्रध्वजाद्यैः परिमण्डितम् ।
नाना वादित्रसन्नादैर्दानमानादिभिस्तराम् ।।165।।

समानीय पुरं रम्यं गृहे संस्थाप्य सादरम् ।
पुनः स्त्रीयुग्मसंयुक्तं रत्नाद्यैः सम्पूजयत् ।।166।।

एवं तदा स्वपुण्येन स श्रीपालो भटोत्तमः ।
राजादिभिः समभ्यर्चो यशसा व्याप्तदिग्मुखः ।।167।।

सञ्जातो भो महाभव्याः सुपुण्यात्किन्न जायते ।
तस्माद्भव्यैः सदाकार्यं सुपुण्यं परमादरात् ।।168।।

पुण्यं[2] श्रीमज्जिनेन्द्राणां पादपद्मद्वयार्चनम् ।
पात्रदानं गुणाधानं व्रतं शीलोपवासकम् ।।169।।

तथा तत्र जगत्सारजैनधर्म[3]प्रभावना ।
भव्यानां परमानन्ददायिनी[4] समभूत्तराम् ।।170।।

ततो राजा तमाहूय[5] श्रेष्ठिनं[6] कपटप्रियम् ।
अरे दुष्ट दुराचार! विचारपरिवर्जित! ।।171।।

मारणे किं प्रयासोऽत्र तृणवत्ते दुराशयः ।
खरादिचटनं[7] दुष्टः सहस्वेति[8] समादिसत् ।।172।।

---

[1]ग प्रति मत्कृताघ
[2]ग प्रति पुण्यां
[3]ग प्रति जगत्सारैनधर्म
[4]ग प्रति परमानन्ददायनी
[5]ग प्रति समाकूय
[6]क प्रति श्रेष्टनं
[7]ग प्रति स्वरादिचटनं
[8]ग प्रति सरस्वेति

काहलादिक[1]संयुक्तं वालेयं च समानयत् ।
ते चाण्डालाश्च चाण्डाल्यः क्रुद्यन्तेस्म सबन्धुना[2] ।।173।।

तदा कोलाहलं श्रुत्वा काहलादिकमुत्कटम्।
श्रीपालः स दयालुश्च समागत्य महीपतिम् ।।174।।

जगौ धर्मपिता! मेऽयं हन्यते न महीपते! ।
इत्याग्रहेण[3] तं शीघ्रं श्रेष्ठिनं धवलं खलम् ।।175।।

मोचयित्वा सुधीश्चापि प्रेषयामास तत्पदम् ।
सत्यं सन्तः प्रकुर्वन्ति सर्वेषां सर्वतो हितम् ।।176।।

एते बद्धाः किमर्थं भो! चाण्डालाश्च[4] बराककाः ।
भणित्वेति च तान् सर्वान् मोचयित्वा गृहं गतः ।।177।।

ततो दिने द्वितीये च स श्रीपालो दयान्वितः ।
धवलं श्रेष्ठिनं तत्र तमामन्त्र्य परिच्छदैः ।।178।।

स्वगृहे विनयेनोच्चैर्लग्नो भोजयितुं मुदा ।
स्वयं च व्यजनेनोच्चैश्चकार पवनं द्रुतम् ।।179।।

यावत्तावच्च स श्रेष्ठी धवलः पापकर्मणा ।
संस्फुटं हृदयो मृत्वा पपात नरकं क्षणात् ।।180।।

धिक्कामं धिग्दुराचारं[5] धिक् परस्त्री कुचिन्तनम्[6]।
येन प्राणी विमूढात्मा प्रयात्येवमधोगतिम् ।।181।।

ततो भव्यैः प्रकर्तव्यं परस्त्रीसंगमोज्झनम् ।
येन स्वर्गापवर्गोरु[7] सम्पदा प्राप्यते ध्रुवम् ।।182।।

स श्रीपालस्तदा धीमांस्तद् गदित्वा महीपतिम् ।
स्वकीयं धनमादाय सप्तपोतादिकं शुभम् ।।183।।

---

[1]कख प्रति कोहलादिक
[2]ग प्रति सबन्धनाः
[3]ग प्रति इत्यग्रहेण
[4]ख प्रति भोश्चाण्डालाश्च
[5]ग प्रति धिग्दुचारं
[6]ग प्रति कुचिन्तनाम्
[7]ग प्रति स्वर्गापवगोरु

सर्वाणि यानपात्राणि तदा तस्य तु नीतिवित् ।
प्राहिणोद्भृगुकच्छाख्यं[1] पत्तनं धार्मिकाग्रणीः ।।184।।

स्वयं स्वपुण्यपाकेन तत्र श्रीदलवर्त्तने ।
राज्ञाप्रदत्तदेशादिराज्यं प्राप्य प्रमोदतः ।।185।।

सती मदनमञ्जूषा गुणमाला गुणोज्ज्वला ।
द्वाभ्यां सारप्रियाभ्याञ्च संयुतौ गुणमण्डितः ।।186।।[2]

भुञ्जन्भोगान्मनोऽभीष्टान् विपुण्यजनदुर्लभान् ।
संस्थितः श्री जिनाधीश धर्मकर्मणि तत्परः ।।187।।

कोटीभटो गुणज्ञश्च कृपालुश्च विशेषतः ।
स श्रीपालः सुखं तस्थौ यावत्तावत्कथान्तरम् ।।188।।

नित्यं श्रीजिनसिद्धपूजनपरः सत्पात्रदाने रतो[3] ।
नित्यं शास्त्रविनोदरञ्जितमतिर्दिग्व्याप्तकीर्तिद्युतिः।।
नित्यं सारपरोपकारनिरतः श्रीपालनामा नृपः ।
तत्रोच्चैः प्रमदाद्वयप्रमुदितो भुञ्जन्सुखं संस्थितः ।।189।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयप्राप्ते[4] श्रीपालमहाराजचरिते[5] भट्टारक–श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्यश्रीसिंहनन्दि ब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते[6] ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीपालराजविघ्ननिवारणगुणमालाविवाहव्यावर्णनो नाम पञ्चमोऽधिकारः ।।5।।

[1]ग प्रति प्राहिणोदुभृगुकछाख्यं
[2]ग प्रति श्लोक का अभाव
[3]ख प्रति रतौ
[4]खग प्रति पूजातिशयं प्राप्ते
[5]ग प्रति चरित्रे
[6]ख प्रति मोहिते

षष्ठमोऽधिकारः

अथैकदा सुधीस्तत्र दलवर्तनपत्तने।
स श्रीपालः प्रभुः सौख्यं भुञ्जन् श्रीजिनभक्तिभाक् ।।1।।

तत्रायातान् वणिग्वर्यान् संविलोक्य जगाद तान् ।
कुतः समागता यूयमपूर्वञ्च वदत्त्वहो! ।।2।।

तेऽपि नत्वा जगौ[1] राजन् कुण्डलाख्यपुराद्वयम् ।
समागताः प्रभुस्तत्र मकरध्वजसंज्ञकः ।।3।।

कर्पूरतिलका तस्य राज्ञी जाता गुणान्विता[2]।
तयोर्द्वयोः समुत्पन्नः पुत्रो मदनसुन्दरः ।।4।।

तथा तयोश्च सञ्जातं चित्रलेखादि[3] नामकम् ।
पुत्रीशतं वदत्येवं रूपसौभाग्यमन्दिरम् ।।5।।

नृत्यन्तीनां पुरोऽस्माकं यः कोऽपि पुरुषोत्तमः ।
गीतवादित्रविद्याभिः[4] रञ्जयिष्यति[5] मानसम् ।।6।।

सोऽस्माकं पतिरित्युच्चैर्भावी नान्यः[6] परो ध्रुवम् ।
तदाकर्ण्य वचः सोऽपि श्रीपालो भूपतिर्मुदा ।।7।।

कुण्डलाख्यपुरं गत्वा ताः समालोक्य कन्यकाः ।
रूपसौभाग्यसम्भारसत्सुधारसकूपिकाः ।।8।।

सर्वविज्ञानसम्पन्नः सुधीस्त्रैलोक्यमोहनम् ।
कृत्वा गानादिकं सर्वं मोहयित्वा च तत्मनः ।।9।।

तत्कन्यकाः शतं पूतं[7] परिणीय महोत्सवैः ।
सुखेन संस्थितस्तत्र पुण्यात् किं किं न जायते[8]।।10।।

---

[1]ग प्रति जगू
[2]कखग प्रति गुणान्विताः
[3]ग प्रति चित्रलेषादि
[4]कख प्रति विद्याभा, ग प्रति विद्याभी
[5]क प्रति रंजयंष्यंति, ग प्रति रंजयंष्यति
[6]क ख प्रति नान्य
[7]ग प्रति पूर्व
[8]ख ग प्रति सुपुण्यात् किं न जायते

स राजाऽपि तदा तस्मै सन्तुष्टो मकरध्वजः ।
श्रीपालाय ददौ तत्र नाना रत्नादिसम्पदाम् ।।11।।

गजाश्वरथपादातैः[1] दासीदासादिकं बहु ।
सत्यं सर्वत्र पुण्येन भव्यैः सम्प्राप्यते सुखम् ।।12।।

एवं यावत्सुखं तत्र कुण्डलाख्ये पुरे स्थितः ।
स श्रीपालः प्रभु धीमान् सुखं भुञ्जन् प्रियायुतः[2] ।।13।।

तत्रापि कोऽपि सम्प्राप्तः काञ्चनाख्यपुरोत्तमात् ।
दूतः सम्प्राह[3] भो स्वमिन्! काञ्चनाख्यपुरे प्रभुः ।।14।।

वज्रसेनः प्रिया तस्य नाम्ना काञ्चनमालिका ।
तयोर्जेष्ठः सुतो नाम्ना सुशीलः सज्जनैर्मतः ।।15।।

गन्धर्वाख्यो द्वितीयस्तु यशोऽर्थस्तृतीयोऽभवत् ।
विवेकशीलनामापि चतुर्थः समजायतः ।।16।।

पुत्र्यो[4] विलासवत्याद्याः शतानि नव निर्मलाः ।
ताश्च नैमित्तिकेनोक्तं श्रुत्वा सत्यञ्जगुः प्रभोः ।।17।।

एतासां शतकन्यानां यः स्वामी सम्भविष्यति ।
सोऽस्माकं च पतिः स्वामिं तस्मादागम्यतां[5] द्रुतम् ।।18।।

दूतवाक्यं समाकर्ण्य श्रीपालोऽपि प्रसन्नधीः ।
गत्वा तत्र महाभूत्या पतिस्तासां बभूव च ।।19।।

काञ्चनाख्यपुरे तत्र प्राप्तः कन्यादिसम्पदः ।
कानिचिच्च दिनान्युच्चैः स्थित्वा सोऽपि प्रभुः सुखम् ।।20।।

ततश्चान्तःपुरे नामा[6] श्रीपालो महिमास्पदम् ।
चक्रे प्रयाणकं चाग्रे गन्तुकामस्तदा मुदा ।।21।।

---

[1] ग प्रति पादाति
[2] ग प्रति प्रियायुतं
[3] ख ग प्रति दूतस्तं प्राह
[4] क प्रति पुत्र्य
[5] ग प्रति गत्यतां
[6] क ख ग प्रति णामा

यावत्तावच्चरः कोऽपि तं प्रणम्य जगाद च ।
श्रूयतां भो! महासत्यं[1] मदीयं वचनं शुभम् ।।22।।

कूङ्कणाख्यमहाद्वीपे रत्नराशिसमुज्ज्वले ।
तद्देशाधिपतिः ख्यातः सुधीर्विजयसेनवाक् ।।23।।

भूपतेस्तस्य सञ्जाताः पूर्वपुण्येन निर्मलाः ।
यशोमाला महादेवी प्रमुखाश्चारू–वल्लभाः ।।24।।

सर्वाश्चतुरशीतिस्ताः सद्रूपादिगुणान्विताः ।
लावण्यरससम्पूर्णाः सिन्धोर्वेला यथाखिलाः ।।25।।

हिरण्यगर्भनामादि[2] पुत्रास्तस्य महीपतेः ।
बभूवुर्बहवः शूराः कुलस्य तिलकोपमाः ।।26।।

शतानि षोडशप्रोक्ताः सुताः सारगुणोज्ज्वलाः[3] ।
रूपसौभाग्यसद्रत्नखानयो[4] वा हितङ्कराः ।।27।।

आद्या[5] सौभाग्यगौरी सा पुत्री शृङ्गारगौर्यपि ।
पौलीमी[6] तृतीया पुत्री रणादेवी तथापरा[7] ।।28।।

सोमाख्या पञ्चमी पुत्री लक्ष्मी षष्ठी च पद्मिनी ।
सप्तमी चाष्टमी चन्द्ररेखा[8] चाष्टौ विचक्षणाः ।।29।।

सर्वविज्ञानसम्पन्नाः सर्वशास्त्रपरायणाः ।
सत्कलापद्मिनीश्रेणिप्रकाशे वा रविप्रभाः ।।30।।

तन्मुख्यास्ता[9] जगुश्चैवं योऽस्माकं[10] पूरयिष्यति ।
समस्या कोऽपि सच्छूरः सोऽस्माकं पतिरेव च ।।31।।

---

[1]ग प्रति प्रभो सत्यं
[2]ग प्रति मानादि
[3]क ख ग प्रति सारगुणोज्वलाः
[4]ग प्रति स्वानयो
[5]ग प्रति आद्य
[6]ग प्रति पौलोमी
[7]क ख ग प्रति तथापराः
[8]क ख ग प्रति चन्द्ररेषा
[9]ग प्रति तन्मुखास्ता
[10]ग प्रति योऽस्मा

सर्वासां सारकन्यानां नान्यः कोऽपि प्रियो ध्रुवम् ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः[1] श्रीपालः प्रभुसत्तमः[2]।।32।।

गत्वा तत्र समालोक्य ताः कन्याः सञ्जगौ प्रभुः ।
स्वाभिप्रायमहो! कन्या ब्रूत धन्या[3] यथेप्सितम् ।।33।।

समस्याः पूरयिष्यामि युष्माकं शर्मदायकाः ।
तन्निशम्य क्रमेणोच्चैः प्रोचुस्ताः स्वमनोगतम्[4]।।34।।

तासां मध्ये पूर्वं सौभाग्यगौरी प्राह–
उक्तञ्च – "सिद्धि साहसतो भवेत्"
श्रीपालश्चाह[5]
आत्मनो जायते सत्यं पुण्यात्सञ्जायते धनम् ।
दैवात्सञ्जायते बुद्धिः सिद्धिः साहसतो भवेत् ।।35।।

शृङ्गारगौरी प्राह[6] "पश्यतां सकलं गतम्"
श्रीपालश्चाह[7]
न दत्तं न स्वयं भुक्तं सञ्चितं कृपणैर्धनम्[8] ।
द्यूतचौराग्निभिः नृणांपश्यतां सकलं गतम् ।।36।।

पौलीमी प्राह "स नरः पापपण्डितः"
श्रीपालश्चाह
दयाधर्ममजानानो निर्ग्रन्थानामसेवकः ।
योऽश्रुतोऽर्हत्प्रणीतार्थः[9] स नरः पापपण्डितः ।।37।।

रणादेवी प्राह "स भवेन्नरकेसरी"
श्रीपालश्चाह
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपः शीलादिनिर्मलः ।
नरो वा यदि वा नारी स भवेन्नरकेसरी ।।38।।

---

[1]क ख ग प्रति तस्य
[2]ख प्रति 'इत्याकर्ण्य वचस्तस्या श्रीपालः प्रभुसत्तमः' यह पंक्ति दो बार आई है
[3]ग प्रति ब्रूतन्या
[4]क ग प्रति प्रोचुः स्तास्वमनोगतम्
[5]ग प्रति 'आह' इति शब्दाभाव, ग प्रति में सर्वत्र आह शब्द का अभाव
[6]ग प्रति 'प्राह' इति शब्दाभाव
[7]ग प्रति 'श्रीपालः' यहाँ आह इति शब्दाभाव, ग प्रति में सर्वत्र आह शब्द का अभाव
[8]ग प्रति कृपनैर्धनम्
[9]क ख प्रति योश्रुतार्हत्प्रणीतार्थः, ग प्रति योस्तुताहत्प्रणीतार्थः

सोमाप्राह "सद्धर्मः क्रियते मया"
श्रीपालश्चाह
लक्षणैर्दशभिर्युक्तो दयामूलस्तपो बलः ।
मुक्तिदः केवलिप्रोक्तः सद्धर्मः क्रियते मया ।।39।।[1]

सम्पदो प्राह "ददृशे न मया स कः"
श्रीपालश्चाह
परानिन्दो गुणग्राही करुणारसिकोऽपि यः।
भ्रमतापि जगद्विश्वं ददृशे न मया स कः ।।40।।

पद्मिनी प्राह "तस्य भो जीवितेन किम्"
श्रीपालश्चाह
दानपूजातपःशीलधर्मेषु य–इह क्वचित्।[2]
नानुरागी तथा रागी तस्य भो जीवितेन किम् ।।41।।

चन्द्ररेखा प्राह "तद्वाञ्छा निष्फलैव हि"
श्रीपालश्चाह
वृद्धो रोगी च यो दुर्गस्तथा द्यूतक्रियारतः ।
विवाहयति यः कन्यां तद्वाञ्छा निष्फलैव हि ।।42।।

एवं पुण्याधिकः सोऽपि श्रीपालः स्वगुणोज्ज्वलः ।
पूरयित्वा समस्यास्ताः सर्वविद्याविशारदः[3]।।43।।

तासां मनोऽम्बुजान्युच्चैर्भास्करो वा जगद्धितः ।
सुधीर्विकासयामास स्ववाक्यकिरणोत्करैः ।।44।।

समस्यापूरणात्तत्र सन्तुष्टः स महीपतिः ।
ख्यातो विजयसेनाख्यस्तस्मै सत्पुण्यशालिने[4]।।45।।

कन्याः शतानि[5] ताः सर्वाः षोडशप्रविराजिताः ।
वस्त्राभरणसन्दोहैर्यथा कल्पतरोर्लताः ।।46।।

विवाहविधिना प्रोच्चैर्महोत्सवशतैरपि ।
श्रीपालाय ददौ शीघ्रं नानारत्नादिकं[6] पुनः ।।47।।

---

[1]ग प्रति इति श्लोकाभाव
[2]ग प्रति 'धर्मेषु य–इह क्वचित् नानुरागी तथारागी' यह पंक्ति दो बार आई है
[3]क ख प्रति सर्वविद्याविशारदाः
[4]ग प्रति शालिनो
[5]ग प्रति शत्यनि
[6]ग प्रति नानारत्नादि किम्

गजाश्वरथपादातिं छत्रचामरसध्वजान् ।
ददाति स्म प्रमोदेन सत्यं पुण्यवतां श्रियः ।।48।।

कूङ्कण[1]द्वीपनाथेन रक्षितोऽपि महाग्रहात् ।
तस्मादपि स्वसैन्येन संयुक्तो निर्ययौ महान् ।।49।।

ताभिः स्त्रीभिः समायुक्तः चलतो[2] वा सुरद्रुमः ।
पर्यटल्लीलया नित्यं याचकादींश्च[3] तर्पयन् ।।50।।

पञ्चपण्डितनामनं देशं गत्वा स भूपतिः ।
श्रीपालः पालितानेक मण्डलो महिमान्वितः ।।51।।

तत्र क्षत्रिय[4]भूपानां महोत्सवशतैर्युताम्[5]।
सहस्त्रद्वितीयं[6] कन्याः परिणीय यथा सुखम् ।।52।।

मल्लिवालड[7]महादेशे कन्याः सप्तशतानि च ।
गत्वा कलिङ्गदेशञ्च तथा कन्यासहस्त्रकम्[8]।।53।।

परिणीय पुनः प्राप पत्तनं दलवर्तनम् ।
तत्र श्री धनपालाख्यः स राजा परया मुदा ।।54।।

महासैन्यसमायुक्तं महासम्पद्विराजितम्[9]।
श्रीपालं संविलोक्योच्चैः परमानन्दनिर्झरः ।।55।।

सुधीः सम्मानयामास महोत्सवशतैरपि ।
भार्याः सर्वाश्च सम्प्रापुर्महाप्रीतिं परस्परम् ।।56।।

तत्र स्थित्वा कियत्कालं स श्रीपालो महानृपः ।
सुधीः सर्वप्रियोपेतः सुखं भुञ्जन्मनोहरम् ।।57।।

---

[1]क ख प्रति कुङ्कणी
[2]ग प्रति सलतो
[3]ग प्रति याचकानांश्च
[4]ग प्रति छत्रिय
[5]ग प्रति महोत्सवशतैर्युतं
[6]ख ग प्रति सहस्त्रद्वितयं
[7]ग प्रति मल्लिवाल
[8]क प्रति सहश्रकम्
[9] ग प्रति महासपद्विराजितम्

एकदा स निशाभागे चिन्तयामास मानसे ।
समीपं तत्र सम्प्राप्ते वर्षे वै द्वादाशात्मके[1] ।।58।।
प्रोक्तं[2] मदनसुन्दर्या वचनं सत्यसंयुतम् ।
स्मृत्वा तं भूपतिं प्रोक्तः[3] स्वयानं स्वपुरं[4] प्रति ।।59।।

चतुर्विधमहासैन्यैः प्रियाणाञ्च शतैर्युतः ।
पुरीमुज्जयिनीं गन्तुं स चचाल ध्वजादिभिः ।।60।।

मण्डितश्चक्रवर्तीव नदद्वादित्रसध्वनिः[5]।
प्रावृट्कालघनोवोच्चैः सिञ्चन् वित्तजलैर्जनान्[6]।।61।।

ऊर्जयन्तगिरिं[7] प्रापत् परमानन्दनिर्झरः ।
सर्वसिद्धिप्रदं तुङ्गं सिद्धक्षेत्रमनुत्तरम्[8]।।62।।

मुक्तिक्षेत्रमिव व्यक्तं भव्यानां सौख्यकारणम् ।
लसद्वनस्पतीसारनिर्झराद्यैः[9] समुज्ज्वलम् ।।63।।

सर्वपापापहं[10] सारं मुनीनामिव मानसम् ।
तं विलोक्य सुधीस्तत्र निधानं वा[11] मुदं ययौ ।।64।।

तं समारुह्य पूतात्मा सकान्तः सपरिच्छदः ।
दृष्ट्वा नेमिजिनं तत्र सुरासुरसमर्चितम् ।।65।।

तत्र फाल्गुनमासे[12] च सुधीराष्टाह्निकोत्सवे ।
अष्टौ दिनानि दिव्यानि महोत्सवशतानि च ।।66।।

कृत्वा तत्र जिनाधीशं महास्नपनमुत्तमम् ।
पञ्चामृतप्रवाहैश्च विधाय विधिपूर्वकम् ।।67।।

---

[1]क ख प्रति द्वादाशात्मकैः
[2]क ख प्रति प्रोक्त
[3]कखग प्रति प्रोक्ता
[4]क ख ग प्रति सुरं
[5]क प्रति सध्वनिम्
[6]ग प्रति जनात्
[7]ख प्रति ऊजयन्तगिरिं
[8]ग प्रति सिद्धक्षेत्रमनुत्तमम्
[9]क प्रति निष्भाराद्यैः
[10]ग प्रति सर्वपापहरं
[11]ग प्रति च
[12]क प्रति फाल्गुणमासे

कर्पूरवासितैः स्वच्छतोयैः सच्चन्दनाक्षतैः ।
सुगन्धकुसुमैर्दिव्यैः नैवेद्यैर्दुःखनाशनैः ।।68।।

रत्नकर्पूरसद्दीपैर्धूपैः कालागुरूद्भवैः ।
नालिकेराम्रजम्बीरैः फलैर्मुक्तिफलप्रदम् ।।69।।

श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रस्य पादपद्मद्वयं मुदा ।
सम्पूज्य जगतां पूज्यं सोपवासः प्रियान्वितः ।।70।।

तथा श्री[1]सिद्धचक्रञ्च समाराध्यसुखप्रदम् ।
शास्त्रं गुरुपदाम्भोजद्वयं चापि शुभावहम्[2] ।।71।।

स्तुत्वा नत्वा महास्तोत्रैर्जप्त्वा जाप्यैर्जिनेश्वरम् ।
महादानादिकं दत्वा समुत्तीर्य गिरेस्ततः ।।72।।

सज्जनैः संयुतो धीमान् पात्रदानादिपूर्वकम् ।
पारणाञ्च विधायोच्चैस्ततः सर्वगुणाकरः ।।73।।

सौराष्ट्रदेशभूमीशकन्याः पञ्चशतानि च ।
परिणीय महाभूत्याः परमानन्दनिर्झरः ।।74।।

अहिच्छत्राधिपं जित्वा सङ्ग्रामे शूरसत्तमः।
तत्पुत्रञ्चारिदमनं तं कृत्वा निजसेवकम् ।।75।।

तस्याश्च सुरसुन्दर्या बल्लभं गर्वसंयुतम् ।
दर्शयामास तत्रोच्चैः कर्मप्राधान्यमुन्नतम् ।।76।।

ततोऽरिदमनः सोऽपि सुधीर्वैराग्यसंयुतः।
यशोधरं मुनिं नत्वा दीक्षितोऽभूच्छुभाशयः ।।77।।

श्रीपालस्तु महीनाथो लीलया साधयन् महीम् ।
भूरिसैन्यो महाराष्ट्रदेशं[3] गत्वा महोत्सवैः ।।78।।

तद्देशानेकराजेन्द्रकन्याः पञ्चशतानि च ।
परिणीय ततो धीरो देशे गुर्जरसंज्ञके[4]।।79।।

---

[1]ग प्रति स्त्री
[2]ग प्रति सुखावहम्
[3]ख प्रति महाराष्ट्रादेशं
[4]क ख ग प्रति गूर्जरसंज्ञके

जित्वा गौर्जरभूपालान् स्वपुण्यपरिपाकतः ।
कन्याः सप्तशतान्युच्चैस्तेषां लात्वा धनादिभिः ।।80।।

ततो मेल्पाटभूपानां सारकन्याशतद्वयम् ।
विवाहविधिना धीमान् समादाय गुणोज्ज्वलाम्[1] ।।81।।

ततोऽन्तवासिनां[2] राज्ञां सारकन्याविभूतिभिः ।
सुधीः षण्णवतिः[3] चातिसंभ्रमेण मनोहराः ।।82।।

परिणीय ततो मध्ये बहुदेशाधिनायकान् ।
जित्वा तान् रत्नमाणिक्यप्राभृतानां शतानि च ।।83।।

गृहीत्वा मत्तमातङ्गतुरङ्गं[4] धनादिकम् ।
गृह्णन् पदे पदे पुण्यात् साकरां साधयन् महीम् ।।84।।

आज्ञां विस्तारयन् स्वस्य चतुरङ्गबलैर्युतः ।
रूपलावण्यसम्पन्नः स्वान्तःपुरसमन्वितः ।।85।।

समागत्य प्रभुस्तत्र भेरीनादशतैस्तदा ।
उज्जयिन्यां बहिर्देशं व्याप्य सर्वत्र संस्थितः ।।86।।

परचक्रं समायातमिति श्रुत्वा भयाकुलः ।
प्रजापालस्तदा राजा सञ्जातो मानसेतराम् ।।87।।

युद्धार्थं स भयत्रस्तो गजाश्वसुभटोत्करैः ।
सामग्रीं कारयामास नानावस्तुशतैरपि ।।88।।

तदा श्रीपाल राजोऽपि सैन्ये सेनापतिं निजम् ।
संस्थाप्य सर्वरक्षार्थं रात्रौ प्रच्छन्नभावतः ।।89।।

दुर्गमुल्लङ्घ्य वेगेन स्वान्तरायमिवोन्नतम् ।
एकाकी तन्मनोज्ञातुं कान्तावासं समाययौ ।।90।।

प्रच्छन्नं संस्थितो यावत्तावन्मदनसुन्दरी ।
स्वावासे संस्थितां श्वश्रूं सती सम्प्राह सादरम् ।।91।।

---

[1]क प्रति गुणोज्वालाम्, ख प्रति गुणोज्वलाम्, ग प्रति गुणोज्वलम्
[2]ग प्रति ततोतवासिनां
[3]कख प्रति षणवति, ग प्रति षणवतिम्
[4]कखग प्रति तुरंगम

ययुः संवत्सरा मातर्द्वादशैव निरन्तरम् ।
अद्यापि नो समायातः[1] पुत्रस्ते वल्लभो मम[2] ।।92।।

इदानीं संग्रहिष्यामि संयमं श्रीजिनोदितम् ।
पापसन्तापदावाग्नेः शमनैकघनाघनम् ।।93।।

इति श्रुत्वा ततः प्राह सा सती कमलावती ।
भो स्नुषे![3] शृणु मे पुत्रः सुधी सत्यपरायणः ।।94।।

जिनेन्द्रवचने चञ्चुस्तस्य वाचा न चान्यथा ।
किं मेरुश्चलति स्थानात् किं सिन्धुर्मुञ्चति स्थितिम् ।।95।।

तिष्ठ त्वं साम्प्रतं बाले! पुनर्दिनं चतुष्टयम् ।
धर्मध्यानेन ते सत्यं भविष्यन्ति मनोरथाः ।।96।।

श्रूयते[4] परचक्रञ्च समायातं सुदारुणम् ।
पश्य पुत्रि! पिता ते च साम्प्रतं किं करिष्यति ।।97।।

ततो मदनसुन्दर्या पुनः प्रोक्तञ्च तां प्रति ।
भो! मातर्मे स्फुरत्युच्चैश्चक्षुर्बाहुश्च वामकः[5]।।98।।

भर्त्ता मे श्रेयसां कर्ता सुभक्तो जिनशासने ।
दूरे सन्तिष्ठते[6] मात! संयोगः कीदृशो भवेत् ।।99।।

एवं परस्परालापं तयोः श्रुत्वा सहृष्टवान्[7]।
श्रीपालोऽपि जगौ मात! समायातोऽहमत्र च ।।100।।

श्रीपालश्रुति[8]माकर्ण्य परमानन्दनिर्झरा ।
द्वारमुद्घाटयामास सतीमदनसुन्दरी ।।101।।

सन्मार्गं वा मुनेर्मेधा सारशर्मविधायकम् ।
तदा श्रीपालभूपालो मातुः पादाम्बुजद्वयम् ।।102।।

---

[1]क प्रति भ्यमायात
[2]ग प्रति ममाः
[3]क ख ग प्रति स्तुषे
[4]ग प्रति स्तुयते
[5]क ख प्रति वामकं
[6]ग प्रति सन्तुष्टते
[7]ग प्रति सहृष्टव्यन्
[8]ग प्रति श्रीपालस्तुति

ननाम परया प्रीत्या कुर्वन् सन्तोषमुत्तमम् ।
सत्यं सन्तोषकर्तारः सुपुत्राः कुलदीपकाः ।।103।।

श्रीपालं तं विलोक्योच्चैः सा माता कमलावती ।
सन्तुष्टा मानसे गाढं स्वतत्वं वा मुनेर्मतिः।।104।।

तदा[1] तद्दर्शनेनोच्चैर्भार्या मदनसुन्दरी ।
प्रकाशं कमपि प्राप भास्करस्येव पद्मिनी ।।105।।

तदा स्वसम्पदालाभकथानकमनुत्तरम् ।
गदित्वा च तयोश्चितं रञ्जयामास धीरधीः।।106।।

ततः प्रासादभूगर्भं गत्वा मदनसुन्दरीम् ।
समालिङ्ग्य स सम्भाष्य सञ्चक्रे[2] सुखिनीं तराम् ।।107।।

पुनः सैन्यश्रियं श्रुत्वा तदा मदनसुन्दरीम् ।
तां द्रष्टुमुत्सुकां[3] मत्वा रात्रावेव[4] भटाग्रणीः ।।108।।

तां समानीय वेगेन स्वसैन्यं[5] सम्पदान्वितम् ।
दर्शयामास सद्रूपास्ताश्च सर्वाः स्वकामिनीम् ।।109।।

तदा[6] ताभिः समस्ताभिस्तां समालोक्य सुन्दरीम् ।
मञ्जरी चाम्रवृक्षस्य सर्वलक्षणसुन्दरीम् ।।110।।

संभ्रमेण समुत्थाय परमाह्लादपूर्वकम्।
अस्माकं स्वामिनीत्युच्चैस्त्वं सम्भाष्य[7] नमस्कृताः ।।111।।

सिद्धचक्रप्रसादेन त्रैलोक्य[8]सुखकारिणा ।
अहं पूज्यतमा जाता सन्तुष्टा चेति सा तदा ।।112।।

श्रीपालस्तु तदा प्राह तां पुनर्मुख्यकामिनीं ।
कया रीत्या प्रजापालो द्रष्टव्यो ब्रूहि सुन्दरि![9]।।113।।

---

[1]ग प्रति तथा
[2]ग प्रति सचक्रे
[3]ग प्रति दृष्टुमुत्सुकां
[4]क ख प्रति रात्रवेव, ग प्रति रात्रवेच
[5]ग प्रति स्वस्यैन्यं
[6]क प्रति तव
[7]ग प्रति साभाष्य
[8]ख प्रति स्त्रैलोक्य
[9]क ख प्रति सुन्दरी

मिथ्यागर्वोऽस्ति भो नाथ! मानसे तस्य भूपतेः ।
यथा गर्वो गलत्यस्य तथा कार्यं त्वया प्रभो! ।।114।।

तन्निशम्यावदत्सोऽपि श्रीपालो भो प्रियोत्तमे! ।
सोऽस्माकमुपकारी च कथं तत्क्रियते[1] शुभे! ।।115।।

सम्यक्त्वशालिनी साह पुनर्मदनसुन्दरी ।
तद्विना भो प्रभो! लोके जैनधर्मप्रभाव न[2] ।।116।।

तस्य[3] तस्मात्तदेवात्र कर्तव्यं प्राणवल्लभ!।
येन श्रीजिनधर्मस्य प्रभावो भवति ध्रुवम् ।।117।।

तदा सोऽपि प्रियावाक्यं श्रुत्वा कार्यविदाम्बरः।
बुद्धिसागरनामानं दूतं सम्प्राहिणोत्[4] द्रुतम् ।।118।।

प्रजापालं प्रति व्यक्तं गदित्वा स्वमनोगतम् ।
सोऽपि दूतस्तदा सर्वकार्याकार्य[5] विचक्षणः ।।119।।

वक्ता समर्थो निर्लोभो[6] निर्भयः स्वामिसम्मतः ।
ज्ञाता देशस्वभावज्ञो लेखं लात्वा विनिर्ययौ ।।120।।

गत्वा तं भूपतिं नत्वा दत्वा[7] पत्रं जगाविति ।
भो प्रभो! मे प्रभुर्नाम्ना श्रीपालः परमोदयः ।।121।।

साधयित्वा बहून् देशान् जित्वा भूपशतानि च ।[8]
कन्यारत्नसहस्राणि परिणीय गुणोज्ज्वलः ।।122।।

नानारत्नसुवर्णादि मणिमुक्ताफलादिकम् ।
गृहीत्वा सम्पदासारं प्रतापजितभास्करः ।।123।।

दाता दीनादिकेषूच्चैः[9] कोटीभटशिरोमणिः ।
सुधी सर्वबलोपेतः स स्वामी त्वां समादिशत् ।।124।।

---

[1]ग प्रति तत्क्रियंतं
[2]क ख प्रति प्रभावतः
[3]क ख ग प्रति तस्या
[4]क ख ग प्रति सम्प्राहिणो
[5]ग प्रति सर्वकार्य
[6]ग प्रति निलोभो
[7]ग प्रति 'दत्वा' इति शब्दाभाव
[8]ग प्रति प्रथम पंक्ति दो बार
[9]क प्रति दीनादीनादिकेषूच्चैः, ग प्रति दान दीनादिकेषूच्चैः

कम्बलं त्वं परावृत्य स्वदेहे स्वगले तथा ।
धृत्वा परशुमाशूच्चैः[1] पादचारी च साम्प्रतम्[2] ।।125।।

हलाजीवस्य वेषेण समागत्य परिच्छदैः ।
नमस्कारं करोतूच्चैस्तदा ते कुशलं ध्रुवम् ।।126।।

अन्यथा देशनाशस्ते भविष्यति न संशयः ।
इत्येवं श्रावणात् सोऽपि प्रजापालोऽतिगर्ववान् ।।127।।

प्रोवाच दूतं रे याहि समर्थोऽहं रणाङ्गणे ।
सिंहः किं मृगसन्दोहैर्बाध्यते भो! महीतले ।।128।।

खद्योतैश्छाद्यते किं वा भास्करो महिमाकरः ।
कोऽयं श्रीपालकस्तेऽयं यो मां नामयति ध्रुवम् ।।129।।

इत्यादिकं क्रुधा जल्पन् प्रजापालस्तु मन्त्रिभिः ।
बोधितो देव! कर्तव्यो नैव गर्वस्त्वया प्रभो! ।।130।।

संसारे सन्ति भो राजन्! महान्तो महतामपि ।
चक्रिणोऽपि मतद्वेषी[3] यथाभूद्भुजविक्रमी ।।131।।

सिंहस्याऽपि सुधीरस्ति जेता चाष्टापदः क्षितौ ।
घनाघनो भवेद्भानोः प्रभा प्रच्छादने क्षमः ।।132।।

अयं शूरः समायातो महाबलसमन्वितः।
प्रतापनिर्जितारातिः[4] श्रीपालः श्रूयते प्रभुः ।।133।।

पुरी ते वेष्टिता येन महासैन्येन भूपते! ।
अकस्मादत्र चागत्य न सामान्यः स भूतले ।।134।।

तस्मात् स्वराज्यरक्षार्थं त्यक्त्वा[5] गर्वं च दुःखदम् ।
सेवनीयो महानेष श्रीपालः प्रभुरुत्तमः ।।135।।

---

[1]कख प्रति परसुमाश्रूच्चैः, ग प्रति परसुमाषूच्चैः
[2]कख ग प्रति साम्प्रतः
[3]ग प्रति महद्वेषी
[4]कख प्रति प्रजापतिनिर्जितारातिः
[5]कग प्रति त्यक्ता

इत्यादि मन्त्रिभिः प्रोक्तं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसः ।
प्रजापालः प्रशान्तोऽभूदग्निर्वा जलयोगतः ।।136।।

जगौ भो दूत! यत्प्रोक्तं स्वामिना तेन ते ध्रुवम् ।
तत्सर्वं सङ्करिष्यामि याहि त्वं तन्निवेदय ।।137।।

एवं दूतञ्च सन्मान्य वस्त्राद्यैस्तं व्यसर्जयत् ।
सोऽपि गत्वा प्रभुं नत्वा तत्सर्वं संजगाद च ।।138।।

तन्निशम्य दयालुत्वात् सुधीर्गर्विताशयः[1]।
श्रीपालः कोपमुत्सृज्य सञ्जगौ रे वचोहर! ।।139।।

पुनस्त्वं याहि तं भूपं कथयेति प्रभो ध्रुवम् ।
गजमेनं समारुह्य विभूत्यागच्छ भूपते! ।।140।।

गदित्वेति स्वकीयञ्च प्राहिणोद्धद्रहस्तिनम् ।
सत्यमासन्नभव्यानां कोपो नैव स्थिरो भवेत् ।।141।।

ततः सोऽपि प्रजापालो राजा हृष्टः स्वमानसे।
प्रोत्तुङ्गगजमारूह्य चामरादिविभूतिभिः ।।142।।

पुरान्निर्गत्य वेगेन समागत्य सुभक्तितः[2]।
श्रीपालं सज्जनं दृष्ट्वा समालिङ्ग्य परस्परम् ।।143।।

महादरं प्रहर्षेण कृत्वा सम्भाषणं शुभम् ।
सन्तुष्टौ तौ तदा गाढं सज्जनैः परिवारितौ ।।144।।

श्रीपालः श्वसुरं प्राह श्रृणु त्वं भूपते! ध्रुवम् ।
सिद्धचक्रप्रसादेन सर्वं सिद्धमिदं मम ।।145।।

तदाकर्ण्य प्रभुः सोऽपि प्रजापालो महोत्सवैः ।
दानैर्मानैर्महाध्वानैर्वादित्रशतसम्भवैः ।।146।।

पुरीं प्रवेशयामास विलसद्रत्नतोरणम्[3]।
श्रीपालं सबलं[4] शान्तः पुरं नृत्यादि–सम्भ्रमैः ।।147।।

---

[1]कखग प्रति सुधीर्गज्वरिताशयः
[2]क प्रति श्रुभक्तितः
[3]क ख प्रति तोरणाम
[4]क ख प्रति सम्बलं

तत्र राजादयः सर्वे राजवर्गाश्च सज्जनाः ।
सिंहासनं समारोप्य सुताकान्तं प्रियान्वितम् ।।148।।

नानावस्त्रसुवर्णाद्यैः सद्रत्नैः परमादरात् ।
पूजयन्तिस्म सम्प्रीत्या कोटीभटशिरोमणिम् ।।149।।

युक्तं पुण्यविपाकेन सर्वत्र सुलभाः श्रियः ।
तस्मात्पुण्यं प्रकर्तव्यं सदा भव्यैर्जिनोदितम् ।।150।।

एवं तत्र प्रभुः सोऽपि श्रीपालो बहुभूमिपैः ।
सेवमानो[1] महासैन्यसंयुतो गुणमण्डितः ।।151।।

साधिकाष्टसहस्रोरुवनितावृन्दसंयुतः ।
भुञ्जन्भोगान् सुखं तस्थौ दानैः कल्पतरूपमः ।।152।।

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां कुर्वन् पूजां जगद्धिताम् ।
सिद्धचक्रं सदाचित्ते चिन्तयन् परयामुदा ।।153।।

इत्थं पुण्यविपाकतो जिनपते धर्मं जगद्योतकम् ।
कुर्वन् सर्वपरिच्छदैः परिवृतः श्रीपालनामानृपः।।
नानाभोगविलासरञ्जितजगत् सर्वज्ञशास्त्रे मतिः।
नित्यं सारपरोपकारचतुरस्तत्रस्थितः सौख्यतः ।।154।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयं प्राप्ते श्रीपालमहाराज[2] चरित्रे भट्टारक श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य श्रीसिंहनन्दिब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते [3] ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीपालमहाराजबहुकन्यासहस्र– विवाहलाभेन सह कमलावतीमातृमदनसुन्दरीभार्या–संयोगव्यावर्णनो नाम षष्टमोऽधिकारः ।।6।।[4]

[1]ग प्रति सेव्यमानो
[2]क ख प्रति श्रीपालराज
[3]क ख प्रति 'ब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते' पंक्ति का आभाव
[4]ग प्रति 'श्री श्री श्री' शब्द अतिरिक्त

सप्तमोऽधिकारः

अथ तत्र स्थितः सौख्यमुज्जयिन्यां महापुर्याम्[1] ।
स श्रीपालो महाराजश्चिन्तयामास चेतसि ।।1।।

एकदा भो! भवेल्लोके यः पुत्रः क्षत्रियोद्भवः ।
गृहीतं स्वपितुःस्थानं शत्रुणा प्राणहारिणा ।।2।।

नैव गृह्णाति मूढ़ात्मा सामर्थ्येसति भूतले ।
तस्य किं जीवितेनात्र चञ्चा[2]–पुरुषवद्ध्रुवम् ।।3।।

मृते पितरि पुत्रो यः स्ववंशं नैवचोद्धरेत् ।
स पुत्रः केवलं मातुः कृमिवद्वेदनाकरः ।।4।।

यः करोति कुलोद्योतं पौरुषेणैव सोमवत् ।
स एव सम्भवेल्लोके सुपुत्रः कुलदीपकः ।।5।।

अतोऽहं वेगतो गत्वा कृत्वा युद्धं च दारुणम् ।
ग्रहीष्यामि[3] पितुः[4] राज्यं करिष्यामि कुलोचितम् ।।6।।

इत्यालोच्य[5] सुधीस्तत्र प्रजापालञ्च भूपतिम् ।
विनयेन समापृच्छ्य संचचाल ततो द्रुतम् ।।7।।

सारशृङ्गारभार्याभिः सर्वाभिः परिमण्डितः ।
जङ्गमः कल्पवृक्षो वा लताभिः परिवेष्टितः ।।8।।

गजाश्वरथपादातिसहस्रैः परिवारितः ।
छत्रचामरसद्भृत्या चक्रवर्तीव धीधनः ।।9।।

अश्वपादहतश्क्षोणी[6] रजोभिश्छादयन्नभः ।
प्रतापनिर्जितारातिमण्डलो वा दिवाकरः ।।10।।

तदा भूमिश्चचालोच्चैः सैन्यसंदोहमर्दनात् ।
कम्पमाना च भीत्येव ससमुद्रा सपर्वता ।।11।।

---

[1] कखग प्रति महापुरि
[2] क ख प्रति चं वा
[3] क ख प्रति ग्रहिष्यामि
[4] ग प्रति पितू
[5] ग प्रति इत्यातोच्य
[6] ख प्रति अश्वपादहतश्रोणी

क्रमेण साधयन् देशान् नामयंस्तत्प्रभून् बहून् ।
संगृह्णन् साररत्नानि नानावस्तुशतानि[1] च ।।12।।

अंगदेशेऽथ तां चम्पापुरीं सत्सम्पदाभृताम् ।
समावेष्ट्य[2] तदा शीघ्रं तं दूतं प्राहिणोत्प्रभुः ।।13।।

सोऽपि गत्वा द्रुतं वीरदमनाख्यं जगाद च ।
भो प्रभोऽत्र समायातः श्रीपालः पालिताखिलः ।।14।।

सर्वान् देशान् समासाद्य गृहीत्वा सारसम्पदाम्।
महासैन्यशतेनोच्चैर्महासामर्थ्यसंयुतः ।।15।।

तेनाहं प्रभुणा[3] दत्वा प्राभृतं प्रेषितः[4] प्रभो ।
गृहाण देव! पत्रञ्च शृ णु त्वं तेन भाषितम् ।।16।।

परित्यज्य पुरीं चम्पाराज्यं चापि पितुर्मम ।
गृहाणन्यत्पुरं वेगात्तत्र तिष्ठ सुखेन च ।।17।।

अयं ते भ्रातृपुत्रश्च समर्थः सूरसत्तमः ।
प्रीतिश्चेन्मद्वचः कार्यं नोचेत् कुरुरणं ध्रुवम् ।।18।।

इत्यादिकं समाकर्ण्य वचोहरवचोखिलम् ।
स वीरदमनः प्राह प्रभुः कोपाग्निदीपितः ।।19।।

किं ते श्रीपालको बालः किं ते सैन्यं तृणोपमम् ।
एकोऽहं सकलान् शत्रून् जित्वा घोरे रणाङ्गणे ।।20।।

भास्करो वा तमस्तोमं प्रेषयित्वा यमालयम् ।
श्रीपालं सङ्करिष्यामि स्वनाम–सफलं क्षितौ ।।21।।

तन्निशम्य पुनर्दूतो जगावित्थं त्वया प्रभो! ।
क्रियते किं वृथा गर्वो मानभङ्गस्य कारणम् ।।22।।

अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्यैर्गौर्जरामालवादयः[5]।
कौंकुणाश्च महीपालास्तैलङ्गाः सैंहलास्तथा ।।23।।

---

[1]ग प्रति नावस्तुशतानि
[2]ख प्रति समावेष्ट
[3]क प्रति प्रभुना
[4]ग प्रति प्रेतः
[5]ग प्रति कलिङ्गाद्यागौर्यमालवादयः

सेवन्ते त्वत्समाः सर्वे भूपाला बहवो ध्रुवम् ।
श्रीपालं नामभूपालं पालिताखिलमण्डलम् ।।24।।

ततः कोपं परित्यज्य भो प्रभो! सुभटोत्तमम् ।
कोटीभटं स्वरक्षार्थं भजत्वं स्वामिनं मम ।।25।।

वीरादिदमनो राजा तदाकोपेन सञ्जगौ ।
अरे दूत! त्वकं याहि यतो बध्योऽसिनैव च ।।26।।

अद्यैव दर्शयिष्यामि सामर्थ्यं स्वं रणाङ्गणे ।
एवं विसर्ज्य तं दूतं स्वयं च रणतूरकम् ।।27।।

दापयित्वा समारुह्य मत्तमातङ्गमुन्नतम् ।
चतुरङ्गबलोपेतश्चामरादिविभूतिभिः ।।28।।

तेन सार्धं यदा युद्धं प्रकर्तुं निर्ययौ जवात् ।
तदा क्षत्रियभार्याश्च स्वं स्वं नाथं जगुः किलः ।।29।।

जित्वा शत्रूनहो स्वामिन्! हतमातङ्गमस्तकात् ।
महामुक्ताफलान्युच्चैस्त्वं समानय मे प्रभो! ।।30।।

काचिज्जगाद भो नाथ! यशोराशिसमुज्ज्वलम् ।
जित्वा रिपून् सुधीर्देयास्त्वं मे रत्नकदम्बकम् ।।31।।

काचिदूचे प्रभो युद्धे निराकृत्य द्विषो भटान् ।
कीर्तिकान्त्या जगद्विश्वं कुर्याश्चन्द्रवदुज्ज्वलम् ।।32।।

भटस्य जननी काचित्सती प्राह सुतं प्रति ।
अरे पुत्र! रणे चापि स्मर्तव्या निजमानसे ।।33।।

सारपञ्चनमस्काराः सर्वसिद्धिविधायकाः ।
येन ते कार्य संसिद्धिः सद्यशोऽपिजगत्त्रये ।।34।।

भवेदुच्चैः प्रजल्पेति दधिचन्दनमक्षतान् ।
ददौ पुत्रशिरोदेशे ललाटे च शुभोक्तिभिः ।।35।।

एवं शिक्षा[1] शतोपेतैर्भटैः सार्धं विनिर्ययौ ।
स वीरदमनो राजा तं जेतुं भ्रातृजं द्रुतम् ।।36।।

[1]ग प्रति शिरक्षा

तदा दूतात्[1] समाकर्ण्य श्रीपालोऽपि महाप्रभुः ।
कुपित्वा सन्मुखं प्राप यमस्योपरि[2] वा यमः ।।37।।

ततस्तयोर्महायुद्धे नाना शस्त्र[3]सहस्रकैः।
अश्वैर्गजैर्रथैस्तुङ्गैः पादातिजनवृन्दकैः ।।38।।

वर्तमाने स्वराज्यार्थं क्षीयमाने भटोत्करैः[4]।
तदा मन्त्रिवरै वीक्ष्य तयोर्युद्धं प्रजाक्षयम् ।।39।

आज्ञां जैनेश्वरीं दत्वा देवेन्द्राद्यैः समर्चिताम् ।
सैन्ययोश्च द्वयोः प्रोक्तं श्रूयतां भो प्रभूत्तमौ! ।।40।।

जैनेश्वरं वचः पूतं सर्वप्राणिहितङ्करम् ।
त्वादृशां महतां गोत्रे युद्धमेवं न युज्यते ।।41।।

अतो मा म्रियतां[5] लोके वराको भाक्तिकोऽपि च ।
पितृव्यो भ्रातृजश्चापि धर्मयुद्धे प्रजाहिते ।।42।।

मल्लयुद्धं प्रयुद्ध्येतां युवां साम्प्रतमुत्तमौ ।
मन्त्रिवाक्यमिदं श्रुत्वा तौ द्वौ युद्धं प्रचक्रतुः ।।43।।

मल्लयुद्धे तयोस्तत्र पादसङ्घाततताडनैः ।
धरातलञ्च भीत्येव रसातलमलं ययौ ।।44।।

बाहुदण्डैः प्रचण्डैश्च दण्डिनोऽपि भयङ्करैः ।
वल्गनैर्बहुभिश्चाऽपि प्रतारणरवैः[6] परैः ।।45।।

मल्लयुद्धं चिरं तौ द्वौ चक्रतुर्भटसत्तमौ ।
यथादि[7]चक्रभृद्बाहुबलिनौ बलशालिनौ ।।46।।

एवं युद्धं विधायोच्चैः श्रीपालः सुभटाग्रणीः ।
वीरादिदमनं जित्वा बबन्ध किल पौरुषात् ।।47।।

---

[1]ख ग प्रति दूतान्
[2]ख प्रति यमिस्योपरि
[3]ग प्रति नानाशास्त्र
[4] ग प्रति भटोत्करे
[5]ग प्रति त्रियतां
[6]ग प्रति वल्गनैर्बलनैश्चाऽपि प्रतारणवैः
[7]क ख प्रति गदादि

सत्यं[1] जयो भवेन्नित्यं भूतले पुण्यशालिनाम् ।
तथा लक्ष्मीश्च कीर्तिश्च[2] तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम् ।।48।।
तदा ते साक्षिणः सर्वे श्रीपालस्य च सैन्यकाः ।
जय कोलाहलञ्चक्रुः परमानन्दनिर्झराः ।।49।।

वीरादिदमनो राजा चक्रे म्लानं मुखाम्बुजम् ।
रात्रौ हिमौघपातेन यथा पद्माकरो भुवि ।।50।।

एकस्यापि महानन्दो द्वितीयस्य महाश्रु च[3] ।
संसारचेष्टितञ्चेति सुधियां बोधकारणम् ।।51।।

तदा श्रीपालभूपालो दयालुः सर्वदा सुधीः ।
तं म्लानवदनं वीक्ष्य विमुच्य जवतो बुधः ।।52।।

पितृव्यं भावतो नत्वा तं जगौ गुणमन्दिरम् ।
भो सुधीस्त्वं सदा पूज्यो ममोच्चैश्च पिता यथा ।।53।।

अहं बालोऽतिनिर्बुद्धिः[4] कार्याकार्याविचक्षणः ।
अतः परं पिता त्वं मे पुत्रोऽहं नात्र संशयः[5]।।54।।

लात्वा सप्ताङ्ग राज्यं त्वं प्रभुर्भवमहीतले ।
सेवकोऽहं भविष्यामि तवोच्चैः सर्वकर्मकृत् ।।55।।

क्षमस्व त्वं प्रभो! यच्च मया[6] चक्रे विरूपकम्।
विषादं मुञ्च भो देव! मूढबालककर्मणि ।।56।।

यतः सन्तः प्रकुर्वन्ति क्षमां सर्वत्र सर्वथा ।
चन्दनो घृष्टमानः किं स्वसौगन्ध्यं जहाति भो!।।57।।

इत्यादिकं शुभं वाक्यं श्रीपालस्य सुखप्रदम् ।
स वीरादमनो राजा श्रुत्वा वैराग्यभावभाक्[7]।।58।।

---

[1]ग प्रति स्यत्यं
[2]ग प्रति कीर्तिश्च इति शब्दाभाव
[3]ग प्रति महाशुचिः
[4]ग प्रति निर्बुधिः
[5]ग प्रति शंसयः
[6]ग प्रति य मया
[7]ग प्रति वाक्

तं प्रोवाच सुधीः सोऽपि भो श्रीपालविचक्षण! ।
सत्यं त्वं सज्जनो लोके किं शोकेन मम त्वयि ।।59।।

प्रदीपे दीप्यमाने च नैव तिष्ठति वा तमः ।
सन्तुष्टोऽहं सुधीः पुत्र विनयेन तव ध्रुवम् ।।60।।

अहं दीक्षां ग्रहीष्यामि सुधीर्जैनेश्वरीं शुभाम् ।
त्वं मे सत्यं सहायत्वं संजातोऽसि विचक्षणः ।।61।।

इति क्षान्त्वा ततस्तञ्च क्षमयित्वा प्रियोक्तिभिः ।
परित्यज्य त्रिधा सर्वं परिग्रहमहाग्रहम् ।।62।।

ज्ञानसागरनामानं मुनीन्द्रं बोधसागरम् ।
नत्वा दीक्षां समादाय सञ्जातो मुनिसत्तमः ।।63।।

सत्यं सतां भवेदुच्चैरापदाऽपि शिवश्रियै ।
यथाऽसौ संयमं प्राप वीरादिदमनो नृपः ।।64।।

तदा श्रीपालराजोऽपि स्वपुण्यपरिपाकतः ।
महोत्सवशतैश्चापि पुरीं चम्पां महर्द्धिकाम् ।।65।।

रत्नादि तोरणोपेतां सम्पदासारसम्भृताम् ।
पञ्चवर्णध्वजव्रातैर्नृत्यन्ती वा तदागमे ।।66।।

राजभिर्बहुभिः सार्धं प्रियावृन्दैः परिष्कृतः[1] ।
छत्रचामरसन्दोहैर्देवेन्द्रो वामरैर्वृतः ।।67।।

सर्वसज्जनसंसेव्यो नदद्वादित्रसद्ध्वनिः ।
चारणस्तुतिपाठौघैः स्तूयमानो[2] विवेश सः ।।68।।

तत्र चम्पापुरी मध्ये पितुः स्थानमनुत्तरम् ।
सुधी सम्प्राप्य सन्तुष्टो मानसे भरतो यथा ।।69।।

तदा ते भूमिपाः सर्वे परमानन्दनिर्भराः ।
जिनेन्द्रस्नपनं कृत्वा सारपञ्चामृतादिभिः ।।70।।

स्वर्णसिंहासने तुङ्गे महोत्सवशतैरपि ।
श्रीपालं स्थापयित्वोच्चैः स्वच्छतोयादिसम्भृतैः ।।71।।

---

[1]ग प्रति परिस्कृता
[2]क ख प्रति स्तूयमानौ

लसत्काञ्चनसत्कुम्भैर्गीतवादित्रमङ्गलैः ।
राज्याभिषेकमत्युच्चैः कृत्वा प्रीत्या शुभोदयात् ।।72।।

वस्त्राभरणसन्दोहैः पूजयन्तिस्म भक्तितः ।
सत्यं स्वपूर्वपुण्येन किन्न जायेत भूतले ।।73।।

ततो भव्या जिनेन्द्रोक्तं दानपूजातपोव्रतम् ।
नित्यं पुण्यं प्रकुर्वन्तु सारशर्मविधायकम् ।।74।।

पुण्येन दूरतरवस्तुः समागमोऽस्ति ।
पुण्यं विना तदपि हस्ततलात् प्रयाति ।
तस्मात्सुनिर्मलधियः कुरुत प्रमोदात् ।
पुण्यं जिनेन्द्रकथितं शिवशर्मबीजम् ।।75।।

गृहे गृहे तथा सर्वे सज्जनाश्चित्तरञ्जनम् ।
चक्रुर्महोत्सवं दिव्यं गीतनृत्यादिमङ्गलैः ।।76।।

रत्नचूर्णचतुष्कैश्च पट्टकूलादिवस्तुभिः ।
तदा चम्पापुरी रेजे निर्मिता वा महोत्सवैः ।।77।।

एवं श्रीपालभूपालः समादाय महोत्सवैः ।
पितुः राज्यं महाप्राज्यं दानमानशतैर्युतम् ।।78।।

निष्कण्टकं[1] कृतानन्दं प्रीणिताखिलसज्जनाः ।
सर्वदेशेषु भूपालसहस्राणां विशेषतः ।।79।।

मूर्द्धमालामिवोत्तुङ्गां स्वाज्ञां चक्रे[2] शर्मदाम् ।
संस्थितः सुखतो नित्यं सेवितो भूरिभूमिपैः ।।80।।

पट्टदेवी पदं प्राप्य तदा मदनसुन्दरी ।
सा रेजे कामिनी तस्य यथा मदनसुन्दरी ।।81।।

तदाद्यैश्च प्रियावृन्दैर्जगच्चेतोनुरञ्जनैः ।
सार्धं सम्पूर्ण भोगाङ्गैः सत्सुखं प्राप स प्रभुः ।।82।।

एवं राज्ये स्थितः सौख्यं सेव्यमानो नराधिपैः ।
सुखं पञ्चेन्द्रियोत्पन्नं सम्भुञ्जन् परया मुदा ।।83।।

---

[1] क ख ग प्रति निःकण्टकं
[2] ग प्रति चक्रे च

चिरकालं जिनेन्द्राणां धर्मं कुर्वन् जगद्धितम्[1]।
दानपूजाव्रतोपेतं परोपकृतितत्परः ।।84।।
पालयन् पुत्रवत् प्रीत्या प्रजां सर्वां सुनीतिवित् ।
स श्रीपालः प्रभुः सत्यं जातः सद्राज्यपालनात् ।।85।।

धर्मेण निर्मलकुलं विमला च लक्ष्मी[2] ।
धर्मेण निर्मलयशो विमलं च सौख्यम् ।।
स्वर्गापवर्गगमनं[3] जिनधर्मतश्च ।
तस्मात् सुधर्ममम‍लं[4] सुधियः कुरुध्वम् ।।86।।

एवं जिनेन्द्रकथितं सुदयाप्रधानम् ।
धर्मं जगत्त्रयहितं परमादरेण ।
श्रीपालनामनृपतिः सुखदं प्रकुर्वन् ।
राज्यं चकार सुचिरं स्वसमीहितं सः ।।87।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयप्राप्ते [5]श्रीपालमहाराजचरित्रे भट्टारक श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य श्रीसिंहनन्दि ब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीपालमहाराजचम्पापुरीराज्यप्राप्ति व्यावर्णनो नाम सप्तमोऽधिकारः ।।7।।

---
[1]क प्रति जगद्वितम्
[2]ग प्रति लक्ष्मी इति शब्दाभाव
[3]ग प्रति स्वर्गापवर्गममलं
[4]ग प्रति ममलं इति शब्दाभाव
[5]ग प्रति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयते

अष्टमोधिकारः

अथैकस्मिन् दिने सोऽपि श्रीपालः पृथिवीपतिः ।
सभायां संस्थितो धीमान् सिंहासनमधिष्ठितः ।।1।।

वीज्यमानः सितैश्चारुचामरैर्वामरेश्वरः ।
सेव्यमानः सुरैर्वोच्चैः परैर्भूपैर्विभूतिभिः ।।2।।

विज्ञप्तो वनपालेन नानापुष्पफलोत्करैः ।
राजन्नुपवने रम्ये श्रुतसागरनामभाक् ।।3।।

महामुनिः समायातो ज्ञातसर्वागमः प्रभो! ।
सर्वजन्तुदयासिन्धुः स्वावधिज्ञानलोचनः ।।4।।

सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः संसक्तो जिनवर्त्मनि ।
धर्मामृतमयीवृष्ट्या तर्पयन् भव्यचातकान् ।।5।।

यत्प्रभावेन भो देव! तरवो येऽवकेशिनः ।
तेऽपि पुष्पफलस्तोमैः सञ्जाताः सर्वतर्पिणः ।।6।।

सदया दानिनो वोच्चैस्तथा पूर्णा जलाशयाः ।
सिंहादयो महाक्रूरास्त्यक्तवैराश्च तेऽभवन् ।।7।।

तदाकर्ण्य प्रभुः सोऽपि सद्धर्मरसिको महान् ।
सिंहासनात्समुत्थाय गत्वा सप्तपदानि च ।।8।।

जयकोलाहलं कुर्वन् ससभा परमादरात् ।
दत्वा तस्मै महादानं परमानन्दनिर्झरः ।।9।।

दापयित्वा महाभेरीं शुभां सन्मार्गसूचिनीम् ।
नदद्वादित्रसन्दोहैः सज्जनैः परिवेष्टितः ।।10।।

छत्रादिभिर्गजारूढः पूजाद्रव्यशतान्वितः ।
प्रियादिपरिवारेण मण्डितः पौरसत्तमैः ।।11।।

गत्वाशु तद्वनं[1] रम्यं शुद्धाशोकतरोरधः ।
निश्चले च[2] शिलापीठे पवित्रे संस्थितं मुनिम् ।।12।।

---

[1]ग प्रति द्वनं
[2]क प्रति निश्चलं च, ख प्रति निश्चलः च, ग प्रति निश्चलेव

निश्चलं मेरूवद्गाढं गम्भीरं सागरादपि ।
तं विलोक्य कृपा[1]सिन्धुञ्चारुरत्नत्रयान्वितम् ।।13।।

त्रिःपरीत्य महाप्रीत्या समभ्यर्च्य पदाम्बुजम् ।
तन्मुनेः संस्तुतिं कृत्वा नत्वा तत्पादयोरधः ।।14।।

संस्थितो मुनिना दत्त धर्मवृद्ध्या शुभश्रिया ।
सन्तुष्टो भूपतिर्गाढं मानसे सज्जनैः सह ।।15।।

पुनर्नत्वा मुनिं प्राह श्रीपालो विनयान्वितः ।
कृताञ्जलिरहो![2] स्वामिंस्त्वं सदा करुणापरः ।।16।।

भव्यपद्माकराणाञ्च प्रकाशनदिवाकरः ।
निस्पृहः श्रीजिनेन्द्रोक्तसद्धर्माम्भोधिचन्द्रमाः ।।17।।

स्वामिन् धर्मो भवेत्कीदृक् प्राप्यते स कथं तथा ।
किं फलं तस्य भो नाथ! सर्वं त्वं वक्तुमर्हसि ।।18।।

तन्निशम्य प्रभोर्वाक्यं मुनीन्द्रो धर्मतत्त्ववित् ।
स जगाद शुभां वाणीं सर्वसन्देहनाशिनीम् ।।19।।

भासिनीं सर्वतत्त्वानां भानुभा–इव निर्मलाम् ।
शीतलांचन्द्रकान्तिं वा परमाह्लाददायिनीम् ।।20।।

भो भूपते! स्थिरं कृत्वा स्वचित्तं शृणु साम्प्रतम् ।
वक्ष्येऽहं जिनधर्मस्य लक्षणं शुभलक्षणम्[3]।।21।।

संसारसागरान्नूनं समुद्धृत्य सदा नरान् ।
यो धरत्येव सत्सौख्ये[4] सद्धर्मो जिनभाषितः ।।22।।

मुनिश्रावकभेदेन स द्विधा सूरिभिर्मतः ।
महाधर्मो भवेदाद्यो मुनीनां स्वर्गमोक्षदः ।।23।।

साररत्नत्रयोपेतो मूलोत्तरगुणैर्युतः ।
तस्य भेदा सुधी! सन्ति बहवः परमागमे ।।24।।

---

[1]ग प्रति क्वपा
[2]ख प्रति रहा
[3]ग प्रति शुभलक्षिण
[4]ग प्रति सत्सौष्ये

श्रावकाणां भवेद्धर्मः सारस्वर्गादिसौख्यदः ।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि तं प्रभो! श्रृणुतादरात् ।।25।।

तत्रादौ च महाभव्यैः पालनीयं जगद्धितम् ।
जिनोक्तसप्ततत्त्वानां श्रद्धानं दर्शनं महत् ।।26।।

देवोऽर्हन्दोषनिर्मुक्तः सद्धर्मो[1] दशधास्मृतः ।
निर्ग्रन्थोऽसौ गुरुश्चेति श्रद्धा सम्यक्त्व[2]मुच्यते ।।27।।

सर्वव्रतक्रियासारदानपूजातपःसु च ।
तत्सम्यक्त्वं[3] बुधैः प्रोक्तं श्रृङ्गारं रत्नहारवत् ।।28।।

तेन युक्तो महाभव्यः समुत्तीर्य भवार्णवम् ।
स दुर्गत्यादिकं हित्वा क्रमात् स्वर्मोक्षभाग्भवेत्[4] ।।29।।

अहिंसा त्रसजीवानां पालनीयाः सुखार्थिभिः ।
सांकल्पिकीं परित्यज्याहिंसा[5] पक्षोऽयमुत्तमः ।।30।।

असत्यं दूरतस्त्याज्यं परद्रव्यञ्च सर्वथा ।
परस्त्रियं परित्यज्य कार्यस्तोषः स्वयोषिति[6]।।31।।

परिग्रहेषु सर्वेषु प्रमाणं संविधीयताम् ।
येन जीवो भवेदुच्चैःसत्सुखी च भवे भवे[7]।।32।।

सर्वदा च सतां त्याज्यं पापसन्तापकारणम् ।
रात्रिभोजनमत्रोच्चैर्मांसव्रतविशुद्धये ।।33।।[8]

चर्मवारिघृतं तैलं हिङ्गुसंहृतचर्म च ।
स्वभावाच्चलितं भोज्यं वर्जनीयं च सर्वथा ।।34।।

कन्दमूलं च सन्धानं पुष्पशाकं च वर्जयेत् ।
कालिङ्गं नवनीतं च सन्त्यजन्तु विवेकिनः ।।35।।

---

[1]ग प्रति सधर्मो
[2]क ख ग प्रति सम्यक्त
[3]क ख ग प्रति तत्सम्यक्तं
[4]ग प्रति भाग्भवेत
[5]क ख ग प्रति परित्यज्य हिंसा
[6]कखग प्रति स्वयोषिति
[7]कख प्रति सर्वव्रतविशुद्धये
[8]कख प्रति उक्त श्लोक अनुपलब्ध

दिग्व्रतञ्च यथाशक्ति देशव्रतमनुत्तरम् ।
ये धरन्ति महाभव्यास्ते तरन्ति भवार्णवम् ।।36।।

वृथा विराधना हेयाः पञ्चस्थावरकेषु च ।
जीवाहारी तथा जीवो नैव पोष्यो बुधोत्तमैः ।।37।।

सामायिकं[1] व्रतं पूतं पालनीयं जिनोक्तिभिः ।
द्वि–त्रिसन्ध्यं स्वभावेन सर्वपापक्षयङ्करम् ।।38।।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपवासो जगद्धितः ।
तथा श्रीशुक्लपञ्चम्यां व्रतं च सुखराशिदं ।।39।।

भोगोपभोगवस्तूनां श्रावकाचारचञ्चुभिः ।
सदा संख्या प्रकर्तव्या परमानन्ददायिनीम् ।।40।।

पात्रदानं सदा कार्यं कार्यकोटि[2] विधायकम् ।
येन जीवो[3] भवेन्नित्यं सुखीः चात्र परत्र च ।।41।।

पुण्यैर्नवभिरत्रोच्चैर्दातुः सप्तगुणान्विताः ।
ददत्याहारदानं ये पात्रेभ्यो बहुभक्तितः ।।42।।

ते भव्याः सारसौख्यानि देवेन्द्रादि पदं तथा ।
सम्प्राप्य क्रमतो नित्यं प्राप्नुवन्ति सुखं परम् ।।43।।

प्रतिग्रहोच्चैः सुस्थानं पादक्षालनमर्चनम् ।
नतिश्चान्नत्रियोगेषु शुद्धया नवविधंच तत् ।।44।।

श्रद्धा भक्तिश्चतुष्टिश्च सद्विज्ञानमलुब्धता ।
क्षमा सत्वञ्च सप्तेति गुणा दातुः प्रकीर्तिताः ।।45।।

पात्रं मे गृहमायातु तस्मै दानं ददाम्यहम् ।
इत्याशयो भवेदत्र श्रद्धावान् स[4] प्रकीर्तितः ।।46।।

सम्पूर्णाहारपर्यन्तं भक्तिं कुर्वन् गुरोःसुधीः ।
पार्श्वे सन्तिष्ठते योऽसौ भक्तिमान् श्रावकोत्तमः ।।47।।

---

[1]ग प्रति सामायकं
[2]ग प्रति पुण्य इति शब्द अतिरिक्त
[3]क प्रति येन जीनीवो, ग प्रति जेन जीवो
[4]ग प्रति स इति शब्दाभाव

समायाते[1] महापात्रे सन्तुष्टो यो भवेत्तराम् ।
सम्प्राप्ते वा निधानेन[2] स दाता तुष्टिवान् मतः ।।48।।

अभिप्रायं सुपात्रस्य कालदेशवयोगुणम् ।
जानाति यो दयायुक्तः स दाता ज्ञानवान् भवेत् ।।49।।

कार्यं राज्यादिकं मेऽयं करिष्यति महामुनिः ।
वाञ्छेति दानकेनैव यस्य स स्यादलुब्धकः ।।50।।

दानकाले कृते दोषे सुताकान्तादिभिश्च यः ।
नैव कुप्यति पूतात्मा क्षमावान् स बुधैर्मतः ।।51।।

साधिके च व्यये जाते यो गम्भीरः समुद्रवत् ।
स दाता सत्ववान् सूरिः[3] सत्तमैः परिकीर्तितः ।।52।।

एवं त्रिविधपात्रेभ्यो येऽन्नदानं[4] प्रकुर्वते ।
ते भव्याः सुखसन्दोहं संलभन्ते पदे पदे ।।53।।

शुद्धरत्नत्रयोपेतो यो मुनिः सुदयापरः ।
उत्तमं स भवेत्पात्रं यानपात्रोपमं शुभम् ।।54।।

तथा सुश्रावकः[5] पात्रं मध्यमं श्राविकापि च ।
सम्यक्त्वव्रतसंयुक्तो जैनधर्मप्रपालकः ।।55।।

सम्यग्दृष्टिर्जिनेन्द्राणां पादपद्मद्वयेरतः ।
स पात्रञ्च जघन्यं स्याद्भाविमुक्तिवधूवरः ।।56।।

उक्तञ्च
उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यम्।
मध्यम व्रतेन रहितं सुदृशं[6] जघन्यम्।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रम्[7]।
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं हि विद्धिः।।57।।

---

[1]ग प्रति समायातः
[2]क ख प्रतिया निधाने च
[3]क ख ग प्रति शूरि
[4]ग प्रति येनदानम्
[5]ग प्रति सुश्रावका
[6]क प्रति सुदृशाम्
[7]ग प्रति व्रतनिकाययुतां कुपात्राम्

इति त्रिविधपात्रेभ्यो यथाहारस्तथौषधम् ।
दानं भव्यैः प्रकर्त्तव्यं स्वर्गमोक्षसुखार्थिभिः ।।58।।

जिनोक्तशास्त्रदानेन पात्रेभ्यः परमादरात् ।
सम्भवेत्केवलज्ञानी स भव्यः[1] क्रमतो ध्रुवम् ।।59।।

अभयाख्यं सदा देयं पात्रेभ्यो दानमुत्तमम् ।
अन्यत्रापि यथायोग्यं भयशोकविवर्जनम् ।।60।।

उक्तञ्च[2]
ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्व्याधिर्भेषजाद्भवेत् ।
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्भयोऽभयदानतः ।।61।।

तथा राजन्! महाभव्यैः प्रासादः श्रीजिनेशिनाम् ।
ध्वजादिभिर्महाशोभाशतैः कार्यो जगद्धितः ।।62।।

रत्नस्वर्णमयीश्चापि प्रतिमाः पापनाशिनी[3]।
ये कारयन्ति सद्भव्यास्तेषां कीर्तिर्जगत्त्रये ।।63।।

तथा तासां प्रतिष्ठाञ्च गरिष्ठां शर्मकारिणीम् ।
निर्मापयन्ति ये भव्याः शास्त्रोक्तविधिना शुभाम् ।।64।।

पञ्चकल्याणकोपेतां पवित्रां भुवनत्रये ।
ते सम्यग्दृष्टयो लोके लभन्ते परमं सुखम्[4]।।65।।

तथा श्रीमज्जिनेन्द्राणां महास्नपनमुत्तमम् ।
पञ्चामृतैः प्रकुर्वन्ति ते स्नाप्यन्ते सुरैरपि ।।66।।

ये च श्रीमज्जिनेन्द्राणां पूजापापप्रणाशिनीम् ।
प्रकुर्वन्ति सदा भव्या जलाद्यैः सारवस्तुभिः ।।67।।

संस्तुतिञ्च तथा जाप्यं सर्वसम्पद्विधायकम् ।
ते च भव्या जगत्सारं धनं धान्यं सुसम्पदाम् ।।68।।

---

[1]ग प्रति सुभव्यः
[2]ग प्रति 'उक्तञ्च' यह शब्द नहीं है
[3]ग प्रति प्रतिमां पापनाशनाः
[4]ग प्रति सुषम्

पुत्रमित्रकलत्रादिसन्तानं शर्मदायकम् ।
इन्द्रादिपदमासाद्य[1] लभन्ते मुक्तिजं सुखम् ।।69।।

अन्ते भव्यैः प्रकर्तव्यो धीरैः सल्लेखनाविधिः ।
सर्वकर्मक्षयङ्कर्ता दाता स्वर्गापवर्गयोः ।।70।।

तथैकादश भो भव्या भूपते![2] प्रतिमाः शुभाः ।
श्रावकाणां भवन्त्येव शृणु त्वं[3] ताः समुच्यते ।।71।।

दर्शनप्रतिमा पूर्वा द्वितीया व्रतलक्षणा ।
सामायिकाख्यया प्रोक्ता तृतीया मुनिसत्तमैः ।।72।।

चतुर्थी प्रोषधाख्या च सचित्ताख्या च पञ्चमी ।
रात्रिभुक्तिपरित्यागात् षष्ठी च प्रतिमा भवेत् ।।73।।

सप्तमी ब्रह्मचर्याख्या आरम्भ[4]त्यागतोऽष्टमी ।
परिग्रहपरित्यागान्नवमी प्रतिमा मता ।।74।।

नानुमत्याख्यया ज्ञेया प्रतिमादशमी शुभा ।
उदण्डभ्रामरी चैकादशी प्रोक्ता बुधोत्तमैः ।।75।।

एतासां लक्षणञ्चापि क्रमेण शिवकारणम्[5] ।
शृणु त्वं भो! प्रवक्ष्येऽहं श्रीपालः प्रभुसत्तमः ।।76।।

जिनोक्तसप्ततत्त्वानां श्रद्धानं दर्शनं मतम् ।
पञ्चविंशतिदोषाद्यैः परित्यक्तञ्च तच्छुभम्[6] ।।77।।

उक्तञ्च
मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् ।
अष्टौ शङ्कादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ।।78।।

मद्यमांसमधुत्यागः सहोदुम्बरपञ्चकैः ।
अष्टौ मूलगुणाः प्रोक्ता गृहीणां पूर्वसूरिभिः ।।79।।

---

[1]ख प्रति इन्द्रादिपदमास्मद्य
[2]क ख ग प्रति भूपतेः
[3]ख प्रति शृणत्वं
[4]क ख ग प्रति प्रारम्भ
[5]ग प्रति क्रमे शिवकारकणम्
[6]क ख ग तछुभम्

द्यूतमांसं सुरावेश्यापापर्द्धिः परदारतः[1] ।
स्तेयेन सह सप्तेति व्यसनानि त्यजेद् बुधः ।।80।।

उक्तैर्मूलगुणैर्युक्तः सप्तव्यसनवर्जितः ।
यो भव्यसारसम्यक्त्वं पूर्वोक्तं पाति निर्मलम् ।।81।।

अनन्यशरणीभूतः पञ्चश्रीपरमेष्ठिषु ।
संसारभोगदेहेषु विरक्तस्तत्त्वचिन्तनैः ।।82।।

श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोजसेवनैकमधुव्रतः ।
निर्ग्रन्थ[2]मुनिनाथानां सदाराधनतत्परः ।।83।।

दयाधर्मरतो नित्यं सुधी संज्ञानसंयुतः ।
स स्याद्दर्शनिको भव्यः प्रथमः श्रावको भुवि ।।84।।

अणुव्रतानि पञ्चैव त्रिप्रकारं गुणव्रतम् ।
शिक्षाव्रतानि[3] चत्वारि यो धत्ते[4] स द्वितीयकः ।।85।।

सामायिकं त्रिसन्ध्यं यः सङ्करोति च शुद्धधीः ।
रागद्वेषं परित्यज्य श्रावकः स तृतीयकः ।।86।।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्याञ्चतुः पर्वसु सर्वदा ।
उपवासव्रती योऽसौ श्राद्धो लोके चतुर्थकः ।।87।।

फलं दलं जलं बीजं पत्र[5]शाकादिकं तथा ।
नैव भुङ्क्ते सचित्तं यो दयामूर्तिः स पञ्चमः ।।88।।

दिवामैथुननिर्मुक्तः सदा सन्तोषसंयुतः ।
षष्टः स श्रावको रात्रौ चतुर्धाहारवर्जितः ।।89।।

विरक्तः स्त्रीसुखे नित्यं ब्रह्मचर्यव्रतं शुभम् ।
यो विद्यत्ते विशुद्धात्मा सदाऽसौ सप्तमो मतः ।।90।।

---

[1]क ख प्रति पारदारता
[2]ग प्रति निग्रन्थ
[3]क ख प्रति शिष्याव्रतानि, ग प्रति शिख्याव्रतानि
[4]ग प्रति द्धत्ते
[5]क ख प्रति यत्र

सेवाकृष्यादिवाणिज्यं प्रारम्भं न करोति यः ।
हिंसा[1]हेतुः दयामूर्तिः स भवेदष्टमः सुधीः ।।91।।

बाह्येषु दशसु प्रोक्तं परिग्रहगणेषु च ।
अन्तश्चतुर्दशस्वेव विरक्तो नवमो मतः ।।92।।

सावद्यारम्भकेषूच्चैर्विवाहादिषु कर्मसु ।
ददात्यनुमतिर्नैव स च स्याद्दशमो गृही ।।93।।

गृहं त्यक्त्वा गुरोः पार्श्वे ब्रह्मचारी शुचि व्रती ।
भिक्षाचारी सुधीरेक वस्त्रश्चैकादशप्रमः ।।94।।

तस्य भेदद्वयं प्राहुर्मुनयः श्रुतसागराः ।
एकवस्त्रधरः पूर्वो यः कौपीनधरः[2] परः ।।95।।

यः कौपीनधरो भव्यो जिनपादद्वये रतः ।
रात्रौ च प्रतिमायोगं सदा धत्ते स्वशक्तितः ।।96।।

पिच्छं गृह्णाति पूतात्मा स भुङ्क्ते चोपविश्य च ।
पाणिपात्रेण चोदण्ड–भिक्षायां श्रावकालये ।।97।।

इत्यादिकं जिनैः प्रोक्तं श्रावकाचारमुत्तमम् ।
यो भव्यो भावतो नित्यं पालयत्येव दृष्टिभाक् ।।98।।

अच्युतस्वर्गपर्यन्तं स्थानं सम्प्राप्य शर्मदम् ।
चक्रवर्त्यादिभौगौघान्समासाद्य शुभोदयात् ।।99।।

क्रमाद्रत्नत्रयं पूर्णं समाराध्य स निर्मलम् ।
पश्चान्मुक्तिसुखं भुङ्क्ते जरामरणवर्जितम् ।।100।।

इति मत्वा महाभव्यैः शक्तितो भक्तिपूर्वकम् ।
आराध्यो जिनधर्मोऽयं नित्यं स्वर्गापवर्गदः ।।101।।

स श्रीपालः प्रभुः श्रुत्वा जिनधर्मं जगद्धितम् ।
विशेषेण पुनः लात्वा तं नत्वा तुष्टमानसः ।।102।।

---

[1] ग प्रति सिसा

[2] क ख प्रति कोपीनधरः

मुनीन्द्रं प्राह भो स्वामिन्! जगत्त्रयहितङ्करम् ।
ब्रूहि भो करुणासिन्धो! जैनतत्त्वविदाम्बर! ।।103।।

केन पुण्येन जातोऽहं राजपुत्रो महामुने! ।
केन वा कर्मणा कुष्ठी लघुत्वेपि स सेवकः ।।104।।

केन पुण्येन निर्व्याधिः केन पापेन वारिधौ ।
पातितः केन वा तस्मान्निर्गतः कर्मणा प्रभो! ।।105।।

केन पापेन चाण्डालो भणितो नीचमानवैः ।
केन पुण्येन संशुद्धो जातोऽहं राजसत्तमः ।।106।।

केन वा हेतुना प्राप्ता सतीमदनसुन्दरी ।
तत्सर्वं पूर्वजन्म त्वं सुधीर्मे वक्तुमर्हसि[1] ।।107।।

तत्समाकर्ण्य सम्प्राह मुनीन्द्रः श्रुतसागरः ।
शृणु त्वं भो प्रभो! वक्ष्ये सर्वं श्रीपाल! ते भवम् ।।108।।

इहैव भरते क्षेत्रे पवित्रे जिनजन्मभिः ।
विजयार्द्ध गिरौ रम्ये विद्यानामास्पदे शुभे ।।109।।

एकोनषष्टिकं[2] तत्र पुरं रत्नाकराभिधम् ।
उत्तरश्रेणिसंस्थन् तत्पतिर्विद्याधराधिपः ।।110।।

श्रीकान्ताख्यः सती तस्य श्रीमती प्राणवल्लभा ।
एकदा स प्रभुः प्रीत्या श्रीकान्तः कान्तया समम् ।।111।।

श्रीमत्या स्ववने रन्तुं गतस्तत्र वने घने ।
सुगुप्ताचार्यनामानं तपोधामोत्तमक्रियम् ।।112।।

तं विलोक्य प्रभुर्नत्वा[3] मुनेः पादान्तिके स्थितः ।
घोरसंसारदुःखौघपापसन्तापनाशके ।।113।।

तेनोक्तं मुनिना राजन्! दुर्लभं जन्मसत्कुले ।
जैनधर्मस्तु[4] दुष्प्राप्यश्चिन्तामणिरिव प्रभो! ।।114।।

---

[1] ग प्रति वक्तुमहीसि
[2] ग प्रति एकोषष्टिकं
[3] ग प्रति प्रभुर्वचा
[4] क ख ग प्रति जैनधर्मस्त

मुनेर्वचनमाकर्ण्य गृहीतश्रावकव्रतः[1] ।
सुखेन गृहमायातः पापतश्चैकदा पुनः ।।115।।

मिथ्या[2] कुगुरूसङ्गेन त्यक्तजैनव्रतः[3] कुधीः ।
अन्यदा स पुनर्राजा भटैर्सप्तशतैर्युतः ।।116।।

वने महामुनिं वीक्ष्य जलादिकसमायुतम् ।
अयं कुष्ठीति सम्प्राह मूढात्मा पापकर्मणा ।।117।।

तथान्यदा सरस्तीरे मुनीन्द्रं ध्यानतत्परम् ।
समुच्चाल्य जले क्षिप्त्वा पुनः निष्कास्य वेगतः ।।118।।

स्थापयामास तत्तीरे मूढ़चेष्टा त्वनेकधा ।
सदा चपलचित्तस्य मर्कटस्य व्रतोपमा ।।119।।

अन्यस्मिन् दिवसे सोऽपि मूढो राजा विलोक्य च ।
अन्यं तपोधनं[4] धन्यं तपसा क्षामविग्रहम्[5] ।।120।।

मातङ्गोऽयमिति व्यक्तं चक्रे निन्दा च दुःखदा[6] ।
अर्जितं तेन भूपेन महापापं सुदुःसहम् ।।121।।

इत्यादिकं दुराचारं प्रभोर्मत्वा तदा द्रुतम् ।
श्राविका काऽपि शुद्धात्मा सती गुणवती भृशम् ।।122।।

आगत्य श्रीमतीं[7] प्राह भो देवि! त्वत्पतिर्वृथा ।
मिथ्यासङ्गेन सन्त्यज्य जैनधर्मं[8] जगद्धितम् ।।123।।

तथा पीडां मुनीद्राणां चक्रे दुःखशतप्रदाम् ।
एवं सर्वं दुराचारं पत्युः श्रुत्वा सती च सा ।।124।।

[1]ग प्रति स्रावकव्रतः
[2]ग प्रति मिथ्यात्
[3]ग प्रति जेनव्रतः
[4]ग प्रति तपोयं धनं
[5]ग प्रति क्ष्यामविग्रहम्
[6]ग प्रति निन्दां च दुःखदाम्
[7]ग प्रति श्रीमतिम्
[8]ख प्रति जैनं धर्मं, ग प्रति जैनधर्म

श्रीमती जिनसद्धर्मसंसक्ता वा मुनेर्मतिः[1] ।
धिग्राज्यं धिक् राजानं धिग्भोगान् दुःखदायकान् ।।125।।

प्रातरुत्थाय[2] जैनेन्द्रीं दीक्षां दुष्कर्मनाशिनीम् ।
ग्रहीष्यामीति[3] चोद्वेगं चकार गुणशालिनी ।।126।।

श्रीकान्तोऽपि स भूपालो विद्याधरनराधिपः ।
तां विलोक्य सतीं शोकं कुर्वन्तीं दुःखपूरिताम् ।।127।।

सञ्जगाद महादेवि! कथं शोको विधीयते[4] ।
त्वयेत्याकर्ण्य सा प्राह भूपतिं प्रति कोपतः ।।128।।

भो राजन्! गृहवासेन[5] पाशेनेवात्र पूर्यताम्[6] ।
संयमं सङ्ग्रहीष्यामि[7] प्रातरेव सुखप्रदम् ।।129।।

भोगाः रोगोपमा[8] सर्वे त्यज्यन्ते पापकारिणः ।
इत्यादिकं समाकर्ण्य मत्वा तस्या मनोगतम् ।।130।।

राजा जगाद भो भार्ये! मा[9] त्वया क्रियते शुकम्[10] ।
मया दुःसङ्गयोगेन त्यक्त्वा[11] जैनव्रतानि च ।।131।।

चक्रे[12] महामुनीन्द्राणां पीडापापप्रदायिनीम् ।
अतः परं जिनप्रोक्तो धर्मः शर्माकरो महान् ।।132।।

समाराध्यो मया सत्यं पापं च त्यज्यतेऽधुना ।
संयमं मा गृहाण त्वं सती[13]वृन्दशिरोमणे! ।।133।।

---

[1]क ख प्रति मुनैर्मतिः, ग प्रति मुनेर्मतः
[2]ख प्रति प्रातः रुत्थाय
[3]क प्रति गृहीष्यामीति
[4]ग प्रति विधियते
[5]ग प्रति गृहवासेन उक्त शब्द दो बार आया है
[6]ग प्रति वत्र पूर्जताम्
[7]ग प्रति संगृहीष्यामि
[8]ग प्रति रोगापमाः
[9]ग प्रति म
[10]ग प्रति च शब्दातिरिक्त, शुक्
[11]कखग प्रति त्यक्ता
[12]ग प्रति चक्र
[13]क प्रति सताम्, ख प्रति सतीं

गुरोः पार्श्वे शुभे! त्वं मे प्रायश्चितं[1] प्रदापय ।
इत्युक्ते[2] सा प्रसन्नाभूत्सती सद्धर्मवत्सला ।।134।।
अहो प्रभो! तदा सोऽपि श्रीकान्तः शान्तमानसः ।
भूत्वा गत्वा तया सार्धं श्रीमत्या जिनमन्दिरम् ।।135।।

सुन्दरं ध्वजमालाद्यैर्जिनबिम्बैर्मनोहरम् ।
पूजयित्वा जिनानुच्चैर्जलाद्यैः सारवस्तुभिः ।।136।।

तत्र श्रीवरदत्ताख्यं[3] मुनिं नत्वा जगौ प्रभुः ।
भो मुने! पापकर्माऽहं परित्यज्य जिनोदितम् ।।137।।

धर्मं व्रतानि च स्वामिन् कुसङ्गतिवशीकृतः[4] ।
पीड़ां चाऽपि मुनीन्द्राणां कृतवानज्ञानभावतः ।।138।।

त्वं पिता बन्धुरत्रोच्चैस्त्वं गुरुः सर्वतारकः ।
प्रायश्चितं सुधीर्देहि मह्यं पापक्षयाय च ।।139।।

सोऽपि श्रीवरदत्ताख्यो मुनिः संज्ञानलोचनः ।
श्रावकाणां[5] व्रतान्युच्चैस्तस्मै दत्वा पुनर्जगौ ।।140।।

श्रूयतां भो प्रभो! लोके सर्वपापप्रणाशकृत् ।
सिद्धचक्रव्रतं पूतं सर्वसिद्धिविधायकम् ।।141।।

कुरु त्वं पापनाशाय सत्सुखाय च शान्तये ।
व्रतेनैतेन[6] भो राजन्! जायते भूरिसम्पदा[7] ।।142।।

चिन्तामणेः तथा कल्पतरोश्चापि शुभप्रदम् ।
सिद्धचक्रव्रतं पूज्यं देवदेवेन्द्रसज्जनैः ।।143।।

श्रीकान्तः तन्निशम्याह गृहीत[8]श्रावकव्रतः ।
भो स्वामिंस्तद् व्रतं देहि विधिञ्च ब्रूहि मे सुधीः ।।144।।

---

[1]ग प्रति प्रायश्चित्वं
[2]ग प्रति इत्युक्त्वा
[3]ग प्रति श्रीवरदत्तख्यं
[4]ग प्रति वशीकतुः
[5]ग प्रति श्रावकानाम्
[6]ख प्रति व्रतेनोतेन
[7]ग प्रति जायन्ते भूरिसम्पदाः
[8]ख प्रति गृहित

स्वामी श्री वरदत्ताख्यो[1] मुनिः सम्प्राह तद् व्रतम् ।
आषाढे कार्तिकमासे फाल्गुने च सिताष्टमीम् ।।145।।

आदि कृत्वा महाभव्यैर्व्रतं[2] प्रारभ्यते शुभम् ।
तत्र श्रीमज्जिनागारे कृत्वा[3] शोभां ध्वजादिभिः ।।146।।

पञ्चधा रत्नसञ्चूर्णैः[4] कृत्वा नन्दीश्वरोचितम्[5]।
मण्डलोद्वर्तनञ्चारु भव्यानां चित्तरञ्जनम् ।।147।।

पीठं संस्थाप्य तत्रोच्चैः कृत्वा स्नपन[6]मुत्तमम् ।
श्रीजिनप्रतिमानाञ्च सारपञ्चामृतैर्हितैः ।।148।।

तथा श्रीसिद्धचक्रस्य यन्त्रस्यापि महोत्सवैः ।
सर्वसङ्गयुतैर्भव्यैर्भो राजन्! परया[7] मुदा ।।149।।

एवञ्च तद्द्वयं[8] प्रीत्या स्नापयित्वा[9] जगद्धितम्।
मण्डले च चतुर्दिक्षु चतस्रः प्रतिमाः शुभाः ।।150।।[10]

स्थापयित्वा[11] जिनेन्द्राणां सिद्धयन्त्रञ्च सिद्धिदम् ।
कर्पूरवासितस्वच्छ[12]तोयैः पापप्रणाशनैः ।।151।।

क्रियते चन्दनैर्पूजा दुःखसन्तापनाशनैः ।
कर्पूरागरु[13]काश्मीरमिश्रितैः शर्मदायिभिः ।।152।।

अक्षतानां महापुञ्जैः पुण्यपुञ्जै[14]रिवामलैः ।
जातीचम्पकपद्मादि शतपत्रशतोत्करैः[15] ।।153।।

---

[1]ग प्रति वरदत्ताख्यौ
[2]ग प्रति आद्यं कृत्वा महाभव्यैव्रतं
[3]ग प्रति क्वत्वा
[4]क प्रति चूर्णैः, ग प्रति संचूणैः
[5]ग प्रति नन्दाश्वरोचितम्
[6]ग प्रति स्नापनं
[7]ग प्रति परमा
[8]क ख ग प्रति तद्वयं
[9]क ख प्रति श्नापयित्वा
[10]ग प्रति में उक्त श्लोक नही है
[11]ग प्रति स्नापयित्वा
[12]क ख ग प्रति स्वछ
[13]क ख ग प्रति कर्पूरागुरु
[14]ग प्रति पूञ्जै
[15]ग प्रति पत्रशशतोत्करैः

पञ्चप्रकारपक्वान्नैर्नाना नैवेद्यराशिभिः[1] ।
व्यञ्जनैर्रञ्जनै[2]श्चापि तदर्चा रच्यते[3] बुधैः ।।154।।

रत्नकर्पूरसद्दीपैर्मनोध्वान्तहरैः परैः ।
धूपैः कालागरुत्पन्नैर्भाग्यसौभाग्यदायकैः ।।155।।

फलैर्नारङ्गजम्बीरै[4]र्नालिकेराम्रमोचकैः ।
मातुलिङ्गादिभिर्दिव्यैः सारमुक्तिफलप्रदैः ।।156।।

पूजयित्वा जिनानुच्चैः सिद्धांस्त्रैलोक्य समन्तात् ।
अर्घेणाऽपि महाभव्यैः समाराध्य सुभक्तितः ।।157।।

स्वर्णपात्रे[5] पुनः कृत्वा महार्घं जयमालया ।
प्रदक्षिणा प्रदातव्या गीतवादित्रसम्भ्रमैः ।।158।।

स्तुतिं श्रीसिद्धचक्रस्य कृत्वा पापप्रहारिणीम् ।
अष्टोत्तरं[6] शतं जाप्यं कर्तव्यं त्रिजगद्धितम् ।।159।।

तथा श्रुतं जिनेन्द्रोक्तं गुरुणां[7] पादपङ्कजम् ।
समाराध्यं जगत्सारं सम्पदासुखदायकम् ।।160।।

एवं विधिं विधायोच्चैरष्टम्याञ्च दिने दिने ।
पूर्णिमादिनपर्यन्तं विधिरेष विधीयते ।।161।।

कार्यं[8] जागरणं रात्रौ पूर्णिमायाश्च[9] सज्जनैः ।
महासङ्गेन संयुक्तैर्दानमानमहोत्सवैः ।।162।।

उपवासैरिदं कार्यमष्टभिर्व्रतमुत्तमम् ।
एकान्तरेण वा प्रोक्तं यथाशक्तिञ्च सूरिभिः ।।163।।

---

[1]क प्रति नैवेद्यरासिभिः
[2]क ख ग प्रति व्यञ्जनैरञ्जनै
[3]क प्रति रर्च्यते
[4]ग प्रति जींवीरै
[5]ग प्रति स्वर्णपात्र
[6]ग प्रति अष्टौत्तरं
[7]ख प्रति गुरुणा
[8]ग प्रति कयं
[9]ग प्रति पूणिमायाश्च

अष्टौ दिनानि सन्धार्यं ब्रह्मचर्यं सुनिर्मलम् ।
सचित्तं वर्ज्जनीयञ्च प्रारम्भस्त्यज्यते[1] बुधैः ।।164।।

अमारिस्तु तथा कार्या[2] सर्वसत्वहितङ्करा[3]।
प्रतिपद्दिवसे कृत्वा[4] जिनसिद्धार्चनं शुभम् ।।165।।

पात्रदानं विधायोच्चैर्निधानं सारसम्पदाम् ।
सज्जनैः सह कर्त्तव्या पारणा परमोदयैः ।।166।।

व्रतं श्रीसिद्धचक्रस्य शुभमेतज्जगद्धितम्।
उत्कृष्टेन समाराध्यं वर्षैर्द्वादशभिर्बुधैः[5]।।167।।

वर्षे वर्षे त्रिवारञ्च नन्दीश्वरमहोत्सवे[6]।
षट्वर्षैर्मध्यमं ज्ञेयं जघन्येन त्रिवार्षिकम् ।।168।।

पश्चाद्युद्यापनं प्राहुर्मुनयः परमागमे ।
तत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां मन्दिरं शर्ममन्दिरम्[7]।।169।।

कारयित्वा महाभव्यैर्ध्वजाद्यैः सर्वसुन्दरम् ।
पवित्रं भव्यजनानन्दबीजं मुक्तिपदप्रदम्[8]।।170।।

रत्नस्वर्णमयीश्चारू प्रतिमाश्च[9] मनोहराः ।
तत्प्रतिष्ठाः[10] प्रकर्तव्याः महती[11] शास्त्रयुक्तितः ।।171।।

चतुर्विधमहासङ्गैर्दानमानशतैरपि ।
प्रतिष्ठान्ते[12] जिनेन्द्राणां सारपञ्चामृतोत्करैः ।।172।।
कृत्वा महाभिषेकञ्च देयं दानं द्धितम् ।
चन्दनागरुकाश्मीरं स्थापयेच्छ्रीजिनालये ।।173।।

---

[1]ग प्रति त्तज्यते
[2]ग प्रति कार्मा
[3]क प्रति सलहितङ्करा
[4]क प्रति प्रतपद्दिवसे, ग प्रति प्रतितिपद्दिवसे कत्वा
[5]ग प्रति द्वांदास्यभिर्बुधैः
[6]क प्रति महोत्सवैः, ख प्रति महोत्सवै
[7]ग प्रति मन्दिरा शर्ममन्दिराम्
[8]खग प्रति उक्त पंक्ति नहीं है, ग प्रति में अर्द्ध श्लोक गतः ऐसा लिखा है
[9]ग प्रति 'रत्नस्वर्णमयीश्चारू प्रतिमाश्च' उक्त पंक्ति दो बार आई
[10]कखग प्रति तत्प्रतिष्टा
[11]कख प्रति महति
[12]कखग प्रति प्रतिष्टान्ते

धौतवस्त्राणि चित्राणि शर्मकारीणि भूरिशः ।
घण्टाकन्सालसत्तालकलशछत्रचामरान्[1] ।।174।।

भृङ्गारीमत्र पीठानि चन्द्रोपकमुखानि च ।
धूपस्यदहनान्युच्चैरासनानि पृथक्पृथक् ।।175।।

द्वादशैव प्रमाणानि दीयन्ते जिनमन्दिरे ।
मुनिभ्यः पुस्तकान्युच्चैर्जैनसिद्धान्त[2]सिद्धये ।।176।।

तथा कमण्डलूत्कृष्टपिच्छकादीनि शर्मणे ।
तथा कालानुसारेण यथायोग्यं च दीयते ।।177।।

वस्त्राणि ब्रह्मचारिभ्यश्चार्यिकाभ्यो विशेषतः ।
नवीनानि पवित्राणि सारसूक्ष्माणि शर्मणे[3]।।178।।

श्रावकश्राविकाणाञ्च महाविनयपूर्वकम् ।
भोजयित्वा महाभोज्यं वस्त्रताम्बूलचन्दनैः ।।179।।

कृत्वा सम्माननं तेषां याचकानाञ्च तर्पणम् ।
एवं कृत्वा विधातव्यमुद्योतं[4] जिनशासने ।।180।।

उत्कृष्टेन समादिष्टमुद्यापनमिदं शुभम् ।
यथाशक्तिञ्च[5] कर्तव्यं शान्तिकादिकमुत्तमम् ।।181।।

स्तोकश्चापि कृतो धर्मः स्वभावेन जगद्धितः ।
करोति विपुलं सौख्यं तस्मात् स क्रियते सदा ।।182।।

सर्वथा नो भवेच्छक्तिस्तदा द्विगुणमाचरेत्[6]।
व्रतं श्रीसिद्धचक्रस्य सर्वथा सुख[7] कारणम् ।।183।।

देवेन्द्रादिपदं यस्माद्भव्याः सम्प्राप्य निर्मलम्[8]।
लभन्ते शाश्वतं स्थानं तद् व्रतं जयतादिदम् ।।184।।

---

[1]क प्रति चामरैः, ख प्रति चामरां, ग प्रति चामरम्
[2]ग प्रति सिद्धात
[3]ग प्रति शर्माण
[4]ग प्रति विधातव्यमुद्योतंकं
[5]ग प्रति यथाशाक्ति च
[6]ग प्रति द्विगुणमाचरत्
[7]ग प्रति सुषु
[8]क ख प्रति निर्मलाम्

व्रतेनैतेन भो राजन्! सिद्धचक्रस्य भूतले।
अनन्तास्ते शिवं प्राप्ताः प्रयास्यन्ति[1] च भूरिशः ।।185।।

ततो भव्यैर्व्रतं पूतं समाराध्यमिदं शुभम् ।
शक्तितो भक्तितो नित्यं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ।।186।।

नन्दीश्वरविधानस्य महिमा भुवनातिगः[2] ।
वर्णितुं शक्यते नैव फणीन्द्राद्यैरपि[3] प्रभो! ।।187।।

एवं श्रीवरदत्ताख्य मुनीन्द्रेण सुखाकरम् ।
व्रतं श्रीसिद्धचक्रस्य प्रोक्तं श्रुत्वा तदा हितम् ।।188।।

स श्रीकान्तो महाराजो[4] विद्याधरमहीपतिः ।
श्रीमत्या सह सन्तुष्टो मुनिं नत्वा तमुत्तमम् ।।189।।

लात्वा व्रतं जगत्पूज्यं गृहं गत्वा प्रमोदतः ।
विधाय विधिना धीमानुद्यापनसमन्वितम् ।।190।।

भुक्त्वा[5] राज्यं चिरं सोऽपि प्रान्ते संन्यासपूर्वकम् ।
शतारं स्वर्गमासाद्य सञ्जातः सुरसत्तमः ।।191।।

उपपादिकशय्यायां कोमलायां विशेषतः ।
अन्तर्मुहूर्तमात्रेण सम्पूर्णनवयौवनः ।।192।।

देवाङ्गवस्त्रसंयुक्तो दिव्याभरणभूषितः ।
लसत्किरीट[6]माणिक्यप्रभानिर्जित[7]भास्करः ।।193।।

स्रग्वी स्वभावनिर्दोषो जङ्गमो वा सुरद्रुमः ।
किमिदं स्थानकं दिव्यं महासन्तोषदायकम् ।।194।।

कोऽहं कस्मात् समायातो दिव्यरत्नमहीतले।
इत्यादिकं स्मरंश्चित्ते हर्षनिर्झरविग्रहः।।195।।

---

[1]ग प्रति पूजास्यन्ति
[2]क प्रति भुवनातिगाः, ग प्रति भुविनागतिः
[3]ग प्रति फणान्द्राद्यैरपि
[4]ग प्रति महाराज्यो
[5]क ख ग प्रति भुक्ता
[6]क ख ग प्रति लसत्तिरीट
[7]ग प्रति र्मर्णिक्यप्रभार्निजित

तदा जातावधिर्मत्वा[1] सर्वं पूर्वभवार्जितम् ।
दानपूजातपः शीलं परोपकृतिसंयुतम् ।।196।।

पुनः पुनः प्रशस्योच्चैः शासनं[2] श्रीजिनेशिनाम् ।
सप्त[3]धातुविहीनोऽपि वातपित्तविवर्जितः ।।197।।

स तत्रस्थसुधाकुण्डे स्नात्वा रीत्या प्रमोदतः ।
तत्रस्था[4] श्रीजिनेन्द्राणां स्वर्णचैत्यालयेषु च[5]।।198।।

शाश्वतीः पञ्चरत्नानां प्रतिमाः पापनाशनाः ।
सङ्कल्पमात्रसम्प्राप्तसारगन्धादिवस्तुभिः ।।199।।

पूजयामास पूतात्मा चकार स्तुतिमुन्नताम् ।
स्वर्गादिसुखसम्पत्तिदायिनीं भव्यदेहिनाम् ।।200।।

ततः सिंहासनारुढः सन्नतान् स्वसुरान् सुधीः ।
प्रीत्या सम्भावयामास स्ववाक्यामृतवर्षणैः ।।201।।

रूपलावण्यसन्दोहैर्देवीवृन्दैः[6] सहोत्तमान् ।
स भुङ्क्ते स्म महाभोगान् शब्दमात्रसुखाकरान् ।।202।।

देवीगणादिर्भियुक्तः कदाचिन्निजलीलया ।
साररत्नविमानस्थो ध्वजाद्यैः परिमण्डितः ।।203।।

गत्वा शाश्वतसत्क्षेत्रभूमिषु[7] स्वशुभोदयात् ।
अणिमादि गुणोपेतो महाविभवसंयुतः ।।204।।

प्रत्यक्ष[8]केवलज्ञानभास्करान् श्रीजिनेश्वरान्[9]।
सुधीः सम्पूजयामास लोकालोकप्रकाशकान् ।।205।।

कदाचिन्मेरूशैलादि जिनालयशतेषु च ।
महाबिम्बानि रत्नानां स सुधीश्चार्चति[10] स्म वैः ।।206।।

---

[1]ग प्रति जाताविधिर्मत्वा
[2]क प्रति शाशनं
[3]ग प्रति साप्त
[4]ग प्रति तत्रस्थ
[5]ग प्रति चः
[6]ग प्रति सन्दोहैर्देवृन्दैः
[7]क ख प्रति भूमीषु, ग प्रति भूमीषू
[8]ग प्रति प्रतक्ष
[9]ग प्रति श्रीजिनेश्वरा
[10]ख प्रति चार्च

कदाचिन्निजदेवीभिः क्रीडया सुरसत्तमैः ।
स्वयम्भूरमणद्वीपपर्यन्तं स्म प्रयाति सः ।।207।।
एवमष्टादशप्रोक्तसागरान् प्रति सत्सुखम् ।
सिद्धचक्रार्चनादुच्चैर्भुक्तवान् परमोदयः ।।208।।

अष्टादशसहस्राब्दैर्मानसाहारमाहारत् ।
महासन्तोषसन्दोहकारकं[1] पुण्यपाकतः ।।209।।

मासैर्नवभिरेकं हि सुखाश्वासं मनाक् किल ।
गृह्णाति स्म सुधीः सोऽपि रोगशोक[2]विवर्जितः ।।210।।

श्रीमती सा निदानेन भ्रान्त्वा संसारकानने ।
अन्ते देवी बभूवोच्चैस्तस्यैव प्राणवल्लभा ।।211।।

इति स्वपुण्यपाकेन सुखं भुक्त्वा चिरं प्रभो! ।
तस्मात्स्वर्गात् समागत्य त्वं श्रीपालो बभूविथ ।।212।।

सा श्रीमती चरीदेवी स्वर्गे ते च मनः प्रिया ।
अत्रागत्य समुत्पन्ना सती मदनसुन्दरी ।।213।।

क्षिप्तं पापं त्वया पूर्वं सिद्धचक्रप्रपूजनात् ।
तथाऽपि गन्धमात्रञ्च किञ्चित्पापं[3] त्वयि स्थितम् ।।214।।[4]

श्रीकान्ताख्यभवे[5] पूर्वं श्रावकव्रतसंग्रहात् ।
त्वया प्राप्तं पितुः राज्यं लघुत्वेऽपि प्रभो शृणु ।।215।।

व्रतभङ्गाद्राज्यभङ्गो मुनेः कुष्ठीति[6] जल्पनात् ।
कुष्ठी त्वमपि सञ्जातः सेवकैः सह भूपते! ।।216।।

वरदत्तमुनीन्द्रेण कृपारुन्द्रेण धीमता[7] ।
प्रायश्चित्तं च ते[8] दत्तं तेन जातोऽसि सुन्दरः ।।217।।

---

[1]ख प्रति महासन्दोहकारकं सुखानां पुण्यपाकतः
[2]ग प्रति शेक
[3]कख प्रति कञ्चित्पापं
[4]ग प्रति उक्त श्लोक नही है
[5]ग प्रति क्षिप्तं पापं त्वया
[6]ग प्रति व्रतभंद्राज्यभंगो मुनेः कुष्टित्व
[7]कख प्रति धीमताम्
[8]ग प्रति चित्ते

मुनेः सरसि पातेन पातितस्त्वं[1] पयोनिधौ ।
निष्कासितो[2] मुनिस्तस्मात्तडागाच्च त्वया यतः ।।218।।
समुत्तीर्य समुद्रं त्वं पारेलग्नस्ततो ध्रुवम् ।
मुनेश्चाण्डालवाक्येन चाण्डालो घोषितस्तकैः ।।219।।

वरं हालाहलं भुक्तं वरं प्राणविसर्जनम् ।
असिधेनुकया राजन्नग्नि[3]पातोऽपि सुन्दरम् ।।220।।

सिंहव्याघ्रादिकाश्लोषे[4] वरं वा[5] पतनं जले ।
नैव निन्दा[6] मुनीन्द्राणां शीलसंयमशालिनाम् ।।221।।

हालाहलादिकं दुःखं क्षणं प्राणविसर्जने ।
मुनीनां निन्दनं दुखं करोत्यन्य[7] भवे भवे ।।222।।

तस्माद्भो भव्यराजेन्द्र श्रीपाल! स्वगुणोज्वल! ।
प्राणत्यागेऽपि कर्तव्या[8] नैव निन्दा तपस्विनाम् ।।223।।

पुनः श्रीजिननाथोक्तश्रावकाचारपालनात् ।
स्वराज्यं च विशेषेण त्वं सम्प्राप्तोऽसि सुन्दरम् ।।224।।

एवं भवावलीं[9] श्रुत्वा तदा श्रीपाल भूपतिः ।
श्रुतसागरनामानं मुनीन्द्रं तं प्रणम्य च ।।225।।

महाभक्तिभरेणाशु परमानन्दनिर्झरः ।
पुनः श्रीसिद्धचक्रस्य व्रतं त्रैलोक्यतारणम् ।।226।।

सुधीर्जग्राह भव्यात्मा मनोवाक्काययोगतः ।
दुर्गत्यादि क्षयङ्कारि स्वर्गमोक्षादि साधनम् ।।227।।

तत्प्रभावं समाकर्ण्य ते सप्तशतसेवकाः ।
राजानश्च परे सर्वे तथा श्रीपालनन्दनाः ।।228।।

---

[1]कख प्रति पतितस्त्वं
[2]कख प्रति निःकाशितो, ग प्रति निःष्काशितो
[3]ग प्रति राजनग्नि
[4]ख प्रति श्लोषो, ग प्रति श्लषो
[5]ग प्रति का
[6]ग प्रति निंद्रा
[7]ख प्रति करोत्यन्न, ग प्रति करोत्य
[8]क प्रति ककर्तव्या
[9]ग प्रति भव्यवलीं

कन्दर्पसुन्दरी मुख्याः तस्य देव्यो मनोहराः ।
पौराः[1] सर्वेऽपि ते शूरास्तथा[2] पत्तनयोषिताः ।।229।।

सर्वे ते भूभुजा सार्धं सिद्धचक्रस्य सद्व्रतम् ।
स्वीचक्रुः परमानन्दाद्यथा राजा तथा प्रजा ।।230।।

इत्थं श्रीजिनसिद्धचक्रविलसत्पूजा प्रभावोत्तमम् ।
स श्रुत्वा[3] श्रुतसागरेण मुनिना प्रोक्तं स्वजन्मान्तरम् ।।
सन्तुष्टो नतमस्तको गुरुजने श्रीपालनामा नृपो ।
लात्वा तद्व्रतमुत्तमं परिजनैः सम्प्राप्तवान् पत्तनम् ।।231।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशय [4]प्राप्ते श्रीपालमहाराजचरिते [5] भट्टारक श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य [6] श्रीसिंहनन्दिब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीपालमहाराजमदनसुन्दरी पुनर्धर्मश्रवणपूर्वकं भवान्तरव्यावर्णनो नामाष्टमोऽधिकारः ।।8।।

---

[1]ग प्रति पौर
[2]ग प्रति स्वरास्तथा
[3]कख प्रति संश्रुत्वा, ग प्रति संस्तुत्वा
[4]खग प्रति पूजातिशयं
[5]कग प्रति चरित्रे
[6]ग प्रति शिख्याचार्य

नवमोधिकारः

अथ श्रीपालराजेन्द्रो गृहमागत्य पुण्यधीः ।
महापरिच्छदैः सार्धं स्वान्तः[1] पुरसमन्वितः ।।1।।

अष्टाह्निकमहापर्वे महोत्सवमकारयत् ।
तदा चम्पापुरी मध्ये महाशोभां[2] ध्वजादिभिः ।।2।।

कारयित्वा सुधीश्चाष्टौ दिनानि विधिपूर्वकम् ।
जिनेन्द्रप्रतिमानाञ्च सिद्धचक्रस्य भक्तितः ।।3।।

पञ्चामृतप्रवाहैश्च विधाय स्नपनं महत् ।
पूजामष्टौ दिनान्युच्चैः सञ्चकार महोत्सवैः ।।4।।

सोपवासादिकं सर्वं पुनस्तद्व्रतमुत्तमम् ।
कृत्वा[3] चोद्यापनं चक्रे महाविभवशक्तितः ।।5।।

तत्र श्रीमज्जिनेद्राणां प्रासादान्नुन्नतान्[4] शुभान् ।
रत्नतोरणसंयुक्तान् ध्वजाद्यैः परिशोभितान् ।।6।।

कारयित्वा जिनेन्द्राणां प्रतिमाः सुमनोहराः ।
स्वर्णरत्नमयीर्दिव्याः परमानन्ददायकाः ।।7।।

तत्प्रतिष्ठां[5] गरिष्ठाञ्च महासङ्घेन संयुताः ।
कारयामास सद्भक्त्या[6] दानमानशतैः प्रभुः ।।8।।

पूर्वोक्तकलशादींश्च रत्नस्वर्णादि निर्मितान् ।
ढौकयामास भूपालो भक्तितो जिनमन्दिरे ।।9।।

चतुर्विधमहासङ्घ वात्सल्यं सुमनोहरम्[7] ।
चकार परमानन्दात् स्वयं चापि महीपतिः ।।10।।

---

[1]ग प्रति सान्तः
[2]ग प्रति महासोभां
[3]क ख प्रति कृत्वो, ग प्रति कृत्व
[4]ग प्रति प्रासादान्नुन्नतान्
[5]क ख प्रति तत्प्रतिष्टां
[6]क ख प्रति सद्भूत्या
[7]कख प्रति शुमनोहरम्

दारिद्रयं याचकादीनां भूरिस्वर्णादि दानतः ।
चोदयामास भव्यात्मा जिनपूजामहोत्सवैः ।।11।।

सत्यं श्रीमज्जिनेन्द्राणां प्रतिष्ठादिषु[1] कर्मसु ।
सम्भवेत्पूजनन्नित्यं जगज्जीवनमुत्तमम् ।।12।।

इत्यादिकं जिनैः प्रोक्तं दानपूजादिलक्षणम् ।
स श्रीपालो महाराजो धर्मं कुर्वन् सुखं स्थितः ।।13।।

तथा तस्य नरेन्द्रस्य संक्षेपेण निगद्यते ।
सम्पदा शर्मदा सर्वं सज्जनानां मनः प्रिया ।।14।।

सार्धं मदनसुन्दर्या मुख्यया तस्य सम्मताः ।
साधिकाष्टसहस्राणि देव्योऽभूवन् गुणोज्ज्वलाः[2] ।।15।।

अवन्ध्याः शुभगाः सर्वा वस्त्राभरणभूषिताः ।
स्वपतेः शर्मदा[3] नित्यं सत्यं कल्पलतोपमाः ।।16।।

दानपूजाव्रतोपेताः किं वर्ण्यन्ते च तद्गुणाः ।
याः सत्यो निजपुण्येन जाता वा धर्ममूर्तयः ।।17।।

पुत्रा मदनसुन्दर्याश्चत्वारो गुणमण्डिताः ।
पृथ्वीपालोऽथ भूपालः सारथिश्चित्रकोऽभवन् ।।18।।

तथा मदनमञ्जूषा सा प्रसूत[4] सुतसप्तकम् ।
बभूवु[5]र्गुणमालायाः[6] पञ्चपुत्राः सुविक्रमाः ।।19।।

द्वादशैवं सहस्राणि शतान्यष्टौ च शर्मदाः ।
पुत्रास्तस्य कुलोद्योत[7]कारिणः प्रविरेजिरे ।।20।।

भूपतयः सहस्राणि[8] सेवन्ते स्म सुभक्तितः ।
श्रीपालं तं महाराजं किरीटादियुतानि[9] च ।।21।।

---

[1]क प्रति प्रतिष्टादिषु
[2]कखग प्रति गुणोज्वलाः
[3]कख प्रति सर्मदा
[4]कखग प्रति सा सूत
[5]ग प्रति बभूर्वु
[6]कखग प्रति गुणमालायां
[7]ग प्रति कुलोयोत
[8]ख प्रति सहश्राणि
[9]क प्रति तिरीटादिद्युतानि, ख प्रति तिरीटादियुतानि, ग प्रति तिरीटादियुतानि

द्वादशोरूसहस्राणि[1] गजाः प्रोत्तुङ्गविग्रहाः ।
सर्ववस्तुशतैः पूर्णाः रथाः[2] पूर्णमनोरथाः ।।22।।

नानादेशसमुत्पन्नाः पञ्चवर्णैर्विराजिताः ।
अश्वा द्वादशलक्षाणि तस्याभूवन् महीपतेः ।।23।।

कोटयो द्वादशप्रोक्तास्तस्योच्चैः सुभटोत्तमाः[3] ।
शत्रूणां त्रासने शूराः क्रूरा वा यमदूतकाः ।।24।।

तथा देशसहस्राणि[4] ग्रामकोटियुतानि च ।
सर्ववस्तुभृतान्युच्चैर्निधानानीव रेजिरे ।।25।।

सारसद्रत्नमाणिक्यस्वर्णमुक्ताफलानि च ।
वर्ण्यन्ते केन तस्याऽत्र सागरस्येव पुण्यतः ।।26।।

इत्यादि सम्पदासारैः स श्रीपालो महाप्रभुः ।
निष्कटकं[5] महाराज्यं प्रकुर्वन् पालयन् प्रजाः ।।27।।

सारभोगशतान्युच्चैः प्रमदावृन्दसेवितः ।
भुञ्जानः पुण्यपाकेन चक्रवर्तीव निश्चलः ।।28।।

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तं पवित्रं क्षेत्रसप्तमम् ।
सिञ्चयामास पूतात्मा सद्दानामृतवर्षणैः ।।29।।

इत्यादिकं जिनैर्प्रोक्तं धर्मं कुर्वन्तमुत्तमम् ।
तं भूपतिं समालोक्य तत्प्रजा च तथाकरोत् ।।30।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णाद्विजातयः ।
तस्य राज्ये तदा सर्वे चक्रुर्धर्मं दयायुतम् ।।31।।
स धर्मविजयी राजा श्रीपालो जिनधर्मभाक् ।
दानपूजादिकं कुर्वन् परोपकृतितत्परः ।।32।।

विधाय सुचिरं राज्यं प्राज्यं गम्भीरमानसः ।
प्रतापनिर्जितारातिः सज्जनानां सुवत्सलः ।।33।।

---

[1]क ग द्वादशेरूसहस्राणि, ख प्रति द्वादर्शेरूसहश्राणि
[2]ग प्रति पूर्णाः रथाः इति शब्दाभाव
[3]ख प्रति शुभटोत्तमाः
[4]क प्रति सहश्राणि
[5]क ख प्रति निकंटकं, ग प्रति निःकंटकं

एकदा च वने वीक्ष्य स दयालुः स्वभावतः ।
तडागे कर्दमे[1] मग्नं मृतं मातङ्गमुन्नतम् ।।34।।

सुधीः सञ्चिन्तयामास स्वचित्ते भव्यसत्तमः ।
अहो! महागजेन्द्रोऽयं यथा मग्नोऽत्र कर्दमे ।।35।।

तथा सर्वे[2] जना मूढो निर्मग्नो मोहकर्दमे ।
मे मे कुर्वन् तथा मूढो[3] प्रयाति यममन्दिरम् ।।36।।

अस्मिन्ननादि संसारे धन्यास्ते पुरुषोत्तमाः[4] ।
मोहशत्रुं विनिर्जित्य ये प्रापुः परमं पदम्[5] ।।37।।

अध्रुवं दृश्यते सर्वं यत्किञ्चित् परमार्थतः[6]।
धनं धान्यं[7] सुवर्णञ्च मणिमुक्ताफलादिकम् ।।38।।

पुत्रमित्रकलत्रादि यानजं पानमुत्तम्[8]।
सम्पदाविविधा राज्यं पत्तनं धनसङ्कुलम् ।।39।।

जीवितं यौवनं पानं शयनं भवनं तथा ।
शरीरं सज्जनो बन्धुः कुटुम्बं[9] दुर्जनोऽपि च ।।40।।

तत्सर्वं क्षणविध्वंसि चञ्चलायाश्च चञ्चलम् ।
इत्थं मत्वा जगद्विश्वं क्व वा प्रीतिर्विधीयते ।।41।।

शरणं नास्ति संसारे जन्तूनां दुःखसागरे[10] ।
इन्द्रो वा धरणेन्द्रो वा[11] चक्री वा कः परो नरः ।।42।।

सम्प्राप्ते मरणे घोरे विद्यमाने च सज्जने ।
लोहं वा चुम्बकः कर्म जीवं नीत्वा प्रयात्यलम् ।।43।।

---

[1]ग प्रति कदेसे
[2]क प्रति सर्वे
[3]क ख प्रति यथा मेंढ्या, ग प्रति यथा मेंडः
[4]ग प्रति पुरुषोत्तमां
[5]ग प्रति पदाम्
[6]ग प्रति परमर्थन्
[7]क प्रति धानं
[8]ख ग प्रति पानमुन्नतम्
[9]क ख ग प्रति कुटम्बं
[10]क प्रति दुःखसगरे
[11]क प्रति 'वा' शब्दाभाव

सिंहस्याग्रे[1] मृगस्येव पतितस्यापि कानने ।
संसृतौ शरणं नास्ति जीवानां सरतां तराम् ।।44।।

दर्शनज्ञानचारित्रं पवित्रं भुवनत्रये ।
केवलं शरणं जन्तोर्नान्यं[2] मान्यं बुधोत्तमैः ।।45।।

संसारो दुःसहो ज्ञेयश्चतुर्गतिसमन्वितः ।
यत्र जीवाः स्वकृत्येन संसरन्ति निरन्तरम् ।।46।।

छेदनं भेदनं शूलारोहणं ताडनादिकम् ।
नारकाणां[3] महादुःखं कविवाचामगोचरम् ।।47।।

पशूनां वधबन्धादि दुःखं संवर्तते सदा ।
क्षुधातृषोष्ण[4]शीतोत्थं पापतः पारवश्यकम्[5]।।48।।

इष्टानाञ्च वियोगेन दुष्टसंयोगतस्तथा ।
रोगाशोकादिकं[6] दुःखं मनुष्याणां विशेषतः[7] ।।49।।

देवानामपि संसारे जायते दुःखमुत्कटम् ।
इन्द्रादीनां समालोक्य विभूतिं मानसं दुःखम्[8] ।।50।।

एको जीवोऽत्र पापेन दुःखमश्नाति[9] नित्यशः ।
एकः स्वर्गादिजं सौख्यं स्वपुण्यपरिपाकतः ।।51।।

गत्यन्तरं प्रयात्येव[10] जीवत्येकोऽपि कर्हिचित् ।
नापरः कोऽपि तस्यास्ति निश्चयेन द्वितीयकः ।।52।।

रत्नत्रयं समासाद्य कोऽपि भव्यमतल्लिकः ।
कर्मक्षयं विधायोच्चैरेको यात्येव तत्पदम्[11]।।53।।

---

[1]क ख प्रति सिंहस्येन, ग प्रति सिंहासने
[2]क ख प्रति जन्तोनान्य
[3]ग प्रति नारकानां
[4]क ख प्रति तृषोष्न, ग प्रति तृषोहम
[5]क ख प्रति पारवश्यकः
[6]ग प्रति सोकादिकं
[7]ग प्रति विशाषतः
[8]क ख ग प्रति खरम्
[9]ग प्रति दुःखमस्नाति
[10]ग प्रति प्रयात्येको
[11] ग प्रति तत्प्रदम्

अन्यो जीवोऽयमत्युच्चैः[1] सर्वत्र मिलितोऽपि च ।
नीचोच्चसर्वदेहेषु पाषाणस्थित[2] हेमवत् ।।54।।

स्वशक्त्या चेति जानाति भव्यात्मा जिनभाषितम् ।
संसाराम्बुधिमुत्तीर्य स प्रयाति शिवास्पदम्[3]।।55।।

अन्यत्वं चात्मनो नित्यं ततो भव्यैर्जिनोक्तिभिः ।
सावधानैर्विरागेण चिन्तनीयं स्वचेतसि ।।56।।

अशुचित्वं शरीरस्य भावयामास शुद्धधीः[4]।
सप्तधातुमलैर्युक्तं शरीरं तापकं सदा ।।57।।

चन्दनागरुकर्पूरधौतवस्त्रादिकं शुभम् ।
पुष्पदामादिकं शीघ्रं यत्सङ्गात्तादृशं[5] भवेत् ।।58।।

कथं सन्तः प्रकुर्वन्ति प्रीतिमत्र[6] शरीरके ।
चर्मास्थिसम्भवे नित्यं चाण्डालगृहसन्निभे ।।59।।

आस्रवः कर्मणां जन्तोर्जायते[7] दुःखराशिदः ।
मिथ्यात्वपञ्चकैः कष्टैरव्रतैर्द्वादशप्रमैः[8] ।।60।।

कषायैः पञ्चविंशत्या योगैः पञ्चदशात्मकैः[9]।
भग्ननौरिव जीवोऽसौ नीयते तै रसातलम् ।।61।।
संवरोऽपि भवेन्नित्यं भव्यानां शर्मकारणम्[10]।
निर्जितेषु तथा तेषु मिथ्यात्वादिकशत्रुषु ।।62।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जैनतत्त्वविदाम्बरैः ।
जित्वा नानास्रवानाशु संवरः संविधीयते ।।63।।

---

[1]ग प्रति जीवोयमित्युच्चैः
[2]ख प्रति स्थिति
[3]ग प्रति शिवाशदम्
[4]क ख प्रति सुद्धधीः
[5]क प्रति यत्सङ्गातादृशं, ख प्रति यत्सङ्गात्वादृशं
[6]ग प्रति प्रीतिमत्रे
[7]क प्रति जन्तोजायन्ते
[8]ग प्रति कष्टैःरव्रतैद्वादशप्रमैः
[9]ग प्रति पञ्चदस्यात्मकैः
[10]क प्रति शर्मकारणाम्

निर्जरा कर्मणां कार्या तपोभिर्द्वादशात्मकैः[1] ।
बाह्याभ्यन्तरभेदाभ्यां जिनोक्तैः शर्मकारिभिः ।।64।।

पञ्चेन्द्रियाणि निर्जित्य ये कुर्वन्ति जिनोदितम् ।
तपस्ते संसृतौ धन्या मनुष्याः परमार्थिनः ।।65।।

लोकोऽयं पुरुषाकारो वर्तते शाश्वतः सदा[2] ।
न केनाऽपि कृतश्चास्य हर्ता नैव कदाचनः ।।66।।

सप्तरज्जुरधोभागे मध्ये रज्जुप्रमः प्रथुः ।
ब्रह्मान्ते पञ्चरज्जुश्च मस्तके रज्जुमानभाक्[3] ।।67।।

पूर्वापरविभागेन भेदोऽयं समुदाहृतः ।
दक्षिणोत्तरतो रज्जुसप्तकः सर्वतो मतः ।।68।।

चतुर्दशभिरुत्सेधो रज्जुभिः परिकीर्तितः ।
षड्भिर्जीवादिभिर्द्रव्यैः संभृतश्चाष्टभूमिभाक् ।।69।।

त्रिचत्वारिंशतासार्धं रज्जूनां[4] च शतत्रयम् ।
घनाकारेण संज्ञेयस्त्रिभिर्वातैस्तु वेष्टितः ।।70।।

सप्तश्वभ्रेषु पापेन[5] पच्यन्ते नारकाः सदा ।
सन्ति मध्ये मनुष्याद्याः स्वर्गेषु[6] सुरसत्तमाः ।।71।।

मस्तके तस्य तिष्ठन्ति[7] सिद्धास्त्रैलोक्यमङ्गलम् ।
दुष्टाष्टकर्मनिर्मुक्ताः प्रसिद्धाष्टगुणोज्ज्वलाः ।।72।।
येषां स्मरणमात्रेण पापसन्तापसञ्चयः ।
तमो वा भास्करेणोच्चैः क्षयं याति क्षणार्द्धतः ।।73।।

अतः परमलोकश्च सर्वः शून्यस्वभावकः ।
अनन्तानन्तको वीरस्वामिना सम्प्रकीर्तितः ।।74।।

---

[1]क प्रति तपोभिद्वादशात्मकैः
[2]क प्रति जगद्
[3]क प्रति सर्वत्र रज्जु के स्थान पर रजु
[4]ख प्रति रजूनां
[5]ग प्रति पायेन
[6]ग प्रति सर्वेषु
[7]क ख ग प्रति तिष्टन्ति

बोधिः स्याद्दर्शनज्ञानचारित्रप्राप्तिरञ्जसा ।
सा दुर्लभाऽत्र संसारसागरे सरतां नृणाम् ।।75।।

यथा चिन्तामणेः प्राप्ति शर्मसन्दोहदायिनी[1] ।
मत्वेति च समाराध्यं रत्नत्रयमखण्डितम् ।।76।।

धर्मश्चापि जिनेन्द्राणां दुर्लभो भुवनत्रये ।
क्षमादि[2] दशधा नित्यं सुरासुरसमर्चितः ।।77।।

यो ददात्युत्तमं सौख्यं लोकद्वयहितङ्करः ।
सोऽत्र[3] भव्यैः समाराध्यो भाविमुक्तिवधूवरैः ।।78।।

रत्नत्रयं भवेद्धर्मो धर्मोऽपि दशधा स्मृतः ।
धर्मो वस्तुस्वभावश्च जीवानां रक्षणं च सः ।।79।।

इत्यादिकं द्विषट्भेदैरनुप्रेक्षाः समग्रधीः ।
भावयित्वा गुरोः शिक्षास्त्रिधा वैराग्यतत्परः ।।80।।

जिनेन्द्रस्नपनं कृत्वा दत्वा च विधिना प्रभुः ।
महीपालाय पुत्राय[4] तस्मै राज्यं निजं ततः ।।81।।

द्विधा सङ्गं परित्यज्य राजभिर्बहुभिः समम् ।
सुव्रताचार्य नामानं मुनीन्द्रं[5] सम्प्रणम्य च ।।82।।

दीक्षां जैनेश्वरीं[6] पूज्यां स जग्राह जगद्धिताम् ।
किं त्यजन्ति[7] न लोकेऽस्मिन् भव्याश्चासन्नमुक्तयः ।।83।।

तथा मदनसुन्दर्या सार्धं देव्योऽपि तस्य ताः ।
बहवो दीक्षां समादाय चक्रिरे स्वात्मनो हितम् ।।84।।

सत्यं दिवाकरेणामा प्रभास्तस्यापि नित्यशः ।
प्रयान्त्येव तथा ताभिः सर्वं संत्यज्य तत्कृतम् ।।85।।

---

[1]ग प्रति दायिनीम्
[2]ग प्रति क्षत्रियादि
[3]ग प्रति सौ
[4]ग प्रति 'पुत्राय' इति शब्दाभाव
[5]ग प्रति मुनीद्रम्
[6]ग प्रति जैनीस्वरीं
[7]कख प्रति त्यज्यन्ति

कुर्वंस्तपश्चिरं कालं श्रीपालो मुनिसत्तमः ।
यथा राज्यं कृतं पूर्वं मुक्तिराज्यं कृतोद्यमः ।।86।।

साररत्नत्रयं कृत्वा शक्तित्रयमनुत्तरम् ।
मोहारातिं निराकर्तुं स स्वामी सुभटो यथा ।।87।।

धर्मध्यानञ्चतुर्भेदं महासैन्यञ्चकार च ।
पक्षमासोपवासादि तपः[1] सन्नाहमुद्वहत् ।।88।।

त्रिकालयोगकालज्ञो महामन्त्राणुगो महान् ।
संज्ञात[2]स्वपरोव्यक्तं दयादत्तिविशारदः ।।89।।

महाव्रतानि पञ्चोच्चैः कृत्वा सामन्तसत्तमान् ।
विधाय समितीः[3] पञ्च सज्जनानाञ्च सङ्गतिः[4] ।।90।।

पञ्चेन्द्रियमनोऽन्तस्थ वैरिषड्वर्गसञ्जयम् ।
तिस्रो गुप्तीः सुगुप्तीश्च स चक्रे मुनिपुङ्गवः[5] ।।91।।

षडावश्यकमावासं दृढं कृत्वा यतीश्वरः ।
परमागमशस्त्रौघ[6]मभ्यसन् कर्मशत्रुके ।।92।।

तथा लोचमचेलत्वमस्नानं भूमिनिद्रया ।
अदन्तधावने नामा स्थितिभोजनमेककम् ।।93।।

सर्वान् शीलगुणानुच्चैः परीषहजयैः सह[7] ।
महासुभटसन्दोहान् विधाय विधिपूर्वकम् ।।94।।

महासत्वगजारूढः सद्धर्मातपवारणः ।
सद्यशश्चा[8]मरोपेतो विजयी दोषसञ्चये ।।95।।

सम्यक्त्वघातिकाः सप्तप्रकृतीः प्रकृतिरिव[9]।
आयुस्त्रयेण संयुक्ता मिथ्यात्वादिकसञ्ज्ञकाः[10] ।।96।।

---

[1]ग प्रति पक्षमासोपवासादिः तप
[2]क प्रति संज्ञान
[3]क प्रति समिति
[4]ग प्रति सङ्गतीः
[5]कख प्रति तिस्रो गुप्तींश्च सञ्चक्रे मुनिपुङ्गवः सर्वदा
[6]क प्रति शास्त्रौघ
[7]कख प्रति सहः
[8]कख प्रति सद्यशः श्चा
[9]कख प्रति सप्तप्रकृती प्रकृतिरिव, ग प्रति सप्तप्रकृतीः प्रकृतीरिव
[10]ग प्रति संज्ञिकाः

विनिर्जित्य महाशूरसत्तमो मुनिनायकः ।
क्षपक[1]श्रेणिमारूढो मुक्तेर्निःश्रेणिकामिव ।।97।।

ततोऽसौ नवमे[2] स्थित्वा गुणस्थाने महामुनिः ।
षट्त्रिंशत्प्रकृतीः[3] क्षिप्त्वा शुक्लध्यानेन पूर्वतः ।।98।।

गुणस्थाने तथा सूक्ष्मसाम्पराये यतीश्वरः ।
लोभं सञ्ज्वलनं[4] हत्वा ततोऽसौ निर्मलाशयः ।।99।।

गत्वा क्षीणकषायोरू भूमिभागं समुन्नतम् ।
शुक्लध्यानासिना शीघ्रं द्वितीयेन पराक्रमी ।।100।।

मोहनीयरिपुं जित्वा घातित्रितयसंयुतम् ।
केवलज्ञानसाम्राज्यं सम्प्राप्तः परमोदयः ।।101।।

त्रिषष्ठी प्रकृतीरेव निराकृत्य मुनीश्वरः ।
सञ्जातः केवलज्ञानी स श्रीपालो जगद्धितः ।।102।।

तत्प्रभावमहावात[5]कम्पितासनसञ्चयाः ।
देवेन्द्राद्याः सुराः सर्वे समागत्य प्रमोदतः ।।103।।

योग्यं गन्धकुटीं कृत्वा सिंहासनसमन्विताम् ।
छत्रमेकं तथा दिव्यचामरद्वयमुज्ज्वलम् ।।104।।

विद्याधरैर्नरैः सार्धं जयकोलाहलस्वनैः ।
पुष्पवृष्टिः विधायोच्चैः पूजयन्तिस्म भक्तितः ।।105।।

घातिकर्मक्षये स्वामी पश्यतिस्म चराचरम् ।
घनापाये यथा भानुर्भवेत्स्वपरभासकः ।।106।।

तदाऽसौ सर्व[6]भव्यानां केवलज्ञानभास्करः।
सञ्जगाद द्विधा धर्मं मुनिश्रावकगोचरम् ।।107।।

[1]कखग प्रति क्षिपक
[2]ग प्रति ततौसौवनवमोः
[3]कख प्रति प्रकृती
[4]क प्रति संजलनं
[5]ग प्रति महारात
[6]ग प्रति तदासौर्भव

जीवादिसप्ततत्त्वानि पुण्यं पापं च तत्फलम् ।
षड्द्रव्याणि तथा कालत्रयं प्राह जगद्धितः ।।108।।

कर्मणां प्रकृतीश्चापि चतस्रोऽपि गतीर्जिनः ।
पञ्चास्तिकायभेदौघान् जगौ लेश्याश्च षड्विधाः ।।109।।

त्रैलोक्यस्य स्वरूपञ्च सम्प्रकाश्य स्वभावतः ।
सम्बोध्य सकलान् भव्यान् साररत्नत्रयोचितान् ।।110।।

दीर्घकालं जनानां च मोहजालं निहत्य सः ।
नानादेशान्विहृत्योच्चैः सुरासुरसमर्चितः ।।111।।

दर्शनज्ञानचारित्रं मोक्षमार्गं सुखास्पदम् ।
द्योतयित्वा स्वबोधेन पुनश्चान्ते जिनेश्वरः ।।112।।

चतुर्दशगुणस्थानप्रान्ते च समयद्वये ।
चतुर्थेन तदा शुक्लध्यानेनैव सुनिश्चलः ।।113।।

अघातिकर्मणां पञ्चाशीति प्रकृतिसञ्चयम् ।
हत्वा सम्प्राप्तवान् मोक्षं जरामरणवर्जितम् ।।114।।

एकेन समयेनोच्चैरुर्ध्वगामी स्वभावतः ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतस्त्रैलोक्यशिखरे स्थितः ।।115।।

संसिद्धो मे समाराध्यो विशुद्धो विश्ववन्दितः ।
पारम्प्राप्तो भवाम्भोधेः प्रदद्यात् सिद्धिमुत्तमाम् ।।116।।

तथा तपश्चिरं कृत्वा सतीमदनसुन्दरी ।
छित्वा स्त्रीलिङ्गकं कष्टं धर्मध्यानेन पुण्यतः ।।117।।

महाशुक्रे सुरेन्द्रोऽभूत् महाविभवसंयुतः ।
सुखं भुक्त्वा चिरं तत्र समागत्य महीतले ।।118।।
नरत्वं दिव्यमासाद्य तपः कृत्वा पुनः सुधीः ।
निर्वाणं यास्यति स्वामी सोऽपि भूत्वा जिनेश्वरः ।।119।।

परे राजादयो येऽपि दीक्षिताः स्वामिना सह ।
सौधर्मादिषु ते सौख्यं प्रापुः स्वर्गेषु[1] पुण्यतः ।।120।।

---

[1]ग प्रति स्वर्ग्रेषु

यथा श्रीपालराजोऽयं सिद्धचक्रव्रतोत्तमम् ।
कृत्वा क्रमेण सम्प्राप्तो मोक्षं सौख्यं निकेतनम् ।।121।।

तथा भव्याः करिष्यन्ति ये व्रतं सिद्धचक्रजम् ।
तेऽपि राज्यादिकं प्राप्य मुक्तिं यास्यन्ति शाश्वतीम् ।।122।।

एवं मत्वा बुधैर्नित्यं जैनधर्मपरायणैः ।
एतद्व्रतं जगत्सारं समाराध्यं सुयत्नतः ।।123।।

सर्वसिद्धिं च तं पूतं सिद्धचक्रार्चनं व्रतम् ।
सेवितं सर्वभव्यानां कुर्यात्सारश्रियं शुभम् ।।124।।

इत्यादि कोमलैर्वाक्यैः पूर्वाचार्यक्रमेण च ।
तुच्छ बुद्ध्यापि बोधार्थं श्रीपालनृपतेर्हितम् ।।125।।

चरितं सर्वभव्यानां मया चक्रे स्वशक्तितः ।
यत्तन्मे[1] जिनवाग्देवी क्षमां कर्तुं त्वर्हसि ।।126।।

ये पठन्ति महाभव्याः शास्त्रमेत्सुखप्रदम् ।
पाठयन्ति परानुच्चैर्ये लिखन्ति विवेकिनः ।।127।।

लेखयन्ति धनं दत्वा पात्रेभ्यो वितरन्ति च ।
संभावयन्ति ये चित्ते तेषां सिद्धिः पदे पदे ।।128।।

इत्थं श्रीजिनधर्मकर्मनिरतः श्रीपालनामानृपः ।
कृत्वेदं व्रतमुत्तमं शुभकरं रोगापहं शर्मदम् ।।
सम्प्राप्य प्रभुतां जिनेन्द्रतपसा कृत्वा क्षयं कर्मणाम् ।
यः प्राप्तः परमं पदं जिनपतिः कुर्यात् सतां मङ्गलम्।।129।।

एवं सर्वसुरासुरेन्द्रमहितः श्रीवर्द्धमानो जिनो[2]।
वृत्तं प्राह जगद्धितं शुचितरं श्रीपालभूपालजम् ।।
श्रुत्वा श्रेणिकभूपतिश्च ससभाः सन्तुष्टचित्तो महान्।
नत्वा तं जिनपं मुनीन्द्रसहितं सम्प्राप्तवान् स्वपुरम् ।।130।।

गच्छे श्रीमतिमूलसंघतिलके सारस्वती ये शुभे ।
श्री भट्टारकपद्मनन्दिमुनयः देवेन्द्रकीर्तिस्ततः ।।
विद्यानन्दिगुरुस्ततो गुणनिधिः पट्टे तदीये सुधीः ।
श्री भट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सद्बोधसिन्धुर्महान्[3]।।131।।

[1]ग प्रति यतन्मे
[2]ग प्रति जिने
[3]ख प्रति सद्बोधसिन्धुर्महान्

तच्छिष्यो गुणरत्नरञ्जितमतिः श्री सिंहनन्दिगुरुः ।
सद्रत्नत्रयमण्डितेति[1] नितरां भव्यौघनिस्तारकः ।।
तेषां पादपयोजयुग्ममधुपः श्रीनेमिदत्तो यतिः ।
चक्रे चारुचरित्रमेतदुचितं श्रीपालजं संक्रियात् ।।132।।

अग्रो गोत्रं वंशमण्डनमणिः सद्ब्रह्मचारी शुभः ।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरोः पादाब्जसेवारतः ।।
जीयादत्र महेन्द्रदत्त सुयतिः[2] संज्ञान वा न्निर्मलः ।
सूरि श्रीश्रुतसागारादियतीनां सेवापरः सन्मतिः ।।133।।

ख्याते मालवदेशस्थे पूर्णाशानगरे वरे ।
श्रीमदादिजिनागारे सिद्धं शास्त्रमिदं शुभम् ।।134।।

सम्वत्सार्द्धसहस्रे[3] च पञ्चाशीतिसमुत्तरे ।
आषाढे शुक्लपञ्चम्यां सम्पूर्णं रविवासरे ।।135।।

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशयं प्राप्ते श्रीपालमहाराजचरिते[4] भट्टारक– श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्य– श्रीसिंहनन्दि– ब्रह्मश्रीशान्तिदासानुमोदिते ब्रह्मनेमिदत्तविरचते श्रीपालमहामुनीन्द्रनिर्वाणगमनव्यावर्णनो[5] नामनवमोऽधिकारसमाप्तः ।।9।।

सम्वत् १८४६ मासोत्तममासे मंगशिरमासे शुक्लपक्षे १३ सोमवारे ग्रन्थसम्पूर्णः समाप्ताः।[6]

सम्वत् ८२६ मितिमाहसुदि ८ शनीसरवारे पण्डितोत्मपण्डितजी श्रीचोषचन्दजी तत्– शिष्य पण्डितोत्मपण्डितजी श्रीरायचन्द्रजी तत्–शिष्य सेवकसवाईरामेण। इदं पुस्तकं लिपी कृतं । शुभं भवतु।[7]

---

[1] कख प्रति मण्डितोति
[2] ख प्रति सुयती
[3] कख प्रति सहश्रे
[4] कख प्रति चरित्रे
[5] ग प्रति 'व्या' शब्दाभाव
[6] क प्रति में विद्यमान अन्तिम प्रशस्ति
[7] ख प्रति में विद्यमान अन्तिम प्रशस्ति

श्री मद्ग्रोतान्वये यो गोत्रे गोयल्लमण्डितः।
सा श्री रामदासाख्यो तत्र नूजो गुणाग्रणी ।।1।।

सुरापगादि तीर्थेषु स्नानेषु यः सदा रतः ।
सः श्रीमान् क्षेमदासोऽभूत् क्षमादिगुणसागरः।।2।।

हरेरर्चा गुरोर्भक्तिः दानतत्परमानसः।
नृपानां ह्वदयि द्वाती सौ धीयया सुखावहा ।।3।।

महागुणवती रम्या सुचरित्रा पतिव्रता।
क्षेमश्री नाम तस्यासीत् भार्या लावन्यसून्दरी ।।4।।

तयोः पुत्रा समुत्पन्नाः त्रयः रत्नत्रयोपमाः।
निज वृत्तेषु ये लीना भूयैः सान्मानितः सदा।।5।।

ज्येष्ठोति च गुणश्रेष्ठो धर्मज्ञो धर्मवत्सलः।
निजाचारेषु यो लीनो सः श्री केशवनामभाक्।।6।।

मृद्वांगी कोमला पीमानसेकरुणान्विता।
दानेन कल्पवल्ली वा तद्रा मा राजमत्यपि।।7।।

तयोः पुत्र वासुदेवः गुणज्ञो गुणसागरः।
तत्भार्या गुणग्रामा नाम्ना परिमलदेसती।।8।।

शीलवर्त्ति तपः स्नेह द्वौकुले द्योति दीपिका।।9।।

विप्लुदासः द्वितीयः स्यात् विप्लोर्भक्तितत्परः।
तद्वामातुरमत्याख्यः शीलादि गुणमण्डिताः ।।10।।

तयोः पुत्रो वभूवासौ श्रीमच्चहरनामभाक्।
कुलांगणा महागाणैः पयः पाणैश्च वर्द्धितः।।11।।

त्रितीयस्तु महाविज्ञो गुणज्ञो गुणभूषणः।
श्रीमन्मोहनदासाख्यो विनायादिगुणलङ्कृतः।।12।।

तद्रामागुण धामश्च सुन्दरि शुभलक्षणः।
तयोः सूनुर्वभूवासौ देवीदासगुणाधिकः।।13।।

तद्भार्या च भवेत्साध्वी नाम्ना भोगमती मता।
तयो पुत्रौ समुत्पन्नौ बाललीला विराजितौ ।।14।।

प्रथम सुत आनन्दा द्वितीयो हेमराज भाक्।
शुभपुण्यफलं पुत्राः पुण्यात् किं किं जायते।।15।।

चक्रे महोत्सवं रम्यं जगज्जनमनः प्रियं।
सत्यं सत्पुण्यसम्प्राप्तौ किं न कुर्वन्ति साधवः।।16।।

एतेषां मध्ये शीलतोयतरंगिणी दानगुणचेलनाकल्पवल्ली वतूरमृता इदं पुस्तकं श्रीपालनामचरितं सम्पूर्णम् ।। भगवा ।।

सम्वत् वर्षे श्रावणमासे शुक्लपक्षे पार्वणी द्वितीया दिवसे भृगुवासरे श्रीमत्काष्ठा स्यंघे माथुरगच्छे भ. आचार्य श्री श्री श्री श्री केशवसेनजी तत्पट्टे भट्टारक श्रीदेवेन्द्रकीर्ति जी आचार्य श्री श्री श्री श्री जशकीर्ति जी व्रह्म श्री पद्मसार जी ब्र. श्री दयासागर जी ब्र. श्री कल्याणसाग इदं पुस्तकं लिषितं यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृश लिखतं मया यदि शुद्धमशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ।।[1]

---

[1] ग प्रति में विद्यमान अन्तिम प्रशस्ति

परिशिष्ट

- सन्दर्भ ग्रन्थसूची
- सूक्त्यनुक्रमणी
- श्लोकानुक्रमणी
- पाण्डुलिपि छायाचित्र

परिशिष्ट

1. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मूल पाण्डुलिपि

1	**श्रीपालचरित्र (क प्रति)**	श्री दिगम्बर जैन तेरापन्थी बड़ा मन्दिर, जयपुर
2	**श्रीपालचरित्र (ख प्रति)**	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ जी (खोनियान), जयपुर
3	**श्रीपालचरित्र (ग प्रति)**	श्री जैनविद्या संस्थान, भट्टारक जी की नशिया, जयपुर
4	**पाण्डुलिपि सम्पादन कला**	दिनेश, डॉ. रामगोपाल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 1979
5	**पाण्डुलिपि विज्ञान**	डॉ. सत्येन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण, 1978
6	**जैन–पाण्डुलिपियाँ एवं शिलालेख : एक परिशीलन**	जैन, प्रो. राजाराम प्रकाशक पं. फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन, रुड़की एवं श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान नरिया, वाराणसी 2007
7	**अनुसन्धान प्रक्रिया एवं पाठालोचन**	शास्त्री, डॉ. विनोद एवं सक्सेना, डॉ. शालिनी प्रकाशक राजस्थान ज्योतिष परिषद् एवं शोध संस्थान, जयपुर 2007
8	**शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान**	मिश्र, प्रो. अभिराजराजेन्द्र एवं मिश्रा, डॉ. राजेशकुमारी, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2008

सूची पत्र

9	**समस्त हस्तलिखित सूचीपत्र**	भण्डारकर आरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना
10	**सूचीपत्र (संस्कृत–प्राकृत)**	समस्त राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान

11	Jain Granth Bhandars in Jaipur and Nagpur	Jain, Prem chand, Center for Jain Studies, University of Rajasthan, Jaipur
12	National Library Catalogue of Sanskrit, Pali and Prakrait Books	Volume-2, Calcutta, 1956
13	Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts	University of Mysore
14	National Bibliography of Indian Literature (4Vols.)	Sahitya Academy, New Delhi
15	Catalogue of the Manuscripts of Patana Jain Bhandara(Part I,II)	Shardaben Chimanbhai Educational Research Centre, Ahmedabad.

कोश ग्रन्थ

16	**जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश (पाँच भाग)**	वर्णी, जिनेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, अष्टम संस्करण 2003
17	**जिनरत्नकोश (प्रथम भाग)**	वेलणकर, हरि दामोदर, भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना 1944
18	**एपिग्राफिया इण्डिका**	प्रकाशक महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली
19	**हरिषेण कथाकोश**	आचार्य, हरिषेण, सिंघीजन ग्रन्थमाला, बम्बई
20	**पुण्यास्रव कथाकोश**	मुमुक्षु, श्रीरामचन्द्र, जैन संरक्षक संस्कृति संघ, सोलापुर, 1964
21	**अभिधान राजेन्द्र कोश**	सूरि, विजयराजेन्द्र, श्री जैन श्वेताम्बर संघ, रतलाम, 1913
22	**हिन्दी विश्वकोश**	वाराणसी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1960–70

23 **संस्कृत हिन्दी शब्दकोश** — आप्टे, वामन शिवराम, न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, नवम संस्करण, 2005

24 **आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश** — शास्त्री, रामस्वरूप, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957

25 **जैन पारिभाषिक शब्दकोश** — सम्पादक– सिद्धान्तशास्त्री, बालचन्द, वीरसेवा मंदिर, दिल्ली, 1972

26 **जैन पुराण कोश** — सम्पादक– जैन, प्रवीणचन्द, कोठिया, डॉ. दरबारीलाल, जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीर जी, राजस्थान, 1993

27 **आराधना कथाकोश** — ब्रह्मनेमिदत्त, हिन्दी अनुवादक उदयलाल जी कासलीवाल, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्, तृतीय संस्करण 2005 एवं जैन विद्यापीठ, भाग्योदय तीर्थ सागर 2017

28 **रामचन्द्र का मानक हिन्दी कोश** — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, प्रयाग, 1965

29 **अभिधान राजेन्द्रकोश (सात भाग)** — सूरि, विजय राजेन्द्र, श्री जैन श्वेताम्बर समस्त संघ रतलाम, 1913

30 **अमरकोश** — सिंह, अमर, हिन्दी टीकाकार मन्नालाल अभिमन्यु, प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2003

पौराणिक एवं कथा ग्रन्थ

31 **हरिवंशपुराण** — आचार्य जिनसेन, सम्पादक और अनुवादक, डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, चतुर्थ संस्करण, 1998

32 **महापुराण** — महाकवि पुष्पदन्त, भारतीय ज्ञानपीठ प्रथम संस्करण 1979

33	महापुराण (आदिपुराण)	आचार्य जिनसेन और गुणभद्राचार्य, सम्पादक और अनुवादक, डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, चतुर्थ संस्करण, 1993
34	सुदर्शनचरित्र	विद्यानन्दि, हिन्दी अनुवाद डॉ. रमेशचन्द्र जैन, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् 1991
35	सिरि सिरिवाल चरिउ	रइधू, सम्पादक– डॉ. राजाराम जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण 2017
36	सिरिवाल चरिउ	पं. नरसेन, सम्पादक और अनुवादक– डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, द्वितीय संस्करण, 2011
37	श्री श्रीपालमयणामृत काव्यम्	सागर, नयचन्द्र, आगमोद्धारक प्रतिष्ठान, प्रथम संस्करण वि. सं. 2050
38	पद्मपुराण (तीन भाग)	आचार्य रविषेण सम्पादक और अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, अष्टम संस्करण, 2000
39	पाण्डवपुराण	भट्टारक, शुभचन्द्राचार्य, जैन विद्यापीठ सागर, प्रथम संस्करण 2017
40	चौबीस तीर्थंकर पुराण	ब्र. हरिभाई, कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़, 1976
41	त्रिषष्टिशलाकापुरुष	आचार्य हेमचन्द्र भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1983

इतिहास ग्रन्थ

42	**शिलालेख संग्रह**	जोहरापुरकर, विद्याधर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
43	**भट्टारकसम्प्रदाय**	सम्पादक– जोहरापुरकर, विद्याधर, प्रकाशक जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर, प्रथम संस्करण 1958
44	**जैनधर्म का प्राचीन इतिहास**	शास्त्री, पं परमानन्द, प्रकाशक रमेशचन्द मोटर वाले 1975
45	**जैन संस्कृत साहित्य का इतिहास**	प्रेमी, नाथूलाल, बम्बई प्रकाशन, 1982
46	**जैन साहित्य और इतिहास**	प्रेमी, नाथूराम, हिन्दी–ग्रन्थ–रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव बम्बई, प्रथम संस्करण, प्रथम संस्करण 1942
47	**भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान**	जैन, डॉ. हीरालाल, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल, प्रथम संस्करण 1962
48	**प्राकृत एवं जैन विद्या : शोध संदर्भ**	जैन, डॉ. कपूरचन्द, श्री कैलाशचन्द जैन स्मृति व्यास खतौली, उत्तरप्रदेश, तृतीय संस्करण 2004
49	**संस्कृत साहित्य का इतिहास**	उपाध्याय, आचार्य बलदेव, शारदा निकेतन प्रकाश, वाराणसी, दशम संस्करण, 2001
50	**संस्कृत साहित्य का इतिहास**	गैरोला, वाचस्पति, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी 1991
51	**प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति**	श्रीवास्तव, डॉ. कृष्णचन्द्र और एम. श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2003
52	**प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव**	तोमर, रामसिंह, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1963

53	**भारतीयदर्शनम्**	डॉ. राधाकृष्णन्, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1966–67
54	**भारतीय दर्शन**	रामकृष्णाचार्य, विनोद पुस्तक मंदिर, प्रकाशक आगरा, 1982
55	**संस्कृत साहित्य के विकास में जैन कवियों का योगदान**	शास्त्री, डॉ. नेमीचन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
56	**तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (चार खण्ड)**	शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्र, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् प्रकाशन, सागर, 1977 एवं आचार्य शान्ति सागर छाणी ग्रन्थमाला
57	**जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**	चौधरी, गुलाबचन्द्र, पार्श्वनाथ शोधपीठ वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1998

साहित्यिक एवं दार्शनिक ग्रन्थ

58	**साहित्य दर्पण**	आचार्य विश्वनाथ, हिन्दी अनुवाद डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी,प्रथम संस्करण 1957
59	**काव्यप्रकाश**	मम्मट, व्याख्या आचार्यविश्वेश्वर, सम्पादक, डॉ. नगेन्द्र, ज्ञान मंडल लिमिटेड वारणसी, प्रथम संस्करण वि.स. 2017
60	**दशरूपक**	महाकवि धनञ्जय, सम्पादक श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ, षष्टम संस्करण 1986–87
61	**मालविकाग्निमित्रम्**	कालिदास, सम्पादक– काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णयसागर प्रेस मुम्बई, षष्ठं संस्करण 1924
62	**ऋगवेद–सर्वानुक्रमणी**	महर्षि कात्यायन, विवेक प्रकाशन, अलीगढ़, प्रथम संस्करण 1977

63	**पाणिनीय शिक्षा**	पाणिनि, भाष्यकर्ता बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान', कालिदास अकादमी, उज्जैन, वि.सं. 2050
64	**काव्यालङ्कार**	भामह, भाष्य–देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीय संस्करण 1985
65	**मत्स्य महापुराण**	प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, 2019
66	**नीतिशतक**	भतृहरि भारतीय विद्याभवन, बम्बई
67	**ब्र. पं. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ**	जैन, श्रीमती सुशील सुल्तान सिंह, श्रीमती जयमाला जैनेन्द्र किशोर जैन, अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला परिषद्, धनुपूरा, आरा 1954
68	**पार्श्वनाथ चरित्र का समीक्षात्मक अध्ययन**	जैन, डॉ. जयकुमार, सन्मति प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, प्रथम संस्करण, 1987
69	**अष्टाध्यायी**	दीक्षित, पुष्पा, ज्ञानभारती पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
70	**जयधवला**	आचार्य वीरसेन, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
71	**तत्त्वार्थराजवार्तिक**	भट्ट अकलंक देव, महेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण 1957
72	**तत्त्वार्थसूत्र**	आचार्य उमास्वामी, विवेचनकर्ता पं. फूलचन्द शास्त्री, श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1991
73	**समयसार**	आचार्य कुन्दकुन्द, आत्मख्याति टीका एवं कलश आचार्य अमृतचन्द्र, हिन्दी टीका डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल, पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर, प्रथम संस्करण 2006
74	**भावना द्वात्रिंशतिका**	आचार्य अमितगति

75	**कार्तिकेयानुप्रेक्षा**	स्वामीकुमार, सम्पादक कैलाशचन्द्र शास्त्री, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, पञ्चम संस्करण 2005
76	**पद्मनन्दि पञ्चविंशतिः**	आचार्य पद्मनन्दि, टीकाकार पं. गजाधरलाल, कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट, नेहरू पुतला, इतवारी, नागपुर द्वितीय आवृत्ति 2013 एवं जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, तृतीय आवृत्ति 2001
77	**रत्नकरण्ड श्रावकाचार**	आचार्य, समन्तभद्र, टीकाकार पण्डित सदासुखदास जी कासलीवाल, पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला, अजमेर, तृतीय आवृत्ति, संस्करण 1998
78	**श्रावकाचार संग्रह (भाग 2 एवं 4)**	सम्पादक– शास्त्री, पं. हीरालाल, जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर, द्वितीय आवृत्ति 1998
79	**ज्ञानार्णव**	आचार्य, शुभचन्द्र, अनुवादक पण्डित बालचन्द्र जी शास्त्री जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर प्रथम संस्करण 1977
80	**वारसाणुवेक्खा**	आचार्य कुन्दकुन्द, संपादक देवेन्द्र शास्त्री, पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, प्रथम संस्करण 1991
81	**भगवती आराधना**	आचार्य शिवकोटि, टीकाकार पं. सदासुखदास, चांदमल सरावगी चेरिटेबल ट्रस्ट, गोहाटी
82	**सिद्धि विनिश्चय**	आचार्य अकलंक देव, टीकाकार अनन्तवीर्य, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण 1959
83	**अनेकान्त (त्रैमासिक शोधपत्र)**	वीर सेवा मंदिर, दिल्ली

2. सूक्त्यनुक्रमणी

क्रम स.	सूक्ति	श्लोक संख्या
1	अहिंसा परमो धर्मः।	3.3
2	अहो पुण्यस्य माहात्म्यं महतां केन वर्ण्यते । यत्करस्पर्शमात्रेण दुःसाध्यमपि सिद्धयति ।।	4.65
3	अहो श्रेष्ठिन्! महापापं परस्त्री चिन्तनं च यत् ।	5.9
4	अहो श्रेष्ठिन्! महापापी कामसर्पोऽयमुद्धतः । त्वया सन्तोषमन्त्रेण जेतव्यः प्राणनाशकः ।।	5.18
5	आत्मनो जायते सत्यं पुण्यात्सञ्जायते धनम् । दैवात्सञ्जायते बुद्धिः सिद्धिः साहसतो भवेत् ।।	6.35
6	एकस्यापि महानन्दो द्वितीयस्य महाश्रु च। संसारचेष्टितञ्चेति सुधियां बोधकारणम् ।।	7.51
7	के के नैव गताः काले।	3.196
8	खद्योतैश्छाद्यतेकिं वा भास्करो महिमाकरः।	6.129
9	गदित्वेति स्वकीयञ्च प्राहिणोद्द्रहस्तिनम् । सत्यमासन्नभव्यानां कोपो नैव स्थिरो भवेत् ।।	6.141
10	जन्तूनां कर्मणा सर्वं भवेद्देव! शुभाशुभम् ।	2.108
11	जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम् । मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम् । सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।।	2.75
12	जिनेन्द्रवचने चञ्चुस्तस्य वाचा न चान्यथा । किं मेरुश्चलति स्थानात् किं सिन्धुर्मुञ्चति स्थितिम् ।।	6.95
13	दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तियुक्तम् । छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुदञ्चेक्षुदण्डम् ।। घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारू गन्धम् । प्राणत्यागे प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ।।	4.89
14	दयाधर्ममजानानो निर्ग्रन्थानामसेवकः । योऽश्रुतोऽर्हत्प्रणीतार्थः स नरः पापपण्डितः ।।	6.37
15	दानपूजातपःशीलधर्मेषु यः इह क्वचित् । नानुरागी तथा रागी तस्य भो जीवितेन किम् ।।	6.41

16	दुर्गतिर्मानभङ्गश्च धननाशो यशोहतिः । परस्त्रीसङ्गमेनात्र सम्भवेन्नरकक्षितिः ।।	5.10
17	देशत्यागो हि दुर्जनात् ।	3.199
18	धनं विना न भातीह नरो लोके निरन्तरम् । यथा सुगन्धताहीनो नाना कुसुमसञ्चयाः ।।	4.9
19	धर्मः संसारवाराशौ पोतोऽयं भव्यदेहिनाम् । धर्मो मातापिता मित्रं धर्मो निधिरनुत्तरः ।।	3.23
20	धर्मश्चिन्तामणिर्लोके धर्मः कल्पतरुर्महान् । धर्मः कामदुघाधेनुधर्मो बन्धुर्जगत्त्रये ।।	3.22
21	धिक्कामं धिग्दुराचारं धिक् परस्त्री कुचिन्तनम् । येन प्राणी विमूढात्मा प्रयात्येवमधोगतिम् ।।	5.181
22	धिक्कोपं धिक्मूढत्वं धिग्गर्वं पापकारणम् । अस्थानेऽपि महीनाथो येन जातो दुराग्रही ।।	2.117
23	न दत्तं न स्वयं भुक्तं सञ्चितं कृपणैर्धनम् । द्यूतचौराग्निभिः नृणां पश्यतां सकलं गतम् ।।	6.36
24	नष्टबुद्धिस्तदा जाता हा कष्टं दुष्टसङ्गतिः ।	2.57
25	परस्त्रीरूपरागेण बहवो नष्टबुद्धयः । विनाशं प्रापुरत्रोच्चैः पावके वा पतङ्गकाः ।।	5.11
26	पुण्यात् किं किं न जायते ।	6.10
27	पुण्येन दूरतरवस्तु समागमोऽस्ति । पुण्यं विना तदपि हस्ततलात् प्रयाति। तस्मात्सुनिर्मलधियः कुरुत प्रमोदात् । पुण्यं जिनेन्द्रकथितं शिवशर्मबीजम् ।।	7.75
28	प्रदीपे दीप्यमाने च नैव तिष्ठति वा तमः । सन्तुष्टोऽहं सुधीः पुत्र विनयेन तव ध्रुवम् ।।	7.60
29	प्राणत्यागेऽपि कर्तव्या नैव निन्दा तपस्विनाम् ।	8.223
30	प्रोवाच दूतं रे याहि समर्थोऽहं रणाङ्गणे । सिंहः किं मृगसन्दोहैर्बाध्यते भो महीतले ।।	6.128
31	भुजोपार्जितवित्तेन भुञ्जते ये सुखं किल । तेऽत्र सत्पुरुषा लोके परे दुर्मानशालिनः ।।	4.8

32	मातुलस्य भगिन्याश्च श्वसुरस्यापि योषितः । नाम्ना धनेन जीवन्ति भवन्त्येतेऽधमाधमाः ।।	4.7
33	मूढात्मा पापकर्मणा ।	2.129
34	मेरुर्वा चलति स्थानात् सिन्धुर्मुञ्चति वा स्थितिम् । अग्निर्वा जलतामेति नैव हानिः सतीव्रते ।।	5.79
35	यतः सन्तः प्रकुर्वन्ति क्षमां सर्वत्र सर्वथा । चन्दनो घृष्टमानः किं स्वसौगन्ध्यं जहाति भो! ।।	7.57
36	यद्भावीह भविष्यति ।	2.89
37	युक्तं दुष्टजनस्यैवं साधूक्तं न सुखायते । यथा पित्तज्वरस्येव शर्करा च विषायते ।।	2.94
38	युक्तं पुण्यविपाकेन सर्वत्र सुलभाः श्रियः । तस्मात्पुण्यं प्रकर्तव्यं सदा भव्यैर्जिनोदितम् ।।	6.150
39	यो विचारं विना कार्यं करोति मतिवर्जितः । पश्चात्तापेन पापेन तप्यते स यथाक्रमम् ।।	2.130
40	वक्ता समर्थो निर्ल्लोभो निर्भयः स्वामिसम्मतः । ज्ञातादेशः स्वभावज्ञो लेखं लात्वा विनिर्ययौः ।।	6.120
41	वाञ्छेति दानकेनैव यस्य स स्यादलुब्धकः ।	8.50
42	विस्तारयन्ति ये कीर्तिं स्वकीयोपार्जितैर्धनैः । धन्यास्ते एव संसारे चन्द्रकान्तिमिवोज्ज्वलाम् ।।	4.10
43	वृद्धो रोगी च यो दुर्गस्तथा द्यूतक्रियारतः । विवाहयति यः कन्यां तद्वाञ्छा निष्फलैव हि ।।	6.42
44	शीलवत्यः कथं नार्यः सेवन्ते पुरुषान्तरम् ।	5.78
45	शुभाशुभं भवत्युच्चैर्भो माता! कर्मणा कृतम् । जन्तोऽस्मान्ममैवात्र शरण्यं जिनशासनम् ।।	2.120
46	शुभाशुभं भवेन्नित्यं जन्तूनां कर्मपाकतः । किं करोत्यथवा लोके पितामाता च बान्धवाः ।।	2.131
47	संतोषेण भवेन्नित्यं सत्सुखं भव्यदेहिनाम् । युक्तं पद्माकराणां हि प्रकाशं कुरुते रविः ।।	3.79
48	संसारसागरान्नूनं समुद्धृत्य सदा नरान् । योधरत्येव सत्सौख्ये सद्धर्मो जिनभाषितः ।।	8.22

49	सज्जनं वीक्ष्य दुष्टात्मा दुर्जनो दुर्मनो भवेत् । भास्करस्योदये युक्तं घूकः स्यादन्धकः कुधीः ।।	5.110
50	सत्यं जयो भवेन्नित्यं भूतले पुण्यशालिनाम् । तथा लक्ष्मीश्च कीर्तिश्च तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम् ।।	7.48
51	सत्यं दुरात्मनश्चित्ते परवस्तुप्रियं सदा । रक्तपा पररक्तस्य पानं रक्ता यथा सदा ।।	5.6
52	सत्यं पुण्यवतां पुंसां जिनधर्मप्रसादतः। सम्भवन्ति सदा सर्वसम्पदाः शर्मदा मुदा ।।	4.144
53	सत्यं पुण्यवतां श्रियः ।	6.48
54	सत्यं सतां भवेदुच्चैरापदाऽपि शिवश्रियै ।	7.64
55	सत्यं सतां महापुण्यमाहात्म्यं भुवनादिकम् । येन भव्याश्च सर्वत्र लभन्ते सर्व सम्पदा शतम् ।।	5.59
56	सत्यं सत्सङ्गतिर्लोके फलत्युच्चैर्महाफलम् । कल्पवल्लीव सत्सौख्यं परमानन्ददायिनीम् ।।	3.181
57	सत्यं सन्तः प्रकुर्वन्ति सर्वेषां सर्वतो हितम् ।	5.176
58	सत्यं सन्तोषकर्तारः सुपुत्राः कुलदीपकाः ।	6.103
59	सत्यं सर्वत्र पुण्येन भव्यैः सम्प्राप्यते सुखम् ।	6.12
60	सत्यं स्वपूर्वपुण्येन किं किं न स्याच्च भूतले ।	4.84
61	सत्यं स्वपूर्वपुण्येन किन्न जायेत भूतले ।	7.73
62	सत्येन शीततां याति वह्निश्चापि भयानकः । समुद्रः स्थलतामेति शत्रुर्मित्रायते सुते! ।।	3.64
63	सन्तो भवन्त्येव पीडिताश्च हितङ्कराः ।	5.155
64	सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति जिनधर्मतः ।	3.21
65	सर्वेषां मण्डनं शीलं स्त्रीणां चाऽपि विशेषतः । शीलहीना वृथा नारी कुर्कुरीव खरी यथा ।।	5.80
66	साधूनां सङ्गतिः सत्यं फलत्युच्चैस्सदा सुखम् ।	2.74
67	साधूनां सर्वदा सत्यं पीडा प्राणप्रहारिणी।	5.98
68	सिंहस्याऽपि सुधीरस्ति जेता चाष्टापदः क्षितौ। घनाघनो भवेद्भानोः प्रभा प्रच्छादने क्षमः ।।	6.132
69	सिंहस्याग्रे मृगस्येव पतितस्यापि कानने। संसृतौ शरणं नास्ति जीवानां शरतां तरम् ।।	8.44

3. श्लोकानुक्रमणी

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1	अंगदेशेऽथ तां चम्पापुरीं	7	13	27	अथ श्रेष्ठी विधायोच्चै	5	1
2	अइथूल थूलथूलं थूलसुहुमं	1	141	28	अथैकदा तया तत्र	3	1
3	अक्षतानां महापुञ्जैः	8	153	29	अथैकदा निशम्योच्चैः	4	1
4	अक्षतैरक्षतैर्धौतैस्तुङ्ग	3	145	30	अथैकदा प्रजापालो	2	95
5	अग्रो गोत्रम वंश मण्डन	9	133	31	अथैकदा प्रजापालो	3	204
6	अघातिकर्मणां पञ्चाशी	9	114	32	अथैकदा महीनाथ	1	89
7	अङ्गदेशे च चम्पायां	5	145	33	अथैकदा समाकर्ण्य	3	187
8	अङ्गरक्षकशूराश्च	4	150	34	अथैकदा सुता सा च	2	80
9	अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्यै	7	23	35	अथैकदा सुधीस्तत्र	6	1
10	अच्युतस्वर्गपर्यन्तं स्थानं	8	99	36	अथैकस्मिन् दिने सोऽपि	8	1
11	अजितं जितकन्दर्पं	1	3	37	अद्य प्रकृष्टपुण्येन	4	135
12	अजीवः पुद्गलः प्रोक्तः	1	139	38	अद्य भाग्येन संजीवन्	5	128
13	अणुव्रतानि पञ्चैव	8	85	39	अद्यापि किं त्वया नाथ	5	134
14	अतः परमलोकश्च सर्वः	9	74	40	अद्यैव दर्शयिष्यामि	7	27
15	अतः पूर्वं प्रमाणं मे	2	89	41	अधर्मस्तु स्थितेर्हेतु	1	144
16	अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः	2	18	42	अधिष्ठानं यथाशुद्धं	3	27
17	अतो देशान्तरं गत्वा	4	11	43	अध्रुवं दृश्यते सर्वं	9	38
18	अतो मन्दिरमागत्य	4	136	44	अनन्यशरणीभूतः	8	82
19	अतो मा म्रियतां लोके	7	42	45	अनेकभूपमौलिधर	1	90
20	अतोऽहं वेगतो गत्वा	7	6	46	अन्ते भव्यैः प्रकर्तव्यो	8	70
21	अत्रागत्य नृपस्यास्य	5	113	47	अन्ते सल्लेखना कार्या	3	116
22	अथ जम्बूमतिद्वीपे	2	1	48	अन्यत्वं चात्मनो नित्यं	9	56
23	अथ तत्र स्थितः सौख्यम्	7	1	49	अन्यथा देशनाशस्ते	6	127
24	अथ श्री पालराजेन्द्रो	9	1	50	अन्यस्मिन् दिवसे	8	120
25	अथ श्री श्रेणिको भूपः	1	157	51	अन्येषां का कथा येन	5	13
26	अथ श्रेष्ठी दिनैः कैश्चित्	5	106	52	अन्यो जीवोऽयमत्युच्चैः	9	54

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
53	अभयाख्यं सदा देयं	8	60	81	अस्त्वेवं प्रतिपद्योच्चैः	4	70
54	अभिप्रायं सुपात्रस्य	8	49	82	अस्माकं प्राणदाता त्वं	4	91
55	अमङ्गलमिदं भद्रे!	4	32	83	अस्मिन्द्वीपे जिनेन्द्राणां	4	133
56	अमारिस्तु तथा कार्या	8	165	84	अस्मिन्ननादि संसारे	9	37
57	अमोचयन्निजं तत्र	4	83	85	अस्याः संयोगदानेन	5	8
58	अयं ते भ्रातृपुत्रश्च समर्थ	7	18	86	अस्याऽपि वञ्चने चात्र	5	15
59	अयं शूरः समायातो	6	133	87	अहं दीक्षां ग्रहीष्यामि	7	61
60	अर्घादिभिः समभ्यर्च्य	4	117	88	अहं बालोऽतिनिर्बुद्धिः	7	54
61	अर्च्यते रत्नकर्पूरसद्दीपै	3	148	89	अहिंसा त्रसजीवानां	8	30
62	अर्यादिदमनायोच्चैः	2	78	90	अहिंसालक्षणं जैनमसत्यं	2	62
63	अवन्ति विषयस्तत्र	2	3	91	अहिच्छत्राधिपं जित्वा	6	75
64	अवन्ध्याः शुभगाः सर्वा	9	16	92	अहो तात! कुलोत्पन्न	2	87
65	अवीक्ष्य पोतकं तत्र	5	27	93	अहो पुण्यस्य माहात्म्यं	4	65
66	अशुचित्वं शरीरस्य	9	57	94	अहो पुत्र! सदा कार्यं	4	43
67	अश्वपादहतक्ष्क्षोणी	7	10	95	अहो प्रभो! तदा सोऽपि	8	135
68	अश्वमेधममेध्यं वा	2	50	96	अहो राजन्नहो पुत्रि!	3	131
69	अष्टम्यां च चतुर्दश्यां	3	102	97	अहो श्रीपाल! भूपाल!	5	154
70	अष्टम्यां जिनबिम्बानि	3	169	98	अहो श्रेष्ठिन्! महापापी	5	18
71	अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां	8	87	99	अहो श्रेष्ठिन्! स च प्रा	5	112
72	अष्टम्याञ्च चतुर्दश्याम्	8	39	100	अहो स्वामिन्! क्व	5	67
73	अष्टाङ्गं दर्शनं पूतं	1	151	101	अहो स्वामिन्! जडो लो	4	124
74	अष्टादशसहस्राब्दैर्मानसाह	8	209	102	अहो स्वामिन्! जिनेन्द्र!	3	8
75	अष्टाह्निकमहापर्वे	9	2	103	अहो स्वामिन्! सुताया	5	48
76	अष्टोत्तरशतेनोच्चैः	3	162	104	आकाशोऽप्यवकाशस्य	1	146
77	अष्टौ दिनानि सन्धार्य	8	164	105	आगत्य श्रीमतीं प्राह	8	123
78	असत्यं दूरतस्त्याज्यं	8	31	106	आज्ञां जैनेश्वरीं दत्वा	7	40
79	अस्ति मे जननी पूता	4	149	107	आज्ञां विस्तारयन् स्वस्य	6	85
80	अस्तिते जननी कुत्र	4	147	108	आत्मनो जायते सत्यं	6	35

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
109	आदि कृत्वा महाभव्यैर्व्रतं	8	146	137	इत्थं श्रीजिनसिद्धचक्र	3	225
110	आदेशं देहि मे शीघ्रं	4	37	138	इत्थं श्रीजिनसिद्धचक्रविल	8	231
111	आद्या सौभाग्यगौरी	6	28	139	इत्यनुध्याय पापात्मा	5	116
112	आनन्ददायिनीं भेरीं	1	98	140	इत्याकर्ण्य वचस्तस्य	4	137
113	आनन्दमन्त्रिणा	3	197	141	इत्याक्षेपैर्निषिद्धा	4	23
114	आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता	1	69	142	इत्यादि कुष्ठिभिर्युक्तं	2	102
115	आसंसारमतो देव!	4	125	143	इत्यादि कोमलैर्वाक्यैः	9	125
116	आस्त्रवः कर्मणां जन्तोर्जाय	9	60	144	इत्यादि चिन्तयाक्रान्तं	4	4
117	आहाराभयभैषज्यशास्त्रदानं	3	106	145	इत्यादि नियमं कृत्वा	5	93
118	आहारौषधशास्त्रदानमभयं	3	108	146	इत्यादि मधुरैर्वाक्यैस्तं	5	163
119	इक्षुवाटेषु यत्रोच्चै	2	14	147	इत्यादि मन्त्रिभिः प्रोक्तं	6	136
120	इति कोलाहलं कृत्वा	5	22	148	इत्यादि सम्पदासारैः	9	27
121	इति क्षान्त्वा ततस्तञ्च	7	62	149	इत्यादि सम्पदोपेतः	1	43
122	इति त्रिविधपात्रेभ्यो	8	58	150	इत्यादि सिद्धचक्रस्य	3	164
123	इति मत्वा महाभव्यैः	3	36	151	इत्यादि स्तुतिवाक्यौघैः	1	128
124	इति मत्वा महाभव्यैः	8	101	152	इत्यादिकं क्रुधा जल्पन्	6	130
125	इति मन्त्रप्रभावेण	5	43	153	इत्यादिकं जगत्स्वामी	1	149
126	इति विशदविभूत्या	4	153	154	इत्यादिकं जिनैः प्रोक्तं	8	98
127	इति श्रीजिननाथोक्तं	2	71	155	इत्यादिकं जिनैः प्रोक्तं	9	13
128	इति श्रुत्वा जिनेन्द्रोक्तं	2	64	156	इत्यादिकं जिनैर्प्रोक्तं	9	30
129	इति श्रुत्वा ततः प्राह	6	94	157	इत्यादिकं दुराचारं	8	122
130	इति सिद्धसमूहं निर्गतमोहं	3	161	158	इत्यादिकं द्विषट्भेदैरनुप्रे	9	80
131	इति स्वपुण्यपाकेन सुखं	8	212	159	इत्यादिकं प्रजल्पोच्चैः	3	123
132	इति मुक्तो यदा भर्ता	4	31	160	इत्यादिकं प्रिया प्रोक्तं	4	17
133	इति श्रवणमात्रेण श्रेणिको	1	96	161	इत्यादिकं भणित्वा च	4	46
134	इत्थं पुण्यविपाकतो जिन	6	154	162	इत्यादिकं महाभक्त्या	3	9
135	इत्थं विवाहविधिना	2	137	163	इत्यादिकं महास्तोत्रं	4	126
136	इत्थं श्रीजिनधर्मकर्म निरतः	9	129	164	इत्यादिकं विधायोच्चैः	2	132

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
165	इत्यादिकं शुभं वाक्यं	7	58	193	उन्मत्ता सा स्वगर्वेण	2	56
166	इत्यादिकं समाकर्ण्य	7	19	194	उपपादिकशय्यायां	8	192
167	इत्यादिकं हृदि ज्ञात्वा	1	30	195	उपवासैरिदं कार्यमष्टभिः	8	163
168	इत्यालोच्य सुधीस्तत्र	7	7	196	उवाच कामिनीं सोऽपि	4	148
169	इत्युच्चैर्जिनभाषितं शुभतरं	3	119	197	उवाच सुन्दरी सा च	4	14
170	इत्युत्तर प्रहारैः ताः	5	87	198	ऊर्जयन्तगिरिं प्रापत्	6	62
171	इत्येवं गुरुणा तेन	3	120	199	एकदा च वने वीक्ष्य	9	34
172	इत्येवं जिनधर्मज्ञा	2	121	200	एकदा तं प्रियं प्राह	4	146
173	इत्येवं नृसुरासुरौघविलसन्	1	161	201	एकदा भूपतिः सोऽपि	5	47
174	इत्येवं बोधितश्चापि	5	19	202	एकदा भो! भवेल्लोके	7	2
175	इत्येवं सम्पदोपेते	2	24	203	एकदा यौवनं प्राप्तां	2	76
176	इत्येवं सर्वभव्यौघै	1	106	204	एकदा स निशाभागे	6	58
177	इत्येवं सर्ववित्सर्वं	1	154	205	एकदाहं महाप्रीत्या	4	131
178	इत्येवं सा प्रकुर्वाणा	5	72	206	एकदेशेन हिंसादि	3	48
179	इदानीं संग्रहिष्यामि	6	93	207	एकश्चाण्डालकः प्राह	5	127
180	इन्द्रनागेन्द्रचक्र्यादि	1	28	208	एकस्यापि महानन्दो	7	51
181	इन्द्रनागेन्द्रचक्र्यादि	3	50	209	एकेन तेन ते सर्वे	4	85
182	इन्द्रनागेन्द्रचक्र्यादि	5	39	210	एकेन समयेनोच्चैरुर्ध्वगाम	9	115
183	इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्क	1	120	211	एको जीवोऽत्र पापेन	9	51
184	इन्द्रादयः सदा यत्र	1	44	212	एकोनषष्टिकं तत्र पुरं	8	110
185	इष्टानाञ्च वियोगेन	9	49	213	एणखड्गझषादीनां	2	53
186	इहागत्य प्रभो नूनं	5	149	214	एतं बालकमादाय	3	199
187	इहैव भरते क्षेत्रे पवित्रे	8	109	215	एतत् कपाटयुग्मञ्च	4	106
188	ईतयो यत्र पुण्येन	2	17	216	एतान्यणुव्रतान्युच्चैः	3	81
189	उक्तैर्मूलगुणैर्युक्तः	8	81	217	एतासां लक्षणञ्चापि	8	76
190	उत्कृष्टपात्रमनगार	8	57	218	एतासां शतकन्यानां	6	18
191	उत्कृष्टेन समादिष्टमुद्यापन	8	181	219	एते तीर्थकराधीशाः	1	15
192	उद्घाटयिष्यति व्यक्तं	4	134	220	एते बद्धाः किमर्थं भो!	5	177

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
221	एतेषां शर्महेतूनां	1	22	249	एवं सर्वसुरासुरेन्द्रमहितः	9	130
222	एवं गुणव्रतं त्रेधा	3	118	250	एवं स्वपुण्यपाकेन	5	60
223	एवं चित्ते विचार्याशु	4	90	251	एवञ्च तद्द्वयं प्रीत्या	8	150
224	एवं जिनेन्द्रकथितं	7	87	252	एवमष्टादशप्रोक्त सागरान्	8	208
225	एवं तत्र प्रभुः सोऽपि	6	151	253	एषः कोटिभटश्चापि	5	17
226	एवं तत्र वसन्तिस्म	1	58	254	एषा मदनमञ्जूषा	5	16
227	एवं तदा स्वपुण्येन	5	167	255	कथं सन्तः प्रकुर्वन्ति	9	59
228	एवं ते सागरे सर्वे	4	78	256	कदाचिन्निजदेवीभिः	8	207
229	एवं तैः पीडितो गाढं	5	100	257	कदाचिन्मेरूशैलादि	8	206
230	एवं त्रिविधपात्रेभ्यो	8	53	258	कनत्काञ्चनसत्कुम्भै	2	36
231	एवं दूतञ्च सन्मान्य	6	138	259	कन्दमूलञ्च सन्धानं	3	90
232	एवं धर्मार्थकामोरू	2	43	260	कन्दमूलञ्च सन्धानं	8	35
233	एवं नार्यो जिनेन्द्रोक्त	1	105	261	कन्दर्पसुन्दरी मुख्याः	8	229
234	एवं परस्परालापं तयोः	6	100	262	कन्दर्पसुन्दरी सा च	2	72
235	एवं पुण्याधिकः सोऽपि	6	43	263	कन्याः शतानि ताः	6	46
236	एवं पुत्रीं प्रशस्योच्चैः	3	217	264	कम्बलं त्वं परावृत्य	6	125
237	एवं भवावलीं श्रुत्वा	8	225	265	कर्तव्यं भो! सदा नाथ!	4	29
238	एवं मत्वा बुधैर्नित्यं	9	123	266	कर्पूरतिलका तस्य	6	4
239	एवं यावत्सुखं तत्र	6	13	267	कर्पूरवासितैः स्वच्छतोयैः	6	68
240	एवं युद्धं विधायोच्चैः	7	47	268	कर्पूरवासितैः स्वच्छैः	3	143
241	एवं राज्ये स्थितः सौख्यं	7	83	269	कर्पूरागरूकाश्मीर	3	142
242	एवं वर्णाश्रमा यत्र	2	23	270	कर्पूरैलालवङ्गाद्यैः	3	89
243	एवं विधिं विधायोच्चैरष्टम्यां	8	161	271	कर्मणां प्रकृतीश्चापि	9	109
244	एवं विसर्जितो मात्रा	4	48	272	कल्पवृक्षो जडश्चिन्तामणि	1	63
245	एवं शिक्षाशतोपेतैर्भटैः	7	36	273	कषायैः पञ्चविंशत्या	9	61
246	एवं शोभाशतैर्युक्ते	1	60	274	कस्मादत्र समायाता	3	193
247	एवं श्रीपालभूपालः	7	78	275	कस्मैचिद्विश्वनिन्द्याय	2	92
248	एवं श्रीवरदत्ताख्य	8	188	276	काचिज्जगाद भो नाथ!	7	31

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
277	काचिदूचे प्रभो युद्धे	7	32	305	कुण्डलाख्यपुरं गत्वा	6	8
278	काचिन्नीचा गले लग्ना	5	125	306	कुन्थुं कुन्थ्वादिजन्तूनां	1	10
279	काचिन्मे देवरो मूढा	5	126	307	कुन्दकुन्दाख्यविद्यादि	1	20
280	काञ्चनाख्यपुरे तत्र	6	20	308	कुरु त्वं पापनाशाय	8	142
281	कान्तया गमनं सार्धं	4	18	309	कुर्वंस्तपश्चिरं कालं	9	86
282	कान्तवाक्यं समाकर्ण्य	4	13	310	कुर्वन् धर्मं जिनेन्द्राणां	5	61
283	कामः क्रोधश्चमानश्व	1	79	311	कुलस्त्रीभिस्तथालोक्य	3	75
284	कामिन्यः कोमलाङ्ग्यश्च	4	19	312	कुष्ठिना सप्तशत्या	2	97
285	कारयामास कन्यायाः	2	116	313	कुष्ठिने स्वसुता दत्ता	3	207
286	कारयित्वा जिनेन्द्राणां	9	7	314	कुष्ठिनोऽपि पृथक् सर्वे	2	136
287	कारयित्वा तदा शीघ्रं	3	167	315	कुसङ्गतिवशात्पापात्	2	57
288	कारयित्वा महाभव्यैर्ध्वजाद्यैः	8	170	316	कूङ्कणद्वीपनाथेन	6	49
289	कारयित्वा सुधीश्चाष्टौ	9	3	317	कूङ्कणाख्यमहाद्वीपे	6	23
290	कार्यं जागरणं रात्रौ	8	162	318	कृत्वा तत्र जिनाधीशं	6	67
291	कार्यं राज्यादिकं मेऽयं	8	50	319	कृत्वा पञ्चामृतैर्नित्यम्	3	110
292	कालाणवो मता नित्यं	1	145	320	कृत्वा महाग्रहं शीघ्रं	4	58
293	काश्चिच्चन्दनकाश्मीरं	1	102	321	कृत्वा महाभिषेकञ्च	4	111
294	काश्चिच्चरूत्करैर्दीपैर्धूपैः	1	104	322	कृत्वा महाभिषेकञ्च देयं	8	173
295	काश्चिच्छुभाक्षतान्युच्चैः	1	103	323	कृत्वा सम्माननं तेषां	8	180
296	किं ते श्रीपालको बालः	7	20	324	कृपां विधाय भो भव्य!	5	162
297	किं बहूक्तेन भो भव्या!	5	42	325	कृष्णागरुमहाधूपैः	3	149
298	किं बहूक्तेन भो भव्याः	3	42	326	कृष्णागुरुसमुद्भूतैर्धूपैः	4	116
299	किं बहूक्तेन भो भव्याः!	3	186	327	केचिन्महद्धनं धीरा	4	74
300	किं वा कस्याश्च कामिन्याः	5	71	328	केन पापेन चाण्डालो	8	106
301	किं सुते! बहुनोक्तेन	3	132	329	केन पुण्येन जातोऽहं	8	104
302	किन्तु कर्मोदयं राजन्!	5	157	330	केन पुण्येन निर्व्याधिः	8	105
303	किन्तूच्चैर्देवमानुष्य	3	35	331	केन वा विहितं देव कथं	1	159
304	कुक्कुरोऽपि सुरो जातो	5	35	332	केन वा हेतुना प्राप्ता	8	107

क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.
333	को भावी त्वं कृपां कृत्वा	4	132	361	गत्वा तत्र समालोक्य	6	33
334	कोऽहं कस्मात् समायातो	8	195	362	गत्वा प्रेतवनं तत्र	5	133
335	कोकशास्त्राणि चित्राणि	2	49	363	गत्वा शाश्वतसत्क्षेत्रभूमिषु	8	204
336	कोटयो द्वादशप्रोक्तास्तस्यो	9	24	364	गत्वानन्दभरेणाशु तं	1	109
337	कोटिसूर्यप्रभास्पर्द्धि	1	116	365	गत्वाशु तद्वनं रम्यं	8	12
338	कोटीभटो गुणज्ञश्च	5	188	366	गदित्वेति स्वकीयञ्च	6	141
339	कोमलां मालतीमालां	2	126	367	गन्धर्वाख्यो द्वितीयस्तु	6	16
340	कोहलादिकसंयुक्तं	5	173	368	गानादिभिस्तदा सर्वे	5	121
341	क्रमाद्रत्नत्रयं पूर्णं	8	100	369	गालितं तोयमत्युच्चैः	3	88
342	क्रमेण साधयन् देशान्	7	12	370	गुणस्थाने तथा सूक्ष्मसाम्प	9	99
343	क्रियते चन्दनैर्पूजा	8	152	371	गुरोः पार्श्वे शुभे! त्वं मे	8	134
344	क्रूराः सिंहादयो जीवा	1	94	372	गृहं त्यक्त्वा गुरोः पार्श्वे	8	94
345	क्वेयं कन्या स्वरूपेण	2	125	373	गृहीत्वा मत्तमातङ्ग	6	84
346	क्षमस्व त्वं प्रभो! यच्च	7	56	374	गृहीत्वा सद्गुरोराज्ञां	3	136
347	क्षिप्तं पापं त्वया पूर्वं	8	214	375	गृहे गृहे तथा सर्वे	7	76
348	क्षेत्रपालोऽपि लातेन	5	97	376	गृह्णन्तु साररत्नानि	4	77
349	खद्योतैश्छाद्यते किं वा	6	129	377	गो योनिस्पर्शनं पुण्यं	2	51
350	ख्याते मालवदेशस्थे	9	134	378	गोपुच्छचामरद्वन्दे	2	99
351	गच्छन्तस्ते प्रपश्यन्ति	4	73	379	गोमहिष्यादयो यत्र	2	7
352	गच्छे श्रीमतिमूलसंघतिलके	9	131	380	ग्रामो वृत्या वृत्तः स्यात्	2	5
353	गजाश्वरथपादातिं	6	48	381	घातिकर्मक्षये स्वामी	9	106
354	गजाश्वरथपादातिः	7	9	382	घूमन्ते चक्रिरे गाढं	5	96
355	गजाश्वरथपादातैः	6	12	383	चक्रे महामुनीन्द्राणां	8	132
356	गणैर्द्वादाशभिर्नित्यं	1	119	384	चतुर्गतिमहाभेदान्	2	69
357	गत्यन्तरं प्रयात्येव	9	52	385	चतुर्थी प्रोषधाख्या च	8	73
358	गत्यादिमार्गणाभेदै	1	137	386	चतुर्दशगुणस्थानप्रान्ते	9	113
359	गत्वा क्षीणकषायोरू	9	100	387	चतुर्दशभिरुत्सेधो	9	69
360	गत्वा तं भूपतिं नत्वा	6	121	388	चतुर्विधमहासङ्ग	9	10

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
389	चतुर्विधमहासङ्गै	8	172	417	जगौ धर्मपिता! मेऽयं	5	175
390	चतुर्विधमहासैन्यैः	6	60	418	जगौ भो दूत यत्प्रोक्तं	6	137
391	चन्दनागरुकर्पूर	9	58	419	जगौ मदनमञ्जूषा	5	142
392	चन्दनागुरुकर्पूर	2	32	420	जगौ मन्त्री नराधीश	2	111
393	चन्दनागुरुकाश्मीर	4	113	421	जन्ममृत्युजरातङ्क	3	6
394	चम्पकाम्रादिवृक्षौघैः	1	53	422	जय त्वं जिनसर्वज्ञ!	4	118
395	चरितं सर्वभव्यानां मया	9	126	423	जय त्वं त्रिजगद्देव !	1	122
396	चर्मवारिघृतं तैलं	8	34	424	जय त्वं त्रिजगद्बन्धो!	1	123
397	चलच्चामरसच्छत्रध्वजाद्यैः	5	165	425	जय त्वं मुक्तसङ्गोऽपि	4	121
398	चलानि यानपात्राणि	4	75	426	जय त्वं वीरनाथेति सम्ब्रु	1	97
399	चाण्डालैर्वञ्चितेनोच्चै	5	155	427	जय त्वं सर्वजन्तूनां	1	124
400	चारणैर्मागधाद्यैश्च	1	108	428	जय देव! जगद्वन्द्य	4	119
401	चारित्रं च द्विधा प्रोक्तं	3	46	429	जय वीर महावीर	1	125
402	चारूचन्दनकाश्मीर	3	144	430	जय श्रीजिनसद्भानो!	4	120
403	चित्ते विचार्य तामूचे	2	93	431	जय संसारवाराशौ	4	122
404	चिन्तनं सिद्धचक्रस्य	4	26	432	जय सर्वेशतीर्थेश	3	5
405	चिन्तां मा कुरु भो पुत्रि!	3	16	433	जय सिद्धचक्र कविराज	3	159
406	चिन्तामणेः तथा कल्पतरोः	8	143	434	जय सिद्धचक्र लोकप्रसि	3	158
407	चिन्तारत्नं यथा कोऽपि	2	127	435	जय सिद्धचक्र सूक्ष्मस्वाभा	3	156
408	चिरकालं जिनेन्द्राणां	7	84	436	जय सिद्धचक्रचित्तौघहरण	3	160
409	चेतना लक्षणो जीवः	1	134	437	जय सिद्धचक्रदेवाधिदेव	3	153
410	चैत्यभक्तिस्तथा पञ्च	3	100	438	जय सिद्धचक्रपरमात्मरूप	3	154
411	चैत्यालये महावज्र	5	147	439	जय सिद्धचक्रसम्यक्त्व	3	155
412	छत्रचामरघण्टाद्यैः	2	114	440	जयकोलाहलं कुर्वन्	8	9
413	छत्रादिभिर्गजारूढः	8	11	441	जयत्वं जिनराजोच्चैः	3	7
414	छाया वा पुरुषेणैव	4	16	442	जयत्वं भव्यसंदोह	3	4
415	छेदनं भेदनं शूलारोहणं	9	47	443	जयत्वं श्रीजिनाधीश!	3	3
416	जगुस्तास्तां समभ्येत्य	5	74	444	जयन्तु गुरवो नित्यं	1	19

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
445	जयसिद्धचक्र दुर्गति विना	3	157	473	तं निशम्य सुधीः सोऽपि	5	9
446	जलानां गालनं पुण्यं	3	85	474	तं प्रोवाच सुधीः सोऽपि	7	59
447	जाड्यां धियो हरति	2	75	475	तं विलोक्य जिनं वीरं	1	112
448	जातमुद्घटितं शीघ्रं	4	108	476	तं विलोक्य प्रभुर्नत्वा मुनेः	8	113
449	जातीचम्पकपुन्नाग	4	114	477	तं समारुह्य पूतात्मा	6	65
450	जातीचम्पकपुन्नागैः	3	146	478	तच्छिष्यो गुणरत्नरञ्जित	9	132
451	जाते द्विवार्षिके चास्मिन्	3	196	479	तज्जारशङ्कया चित्ते	3	206
452	जामातायं नृपस्यासीत्	5	115	480	ततः कामाग्नि सन्तप्तो	5	7
453	जितदेवाङ्गना कन्या	2	112	481	ततः कोपं परित्यज्य	7	25
454	जित्वा गौर्जरभूपालान्	6	80	482	ततः प्रासादभूगर्भं	6	107
455	जित्वा शत्रूनहो स्वामिन्!	7	30	483	ततः श्रीगौतमस्वामी	1	129
456	जिनसिद्धमहानाम	5	151	484	ततः श्रेष्ठी स्वयं प्राप्तः	5	88
457	जिनेन्द्रचरणाम्भोज	1	65	485	ततः साऽपि प्रसन्नात्मा	3	191
458	जिनेन्द्रचरणाम्भोज	1	83	486	ततः सिंहासनारुढः	8	201
459	जिनेन्द्रभवनोद्धारं	3	109	487	ततः सोऽपि करोतिस्म	4	107
460	जिनेन्द्रवचने चञ्चुस्तस्य	6	95	488	ततः सोऽपि प्रजापालो	6	142
461	जिनेन्द्रस्नपनं कृत्वा दत्वा	9	81	489	ततश्चान्तःपुरे नामा	6	21
462	जिनोक्तशास्त्रदानेन	8	59	490	ततस्तत्र विलोक्योच्चैः	3	10
463	जिनोक्तसप्ततत्त्वानां	3	31	491	ततस्तयोर्महायुद्धे	7	38
464	जिनोक्तसप्ततत्वानां	8	77	492	ततस्ते श्रेष्ठिनः पोताः	4	95
465	जीवपुद्गलकौ प्रौक्तौ	1	148	493	ततस्त्वया समं नाथं	4	15
466	जीवादिसप्ततत्त्वानि पुण्यं	9	108	494	ततो घोरे महाश्वभ्रे	5	84
467	जीवितं यौवनं पानं	9	40	495	ततो दिने द्वितीये च	5	178
468	जैनेश्वरं वचः पूतं	7	41	496	ततो धर्मप्रसादेन	3	224
469	ज्ञानं निर्वृतिसाधनं जिनपते	3	45	497	ततो बर्बरराजोऽपि	4	93
470	ज्ञानवान् ज्ञानदानेन	8	61	498	ततो भव्या जिनेन्द्रोक्तं	7	74
471	ज्ञानसागरनामानं मुनीन्द्रं	7	63	499	ततो भव्यैः प्रकर्तव्यं	5	182
472	डाकिनी शाकिनी चापि	3	128	500	ततो भव्यैर्जगत्सारं	1	29

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
501	ततो भव्यैर्व्रतं पूतं	8	186	529	तत्रादौ च महाभव्यैः	8	26
502	ततो भ्रान्त्यातिरुष्टेन	5	131	530	तत्रादौ पालनीयं हि	3	26
503	ततो मदनसुन्दर्या	6	98	531	तत्रापि कोऽपि सम्प्राप्तः	6	14
504	ततो मेल्पाटभूपानां	6	81	532	तत्रायातान् वणिग्वर्यान्	6	2
505	ततो राजा तमाहूय	5	171	533	तत्रोपायं कृपासिन्धो!	3	18
506	ततो विद्याधरो राजा	4	138	534	तत्समाकर्ण्य सम्प्राह	8	108
507	ततोऽन्तवासिनां राज्ञां	6	82	535	तत्समाकर्ण्य सा तासां	5	77
508	ततोऽन्यवणिजं प्राह	5	20	536	तत्सम्यक्त्वं भवेत्पुत्रि	3	28
509	ततोऽरिदमनः सोऽपि	6	77	537	तत्सर्वं क्षणविध्वंसि	9	41
510	ततोऽसौ नवमे स्थित्वा	9	98	538	तत्स्नानगन्धतोयेन	3	163
511	तत्कथं क्रियते चेति	3	133	539	तथा कमण्डलूत्कृष्टपिच्छ	8	177
512	तत्कन्यकाः शतं पूतं	6	10	540	तथा कुक्कुरमार्जार	3	96
513	तत्प्रतिष्ठां गरिष्ठाञ्च	9	8	541	तथा चर्माश्रितं तोयं	3	56
514	तत्प्रभावं समाकर्ण्य	8	228	542	तथा तत्र जगत्सार	5	170
515	तत्प्रभावं समालोक्य	4	67	543	तथा तत्र पुरोत्पन्ना	1	54
516	तत्प्रभावमहावातकम्पिता	9	103	544	तथा तपश्चिरं कृत्वा	9	117
517	तत्र क्षत्रियभूपानां	6	52	545	तथा तया तदा सर्वे	3	179
518	तत्र चम्पापुरी मध्ये	7	69	546	तथा तयोश्च सञ्जातं	6	5
519	तत्र देशो महानासीद्	1	32	547	तथा तस्य नरेन्द्रस्य	9	14
520	तत्र फाल्गुनमासे च	6	66	548	तथा तस्य मुखे क्षिप्त्वा	5	99
521	तत्र राजादयः सर्वे	6	148	549	तथा तातादयस्ते च	4	20
522	तत्र वृक्षतले संस्थं	5	51	550	तथा तासां प्रतिष्ठाञ्च	8	64
523	तत्र श्रीमज्जिनेद्राणां	4	110	551	तथा ते बर्बराः प्रीताः	4	94
524	तत्र श्रीमज्जिनेद्राणां	9	6	552	तथा त्रलोक्यसारञ्च	1	150
525	तत्र श्रीवरदत्ताख्यं मुनिं	8	137	553	तथा देशसहस्राणि	9	25
526	तत्र स्थित्वा कियत्कालं	6	57	554	तथा पीडां मुनीद्राणां	8	124
527	तत्रपुर्यां प्रजापालो	2	44	555	तथा पुत्र! विधेयो हि	4	44
528	तत्राऽस्ति धवलो श्रेष्ठी	4	51	556	तथा भव्याः करिष्यन्ति	9	122

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
557	तथा मदनमञ्जूषा सा	9	19	585	तदा तन्नादतः शीघ्रं	4	63
558	तथा मदनसुन्दर्या सार्धं	9	84	586	तदा तस्य च ते पोता	4	52
559	तथा महीभुजा तेन	5	58	587	तदा ताभिः समस्ताभिः	6	110
560	तथा मौनव्रताद्युच्चै	3	91	588	तदा तीर्थकराधीशवीर	1	130
561	तथा राजन्! महाभव्यैः	8	62	589	तदा ते देवदेव्यादया	5	103
562	तथा राज्ञीशतोपेतो	1	86	590	तदा ते भूमिपाः	7	70
563	तथा लोचमचेलत्वमस्नानं	9	93	591	तदा ते साक्षिणः सर्वे	7	49
564	तथा श्रीमज्जिनेन्द्राणां	3	111	592	तदा तौ दम्पती हृष्टौ	3	182
565	तथा श्रीमज्जिनेन्द्राणां	8	66	593	तदा दूतात् समाकर्ण्य	7	37
566	तथा श्रीसिद्धचक्रञ्च	6	71	594	तदा प्रभुः सुतां प्राह	3	215
567	तथा श्रीसिद्धचक्रस्य	8	149	595	तदा प्रभृति सद्भृत्यान्	5	50
568	तथा श्रुतं जिनेन्द्रोक्तं गुरु	8	160	596	तदा प्रभृतिनित्यञ्च	3	185
569	तथा स राजते राजा	1	71	597	तदा बर्बरराजोऽपि	4	87
570	तथा सन्तुष्टचित्तः	4	143	598	तदा भूमिश्चचालोच्चैः	7	11
571	तथा सर्वे जना मूढो	9	36	599	तदा श्रवणमात्रेण	5	152
572	तथा साधून्मुनीन्द्रांश्च	3	122	600	तदा श्री जिनसिद्धानां	3	174
573	तथा सुश्रावकः पात्रं	8	55	601	तदा श्रीपाल राजोऽपि	6	89
574	तथा सुश्रावकैस्त्याज्या	3	58	602	तदा श्रीपालभूपालो	7	52
575	तथान्यदा सरस्तीरे	8	118	603	तदा श्रीपालराजोऽपि	7	65
576	तथैकादश भो भव्या	8	71	604	तदा श्रेष्ठी समालोक्य	5	109
577	तदहं संप्रवक्ष्यामि	3	49	605	तदा सोऽपि प्रियावाक्यं	6	118
578	तदा कर्मवशात्तत्र	2	96	606	तदा स्वमातरं प्राह	2	119
579	तदा कोलाहलं श्रुत्वा	5	174	607	तदा स्वसम्पदालाभ	6	106
580	तदा जातावधिर्मत्वा	8	196	608	तदा हृष्टो महीनाथः	5	122
581	तदा तं मानसं मत्वा	3	208	609	तदाऽसौ सर्वभव्यानां	9	107
582	तदा तत्र जगत्सारः	3	223	610	तदाकर्ण्य च स श्रेष्ठी	4	55
583	तदा तत्स्पर्शमात्रेण	4	64	611	तदाकर्ण्य च स श्रेष्ठी	4	92
584	तदा तद्दर्शनेनोच्चै	6	105	612	तदाकर्ण्य प्रभुः सोऽपि	6	146

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
613	तदाकर्ण्य प्रभुः सोऽपि	8	8	641	तस्मादागम्यते यावन्मया	4	21
614	तदाद्यैश्च प्रियावृन्दै	7	82	642	तस्माद्भो भव्यराजेन्द्र	8	223
615	तद्देशानेकराजेन्द्रकन्याः	6	79	643	तस्य चारुगुणग्रामो	1	88
616	तद्द्वयं पञ्चपीयूषैः	3	141	644	तस्य तस्मात्तदेवात्र	6	117
617	तद्विलोक्य तदा माता	2	118	645	तस्य द्वारञ्च संवीक्ष्य	4	104
618	तद्व्रतं त्रिजगत्सारं	3	165	646	तस्य भेदद्वयं प्राहुर्मुनयः	8	95
619	तन्निशम्य दयालुत्वात्	6	139	647	तस्य श्रेणिकभूपस्य	1	80
620	तन्निशम्य पितुर्वाक्यं	2	86	648	तस्याग्रमहिषी चाहं	3	195
621	तन्निशम्य पुनर्दूतो	7	22	649	तस्याश्च सुरसुन्दर्या	6	76
622	तन्निशम्य प्रजापालः	3	213	650	तां विलोक्य सुतां शान्तां	2	83
623	तन्निशम्य प्रभोर्वाक्यं	8	19	651	तां सतीं गुणमालाख्यां	5	56
624	तन्निशम्य भयत्रस्तः	5	114	652	तां समानीय वेगेन	6	109
625	तन्निशम्य मुनीन्द्रोऽपि	3	19	653	ताभिः स्त्रीभिः समायुक्तः	6	50
626	तन्निशम्य सुता प्राह	2	107	654	ताम्बूलदायकः कुष्ठी	2	100
627	तन्निशम्य सुधीस्सोऽपि	5	130	655	ताम्बूलासनसद्वस्त्रैः	4	59
628	तन्निशम्यावदत्सोऽपि	6	115	656	तावत्तत्र समागत्य	4	127
629	तन्मध्ये कोऽपि चाण्डालो	5	124	657	तासां मनोऽम्बुजान्युच्चै	6	44
630	तन्मध्ये नित्यशः स्तोक	3	94	658	तिष्ठ त्वं साम्प्रतं बाले!	6	96
631	तन्मुख्यास्ता जगुश्चैवं	6	31	659	तीर्थेशामभिसेवनात् सुरवरै	3	115
632	तन्मुनेर्धर्मवृद्ध्या तौ	3	11	660	तुच्छ बुध्याऽपि ते	4	25
633	तमायातं समालोक्य	3	214	661	तुष्टस्तेन प्रभुर्मत्वा	3	220
634	तया चेलनया सार्धं	1	85	662	ते भव्याः सारसौख्यानि	8	43
635	तयोः प्राक्समभूत्पुत्री	2	46	663	तेऽपि नत्वा जगौ	6	3
636	तरन्तो जलधौ पोता	4	66	664	तेऽपि नीचा धनार्थं च	5	119
637	तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि	3	24	665	तेजस्ते शीलनिर्मुक्तं	3	210
638	तस्मात् स्वराज्यरक्षार्थं	6	135	666	तेन पुण्येन जातोऽयं	3	211
639	तस्मात्तोयं समानीतं	3	87	667	तेन युक्तो महाभव्यः	8	29
640	तस्मात्सर्वप्रयत्नेन	9	63	668	तेन सार्धं यदा युद्धं	7	29

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
669	तेनाहं प्रभुना दत्वा	7	16	697	दर्शनज्ञानचारित्रं	9	112
670	तेनोक्तं मुनिना राजन्!	8	114	698	दर्शनप्रतिमा पूर्वा	8	72
671	तैश्च राजगुणैः षड्भिः	1	74	699	दर्शनेन जगत्पापताप	4	103
672	तैश्चश्मशानकं नीतो	5	132	700	दशम्यां शतधा पूजाम्	3	172
673	तोयगन्धाक्षताद्यैश्च	3	151	701	दशलक्षगुणां पूजां	3	173
674	त्यक्त्वा मोहादिकं ग्रन्थं	3	117	702	दशलाक्षणिकं धर्मं	1	152
675	त्यज्यते विफलारम्भो	3	95	703	दाता दीनादिकेषूच्चैः	6	124
676	त्रिःपरीत्य तदा भक्त्या	1	111	704	दानकाले कृते दोषे	8	51
677	त्रिःपरीत्य महाप्रीत्या	8	14	705	दानपूजातपःशीलधर्मेषु	6	41
678	त्रिकालयोगकालज्ञो	9	89	706	दानपूजाव्रतोपेताः किं	9	17
679	त्रिचत्वारिंशतासार्धं	9	70	707	दापयित्वा महाभेरीं	8	10
680	त्रिजगद्वनितावृन्द	3	178	708	दापयित्वा समारुह्य	7	28
681	त्रिषष्ठी प्रकृतीरेव	9	102	709	दारिद्रयं याचकादीनां	9	11
682	त्रैलोक्यस्य स्वरूपञ्च	9	110	710	दासीदासगजाश्वादि	4	142
683	त्वं चेन्मच्चेतसो यासि	4	34	711	दिग्देशानर्थदण्डोच्चै	3	92
684	त्वं धर्मज्ञोऽसि शूरोऽसि	4	41	712	दिग्व्रतं कथ्यते तच्च	3	93
685	त्वं पिता बन्धुरत्रोच्चैस्त्वं	8	139	713	दिग्व्रतञ्च यथाशक्ति	8	36
686	त्वं मे पुत्रसमो धीमान्!	4	69	714	दिवामैथुननिर्मुक्तः	8	89
687	त्वत्पुण्येनापि भो वत्से!	3	202	715	दिव्यध्वनिः समुत्पन्नः	1	131
688	त्वमेव परमानन्द	4	123	716	दिव्यरत्नसुवर्णोरुपीठ	1	113
689	त्वमेव भुवने सिद्ध	3	218	717	दिव्याभरणवस्त्राणि	2	133
690	दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः	4	89	718	दिव्याभरणवस्त्राद्यैः	5	104
691	ददातिस्म तदा राजा	2	134	719	दिव्याभरणसद्वस्त्र	1	84
692	दध्यक्षतादिकं क्षिप्त्वा	4	47	720	दीक्षां जैनेश्वरीं पूज्यां स	9	83
693	दयाधर्ममजानानो	6	37	721	दीर्घकालं जनानां च	9	111
694	दयाधर्मरतो नित्यं	8	84	722	दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्य	5	34
695	दयावल्ली सदा सेव्या	3	60	723	दुराग्रही नृपश्चाह भो	2	113
696	दर्शनज्ञानचारित्रं	9	45	724	दुर्गतिर्मानभङ्गश्च	5	10

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
725	दुर्गतिश्च क्षयं याति	5	37	753	धनैर्धान्यैर्जनैर्नित्यं	2	8
726	दुर्गमुल्लङ्घ्य वेगेन	6	90	754	धर्मं व्रतानि च स्वामिन्	8	138
727	दुष्टानामपि चौराणाम्	4	88	755	धर्मं सद्धर्मतीर्थेशं भक्तितः	1	9
728	दुष्टाष्टकर्मनिर्मुक्तान्	1	16	756	धर्मंकृत्वा सुखं भुक्त्वा	2	21
729	दूतवाक्यं समाकर्ण्य	6	19	757	धर्मः संसारवाराशौ	3	23
730	दूतिका लूतिका यूयं	5	82	758	धर्मद्रव्यं तयोर्नूनं	1	143
731	दूतीः प्रति क्रुधा प्राह	5	78	759	धर्मध्यानञ्चतुर्भेदं	9	88
732	देवतामन्त्रतन्त्रार्थं	3	59	760	धर्मश्चापि जिनेन्द्राणां	9	77
733	देवाङ्गवस्त्रसंयुक्तो	8	193	761	धर्मश्चिन्तामणिर्लोके	3	22
734	देवानामपि संसारे	9	50	762	धर्मेण निर्मलकुलं	7	86
735	देवीगणादिर्भियुक्तः	8	203	763	धिक्कामं धिग्दुराचारं	5	181
736	देवेन्द्रादिपदं यस्माद्भव्याः	8	184	764	धिक्कोपं धिक्मूढत्वं धिग्गर्वं	2	117
737	देवोऽर्हन् दोषनिर्मुक्तो	3	30	765	धौतवस्त्राणि चित्राणि	8	174
738	देवोऽर्हन्दोषनिर्मुक्तः	8	27	766	धौतवस्त्रादिकं कृत्वा	2	60
739	देशकोषपुरग्राम	3	221	767	ध्वनिना तेन पञ्चास्ति	1	132
740	द्यूतमांसं सुरावेश्या	8	80	768	न केवलं बहिः शत्रून्	1	78
741	द्वादशैव प्रमाणानि	8	176	769	न दत्तं न स्वयं भुक्तं	6	36
742	द्वादशैवं सहस्राणि	9	20	770	नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं	1	1
743	द्वादशोरूसहस्राणि गजाः	9	22	771	नत्वा स्वमातरं प्राह	4	36
744	द्वारपालक! ब्रूहि त्वं	4	105	772	ननाम परया प्रीत्या	6	103
745	द्वितीया सा विशुद्धात्मा	2	58	773	नन्ददेव! जयत्युच्चैः	1	117
746	द्वित्रिसन्ध्यं सुते! भव्यैः	3	101	774	नन्दीश्वरविधानस्य	8	187
747	द्विधा रत्नत्रयेणोच्चैः	5	29	775	नमामि सुमतिं शान्तं	1	4
748	द्विधा सङ्गं परित्यज्य	9	82	776	नमिं तीर्थेश्वरं वन्दे	1	12
749	द्विषट्सम्वत्सरः प्रान्ते	4	35	777	नरत्वं दिव्यमासाद्य तपः	9	119
750	धनं विना न भातीह	4	9	778	नागवल्लीदलं रत्नं	4	12
751	धनपालस्तदा राजा	5	129	779	नाना वस्तुसहस्राणि	4	71
752	धनपालोऽवदद्राजा	5	158	780	नानाकरैर्विभाति स्म	1	36

क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.
781	नानाकाव्यानि शास्त्राणि	2	66	809	निर्ग्रन्था मुनयो यत्र	2	22
782	नानादेवविमानाद्यैर्जयनादैः	1	95	810	निर्जरा कर्मणां कार्या	9	64
783	नानादेशसमुत्पन्नाः	9	23	811	निर्धनाः सद्धनं यस्माद्रा	1	27
784	नानाभोगशतैर्नित्यं	3	183	812	निर्मलं विमलाधीशं	1	8
785	नानारत्नसुवर्णादि	4	141	813	निश्चयाज्जीवितः पूर्वं	1	133
786	नानारत्नसुवर्णादि	6	123	814	निश्चलं मेरूवद्गाढं	8	13
787	नानारत्नसुवर्णाद्यैः	1	68	815	निष्कण्टकं कृतानन्दं	7	79
788	नानारूपैश्च नृत्यैश्च	5	120	816	नृत्यं कृत्वा नृपस्याग्रे	5	117
789	नानावर्णध्वजव्रातै	1	46	817	नृत्यन्तीनां पुरोऽस्माकं	6	6
790	नानावस्त्रसुवर्णाद्यैः	6	149	818	नेत्रपुष्पोज्ज्वलां पुण्य	2	84
791	नानुमत्याख्यया ज्ञेया	8	75	819	नेमिं धर्मरथे नेमिं	1	13
792	नामतोऽपि पलं त्याज्यं	3	52	820	नैमित्तिकेन तेनोक्तं	4	54
793	नार्योऽपि निर्ययुः काश्चित्	1	101	821	नैव गृह्णाति मूढात्मा	7	3
794	नार्योयत्र जगत्सार	2	11	822	नैव मुञ्चति कन्येयं	2	110
795	नालिकेराम्रखर्जूर	1	38	823	नैवान्यायं करोत्येषा	3	212
796	नालिकेराम्रजम्बीर	3	150	824	नैवेद्यैर्बहुभिर्भेदैर्दुःख	4	115
797	नाहं शीलं जगत्सारं	5	91	825	नोचेत्प्राणान् विमुञ्चामि	5	135
798	निःशङ्कितादिभिर्युक्तं	3	32	826	पक्वान्नैश्चारूपी	3	147
799	निजासन प्रकम्पेन	5	94	827	पञ्चकल्याणकोपेतां	8	65
800	नित्यं चिन्तयतः पुन्सो	4	27	828	पञ्चधा रत्नसञ्चूर्णैः	8	147
801	नित्यं यः शान्तभावेन	1	62	829	पञ्चपण्डितनामनं देशं	6	51
802	नित्यं यथा यथा भर्त्ता	3	175	830	पञ्चप्रकारपक्वान्नैर्नाना	8	154
803	नित्यं श्रीजिनसिद्धपूजनपरः	5	189	831	पञ्चसप्ततलास्तुङ्गा	2	28
804	नित्यं सुपात्रदानेन	2	41	832	पञ्चामृतप्रवाहैश्च	9	4
805	निधानं वा समासाद्य	4	109	833	पञ्चास्तिकायसद्भेदान्	2	67
806	निन्दन्तिस्म तदा केचिद्	2	122	834	पञ्चेन्द्रियमनोऽन्तस्थ	9	91
807	निमज्य जलधौ शीघ्रं	5	26	835	पञ्चेन्द्रियाणि निर्जित्य	9	65
808	निर्गर्वा शोभतेस्मोच्चै	2	73	836	पञ्चैते परमानन्ददायिनः	1	21

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
837	पट्टदेवी पदं प्राप्य	7	81	865	पापोपदेशहिंसा	3	97
838	पद्मिनीव गतच्छाया	5	69	866	पालयन्पुत्रवत् प्रीत्या	7	85
839	परचक्रं समायातमिति	6	87	867	पिच्छं गृह्णाति पूतात्मा	8	97
840	परस्त्री स्वयमायाताः	3	74	868	पिता प्राह सुते! त्वञ्च	2	85
841	परस्त्रीरूपरागेण	5	11	869	पितृव्यं भावतो नत्वा	7	53
842	परानिन्दो गुणग्राही	6	40	870	पीठं संस्थाप्य तत्रोच्चैः	8	148
843	परिग्रहेषु सर्वेषु प्रमाणं	8	32	871	पुढवी जलं च छाया चउ	1	142
844	परिणीय ततो मध्ये	6	83	872	पुण्यं श्रीमज्जिनेन्द्राणां	5	169
845	परिणीय पुनः प्राप	6	54	873	पुण्यतस्ते तदा वीक्ष्य	4	56
846	परित्यज्य पुरीं चम्पाराज्यं	7	17	874	पुण्येन दूरतरवस्तु	7	75
847	परे राजादयो येऽपि दीक्षित	9	120	875	पुण्यैर्नवभिरत्रोच्चैर्दातुः	8	42
848	परोपकारसद्रत्न	5	161	876	पुत्रमित्रकलत्रादि	3	129
849	पवित्रे श्री जिनाधीश!	2	2	877	पुत्रमित्रकलत्रादि	9	39
850	पशूनां वधबन्धादि	9	48	878	पुत्रमित्रकलत्रादिसन्तानं	8	69
851	पश्चाद्युद्यापनं प्राहुर्मुनयः	8	169	879	पुत्रवाक्यं समाकर्ण्य	4	39
852	पश्य पुत्र्यानया प्रोक्तं	2	91	880	पुत्रा मदनसुन्दर्याश्चत्वारो	9	18
853	पश्यन्राजा स्वचित्ते	2	124	881	पुत्रिवाक्यं सुयोग्यं	2	90
854	पात्रं मे गृहमायातु तस्मै	8	46	882	पुत्री च गुणमालाख्या	5	46
855	पात्रदानं गुणाधानं	1	153	883	पुत्री मदनमञ्जूषा	4	130
856	पात्रदानं जिनेन्द्रार्चा	3	184	884	पुत्र्याः योग्यो वरोऽयं	2	105
857	पात्रदानं विधायोच्चैर्निधानं	8	166	885	पुत्र्यो विलासवत्याद्याः	6	17
858	पात्रदानं सदा कार्यम्	8	41	886	पुनः पुनः प्रशस्योच्चैः	8	197
859	पात्रदानेन पूतात्मा या	1	82	887	पुनः पुनः प्रिये! मत्वा	4	22
860	पात्रदानेन भो राजन्!	3	107	888	पुनः श्रीजिननाथोक्त	8	224
861	पापिना श्रेष्ठिनाऽनेन	5	148	889	पुनः सैन्यश्रियं श्रुत्वा	6	108
862	पापिन्यो योषिता यूयं	5	86	890	पुनः स्तुत्वा जिनान्नत्वा	3	113
863	पापी कामातुरश्चित्ते	5	4	891	पुनर्जैनमते दक्षा जगौ	2	108
864	पापी मायान्वितस्तत्र	5	63	892	पुनर्नत्वा मुनिं प्राह	3	12

क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.
893	पुनर्नत्वा मुनिं प्राह	8	16	921	प्रत्यक्षं जिनधर्मकर्मनिरतः	3	226
894	पुनर्मुनिर्जगादोच्चैः	3	124	922	प्रत्यक्षकेवलज्ञानभास्करान्	8	205
895	पुनस्तां पूजयामास	4	112	923	प्रदीपे दीप्यमाने च	7	60
896	पुनस्ते तस्य सद्वेदान्	3	29	924	प्रभुः प्राह सदुःखेन	3	209
897	पुनस्त्वं याहि तं भूपं	6	140	925	प्रभो! कल्पलतेवोच्चैर्भक्ति	1	127
898	पुरं राजगृहं तत्र	1	45	926	प्राणान् मुञ्चामि किं	4	33
899	पुरान्निर्गत्य वेगेन	6	143	927	प्रातरुत्थाय जैनेन्द्रीं दीक्षां	8	126
900	पुरी ते वेष्टिता येन	6	134	928	प्राघूर्णकक्रियां कृत्वा	3	192
901	पुरीं प्रवेशयामास	6	147	929	प्रापुस्ते परमानन्दं	1	156
902	पुष्पदन्तं लसत्कुन्द	1	6	930	प्रापुस्ते शस्त्रसंघातै	4	79
903	पूजयामास पूतात्मा	8	200	931	प्रासादोपरिभूमौ च	3	205
904	पूजयित्वा जिनानुच्चैः	8	157	932	प्रोक्तं मदनसुन्दर्या	6	59
905	पूजां विधाय सद्वस्तु	2	81	933	प्रोतुङ्गं कुप्यवस्त्राद्यै	4	72
906	पूज्यपूजाक्रमेणोच्चैर्भव्यः	3	114	934	प्रोवाच दूतं रे याहि	6	128
907	पूर्व पापेन तत्रापि	3	200	935	फलं दलं जलं बीजं पत्र	8	88
908	पूर्वरूपादपि प्राप्त	3	177	936	फलैर्नारङ्गजम्बीरै	8	156
909	पूर्वापरविभागेन	9	68	937	बाहुदण्डैः प्रचण्डैश्च	7	45
910	पूर्वोक्त कलाशादींश्च	9	9	938	बाह्यप्राणा धनान्युच्चै	3	69
911	पृथ्वी जलं तथा छाया	1	140	939	बाह्येषु दशसु प्रोक्तं	8	92
912	पोतस्थः सागरे गच्छन्	5	3	940	बोधिः स्याद्दर्शनज्ञानचारित्र	9	75
913	पोतान् प्रज्वालयामास	5	98	941	ब्रह्मचर्यव्रतं पूतं	3	137
914	पोतान् समुद्रतीरस्थां	4	60	942	ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः	9	31
915	पोतेभ्यस्ते समुत्तीर्य	4	97	943	भक्तितः तं मुनिं नत्वा	3	121
916	प्रच्छन्नं संस्थितो यावत्	6	91	944	भटस्य जननी काचित्	7	33
917	प्रजापालं प्रति व्यक्तं	6	119	945	भद्रे नीच कुलोत्पन्न	5	140
918	प्रजापालः प्रभुस्तत्र	2	82	946	भर्त्ता मे श्रेयसां कर्ता	6	99
919	प्रतापनिर्जितारातिमण्डलो	1	61	947	भवेदुच्चैः प्रजल्पेति	7	35
920	प्रतिग्रहोच्चैः सुस्थानं	8	44	948	भव्यपद्माकराणाञ्च	8	17

क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधि कार	श्लोक क्र.
949	भव्यानां पुण्यतो नित्यं	1	49	977	मन्त्रतन्त्रादिकैर्यत्र	3	41
950	भव्यास्ते परमानन्दै	1	100	978	मन्त्रिणः कुष्ठिनस्तस्य	2	101
951	भासिनीं सर्वतत्वानां	8	20	979	मन्त्रिवाक्यं समाकर्ण्य	2	104
952	भास्करो वा तमस्तोमं	7	21	980	मन्त्री जगौ प्रभो! कुष्ठि	2	103
953	भुक्त्वा राज्यं चिरं सोऽपि	8	191	981	मन्त्रोऽयं कल्पवृक्षश्च	5	40
954	भुजोपार्जितवित्तेन	4	8	982	मया कुलं प्रपृष्टेन	5	141
955	भुञ्जन्भोगान्मनोऽभीष्टान्	5	187	983	मल्लयुद्धं चिरं तौ द्वौ	7	46
956	भूताविष्टो नरश्चापि	2	129	984	मल्लयुद्धं प्रयुद्ध्येताम्	7	43
957	भूपतिः प्राभृतं वीक्ष्य	5	108	985	मल्लयुद्धे तयोस्तत्र	7	44
958	भूपतीना सहस्राणि	9	21	986	मल्लि सन्मल्लिकादाम	1	11
959	भूपतेस्तस्य सञ्जाताः	6	24	987	मल्लिवालडमहादेशे	6	53
960	भृङ्गारीमत्र पीठानि	8	175	988	मस्तके तस्य तिष्ठन्ति	9	72
961	भो भूपते! स्थिरं कृत्वा	8	21	989	महाकपटकूटेन	5	150
962	भो राजन्! गृहवासेन	8	129	990	महाकल्लोलसध्वस्तै	4	76
963	भो सुते! सर्वकार्याणि	3	21	991	महाघण्टानिनादैर्वा	4	102
964	भोगाः रोगोपमा सर्वे	8	130	992	महादरं प्रहर्षेण कृत्वा	6	144
965	भोगोपभोगयोः संख्या	3	103	993	महाद्वाराणि चत्वारि	2	26
966	भोगोपभोगवस्तूनां	8	40	994	महाभक्तिभरेणाशु	8	226
967	मकारत्रयः सन्त्यागः	3	51	995	महाभवनसंयुक्तं	4	96
968	मक्षिकावमनं निन्द्यं	3	54	996	महामुनि समायातो	8	4
969	मण्डितश्चक्रवर्तीव	6	61	997	महावातशतैस्तीव्रैः	5	95
970	मत्पितुः श्रूयते नैव	4	3	998	महाव्रतानि पञ्चोचैः कृत्व	9	90
971	मत्वा तं तादृशं भव्यं	4	57	999	महाशुक्रे सुरेन्द्रोऽभून्महा	9	118
972	मत्वैवं धनधान्यादि	3	80	1000	महासत्वगजारूढः	9	95
973	मदनादिसुन्दरी तां श्वश्रू	3	189	1001	महासैन्य समायुक्तं	6	55
974	मद्यमांसमधुत्यागः	8	79	1002	महोत्सवशतैः कृत्वा	5	57
975	मनोहरः सुतो ज्येष्ठः	5	45	1003	मातङ्गोऽयमिति व्यक्तं	8	121
976	मन्त्रतन्त्रादिकं कर्म	2	54	1004	माता–पिता तथा बन्धु	5	41

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1005	मातुलस्य भगिन्याश्च	4	7	1033	यच्च पुत्रोत्सवैर्नित्यं	1	59
1006	मारणे किं प्रयासोऽत्र	5	172	1034	यच्चरित्रं सदा सर्वरोग	1	23
1007	मार्गेषु यत्र सर्वत्र	2	13	1035	यज्ज्ञानं श्रीजिनेन्द्रोक्तं	3	38
1008	मासैर्नवभिरेकं हि सुखाश्वा	8	210	1036	यतः सन्तः प्रकुर्वन्ति	7	57
1009	मिथ्यागर्वोऽस्ति भो नाथ!	6	114	1037	यत्कीटपतङ्गादेर्भक्षणात्	3	82
1010	मिथ्यात्वकुगुरूसङ्गेन	8	116	1038	यत्ते निगद्यते नाथ!	4	30
1011	मिथ्याशास्त्रवशात्तत्र	2	55	1039	यत्परस्त्री परित्यागो	3	72
1012	मुक्तिक्षेत्रमिव व्यक्तं	6	63	1040	यत्पुरं सर्वदा सर्वैर्धनै	1	48
1013	मुक्तो जीवो भवेत्सिद्धो	1	138	1041	यत्पुरा रचितं पूर्वं	1	24
1014	मुनयो येषु कुर्वन्ति	2	38	1042	यत्पुर्याश्च चतुर्दिक्षु वना	1	50
1015	मुनिं नत्वा सुभावेन	3	166	1043	यत्प्रभावेन भो देव!	8	6
1016	मुनिर्जगाद भो पुत्री	3	15	1044	यत्प्रमाणं भवेन्नित्यं	3	77
1017	मुनिश्रावकभेदेन स	8	23	1045	यत्र काव्यपुराणेषु	3	40
1018	मुनीन्द्रं प्राह भो स्वामिन्!	8	103	1046	यत्र क्षेत्रेषु निष्पन्न	2	9
1019	मुनीन्द्रः श्रावकः शुद्धः	3	105	1047	यत्र देशे वनादीनां	1	33
1020	मुनेः सरसि पातेन पातितः	8	218	1048	यत्र नार्यः सुरूपाढ्याः	1	55
1021	मुनेर्वचनमाकर्ण्य	8	115	1049	यत्र नार्यो जिनेन्द्राणां	2	42
1022	मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ	8	78	1050	यत्र पुण्यप्रसादेन	2	10
1023	मूर्तिमान् पुद्गलस्तेषु	1	147	1051	यत्र भव्यजनाः सौख्यं	2	30
1024	मूर्द्धमालामिवोत्तुङ्गां	7	80	1052	यत्र भव्या जिनेन्द्राणां	1	40
1025	मृते पितरि पुत्रो यः	7	4	1053	यत्र भव्या वसन्त्युच्चै	1	34
1026	मेरुर्वा चलति स्थानात्	5	79	1054	यत्र भव्याः सदा सर्वे	1	57
1027	मेरो शृङ्गमिवोत्तुङ्गं	4	101	1055	यत्र भोगोपभोगादि	2	19
1028	मोचयित्वा सुधीश्चापि	5	176	1056	यत्र मार्गेषु सत्तुङ्गा	1	37
1029	मोहनीयरिपुं जित्वा	9	101	1057	यत्र श्रीमज्जिनेद्राणां	2	35
1030	म्लानताकारणं ब्रूहि	4	5	1058	यत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां	1	47
1031	यः करोति कुलोद्योतं	7	5	1059	यत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां	2	20
1032	यः कौपीनधरो भव्यो	8	96	1060	यत्रवापीतडागादि	2	6

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1061	यथा चिन्तामणेः प्राप्ति	9	76	1089	ये भव्याः प्रतिपालयन्ति	3	37
1062	यथा देवस्तथा जैनीवाणी	3	112	1090	ये हरन्ति परद्रव्यं	3	70
1063	यथा पञ्चाङ्गमन्त्रेण	1	75	1091	येन श्रीसिद्धचक्रस्य	3	125
1064	यथा श्रीपालराजोऽयं	9	121	1092	येषां दर्शनमात्रेण	2	37
1065	यथागुप्तित्रयेणोच्चैः	1	77	1093	येषां दर्शनमात्रेण भव्यानां	1	52
1066	यदा यदा समायाति	3	134	1094	येषां स्मरणमात्रेण	9	73
1067	यदापणेषु सर्वत्र	2	31	1095	यो ददात्युत्तमं सौख्यं	9	78
1068	ययुः संवत्सरा मातः	6	92	1096	यो देशः पत्तनैर्ग्रामैः	2	4
1069	यशः सारं स सम्प्राप्य	4	84	1097	यो देशो राजते स्मोच्चैः	1	35
1070	यस्मै पिता ददातीह	2	88	1098	यो भुजाभ्यां समुत्तीर्य	5	49
1071	यस्य प्रभावतो राजन्	1	93	1099	यो विचारं विना कार्यं	2	130
1072	यस्य श्रवणमात्रेण	1	25	1100	यो विज्ञानी सुधीर्ज्ञाता	1	64
1073	यस्यप्रभावतो नूनं	1	26	1101	योग्यं गन्धकुटीं कृत्वा	9	104
1074	या पुरी सर्वदा सर्व	2	29	1102	योग्ययानं समारुढो	1	107
1075	या विशुद्धमहातुङ्ग	2	25	1103	रक्षा वध्वाश्च ते मातः	4	38
1076	या सती सर्वजन्तूनां	1	18	1104	रज्जुं छित्वा तदा शीघ्रं	5	24
1077	यानपात्राणि सम्भृत्वा	5	2	1105	रत्नकर्पूरसद्दीपैर्धूपैः	6	69
1078	यावत्तावच्च स श्रेष्ठी	5	180	1106	रत्नकर्पूरसद्दीपैर्मनोध्वान्त	8	155
1079	यावत्तावच्चरः कोऽपि	6	22	1107	रत्नचूर्णचतुष्कैश्च	7	77
1080	यावत्तावत्स पापिष्ठो	5	73	1108	रत्नत्रयं भवेद्धर्मो धर्मो	9	79
1081	यावदास्ते सुखं तावद्	1	91	1109	रत्नत्रयं समासाद्य	9	53
1082	यावन्न प्राप्यते भोक्तुं	5	5	1110	रत्नस्वर्णमयीश्चापि	8	63
1083	युक्तं दुष्टजनस्यैवं	2	94	1111	रत्नस्वर्णमयीश्चारू प्रतिमा	8	171
1084	युक्तं पुण्यविपाकेन	6	150	1112	रत्नादि तोरणोपेतां	7	66
1085	युद्धार्थं स भयत्रस्तो	6	88	1113	रत्नादिकं समादाय	5	107
1086	ये च श्रीमज्जिनेन्द्राणां	8	67	1114	राक्षसा व्यन्तराः क्रूराः	5	36
1087	ये पठन्ति महाभव्याः	9	127	1115	राजभिर्बहुभिः सार्धं	7	67
1088	ये परस्त्रीरताः पापा	3	73	1116	राजसूयादिकं कर्म	2	52

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1117	राजा जगाद भो भार्ये!	8	131	1145	वर्तमाने स्वराज्यार्थं	7	39
1118	राजाज्ञया यदा सोऽपि	5	123	1146	वर्षे वर्षे त्रिवारञ्च	8	168
1119	राज्यं करोमि मत्पत्नी	4	129	1147	वर्षैर्द्वादशभिः सत्यं	4	24
1120	रात्रिभुक्तिपरित्याग	2	63	1148	वस्त्राणि ब्रह्मचारिभ्यश्च	8	178
1121	रात्रिभुक्तिपरित्यागात्	3	83	1149	वस्त्राभरणसंयुक्ताः	2	12
1122	रात्रौ जागरणं कृत्वा	3	171	1150	वस्त्राभरणसन्दोहैः	5	164
1123	रात्रौ भूरिपतङ्गकीटपतना	3	84	1151	वस्त्राभरणसन्दोहैः	5	54
1124	रूपलावण्यसन्दोहैर्देवीवृन्दैः	8	202	1152	वस्त्राभरणसन्दोहैः	7	73
1125	रूपलावण्यसौभाग्य	1	81	1153	वाचनापृच्छनाप्रायैः	3	44
1126	रूपादिसारसम्पत्या	2	34	1154	वाणिज्यार्थं समायातः	5	146
1127	लक्षणैर्दशभिर्युक्तो	6	39	1155	वारुणी वर्जनीया हि	3	53
1128	लसत्काञ्चनसत्कुम्भै	7	72	1156	विख्यातो धनपालाख्यो	5	44
1129	लसत्किरीटमाणिक्यै	1	66	1157	विज्ञप्तो देवदेवेन्द्रैर्वन्दितो	1	92
1130	लात्वा व्रतं जगत्पूज्यं	8	190	1158	विज्ञप्तो वनपालेन	8	3
1131	लात्वा सप्ताङ्ग राज्यं	7	55	1159	विद्याधरैर्नरैः सार्धं	9	105
1132	लेखयन्ति धनं दत्वा	9	128	1160	विद्युत्पातेन वल्लीव	5	65
1133	लोकोऽयं पुरुषाकारो	9	66	1161	विधाय कलहं नीत्वा	3	201
1134	वक्ता समर्थो निर्लोभो	6	120	1162	विधाय प्राञ्जलिं भक्तया	1	158
1135	वक्ष्येऽहं तत्समाकर्ण्य	5	143	1163	विधाय सुचिरं राज्यं	9	33
1136	वज्रसेनः प्रिया तस्य	6	15	1164	विनिर्जित्य महाशूरसत्तमो	9	97
1137	वटादिपञ्चकं पापं	3	55	1165	विरक्तः स्त्रीसुखे नित्यं	8	90
1138	वनादौ यत्र भान्तिस्म	2	15	1166	विलोक्य कन्यकां राजा	2	109
1139	वने महामुनिं वीक्ष्य	8	117	1167	विवाहविधिना तस्मै	2	79
1140	वनेऽरण्ये नगेषूच्चैर्यत्र	1	41	1168	विवाहविधिना प्रोच्चै	6	47
1141	वन्दितुं श्रीमहावीरं	1	99	1169	विवाहानन्तरं तत्र	2	123
1142	वन्दे श्रीवृषभं देवं देवदेवैः	1	2	1170	विशिष्टाष्टमहाद्रव्यै	3	170
1143	वरं हालाहलं भुक्तं वरं	8	220	1171	विशिष्टाष्टमहाद्रव्यैः	1	121
1144	वरदत्तमुनीन्द्रेण कृपारुन्द्रेण	8	217	1172	विश्वासो नैव कर्त्तव्य	4	45

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1173	विषं निर्विषतामेति	3	127	1201	शुभाशुभं भवेन्नित्यं	2	131
1174	विस्तारयन्ति ये कीर्ति	4	10	1202	शुभे दिने शुभे लग्ने सम	4	61
1175	वीज्यमानः सितैश्चारु	8	2	1203	शुभे लग्ने दिने रम्ये	4	139
1176	वीरादिदमनो नाम	3	198	1204	शुभेलग्ने दिने रम्ये	5	55
1177	वीरादिदमनो नाम	4	151	1205	शौचाय कर्मणे नेष्टं	3	57
1178	वीरादिदमनो राजा	7	26	1206	श्रद्धा भक्तिश्चतुष्टिश्च	8	45
1179	वीरादिदमनो राजा	7	50	1207	श्रावकश्राविकाणाञ्च	8	179
1180	वृथा विराधना हेयाः	8	37	1208	श्रावकाः श्राविका	2	39
1181	वृद्धो रोगी च यो दुर्गः	6	42	1209	श्रावकाचारमत्युच्चैः	2	68
1182	वेदस्मृतिपुराणानि	2	48	1210	श्रावकाणां भवेद्धर्मः	8	25
1183	व्रतं श्रीसिद्धचक्रस्य	8	167	1211	श्रीकान्तः तन्निशम्याह	8	144
1184	व्रतभङ्गाद्राज्यभङ्गो	8	216	1212	श्रीकान्ताख्यः सती तस्य	8	111
1185	व्रतेनैतेन भो राजन्!	8	185	1213	श्रीकान्ताख्यभवे पूर्वं	8	215
1186	शतानि षोडशप्रोक्ताः	6	27	1214	श्रीकान्तोऽपि स भूपालो	8	127
1187	शत्रवो मित्रतां यान्ति	3	126	1215	श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोज	8	83
1188	शत्रुर्मित्रायते येन	5	31	1216	श्रीपालं तं विलोक्योच्चै	6	104
1189	शरणं नास्ति संसारे	9	42	1217	श्रीपालः पतितः सिन्धौ	5	64
1190	शरीरं सुन्दरं गाढं रूपं	5	76	1218	श्रीपालः श्वसुरं प्राह	6	145
1191	शाश्वतीःपञ्चरत्नानां	8	199	1219	श्रीपालः सङ्कटे चाऽपि	5	14
1192	शिविकां सा समारुह्य	5	138	1220	श्रीपालः सम्मुखं गत्वा	3	188
1193	शीघ्रं ते धनमादाय	4	80	1221	श्रीपालश्रुतिमाकर्ण्य	6	101
1194	शीलं रक्षन्ति लोकेऽत्र	5	81	1222	श्रीपालस्तं प्रणम्योच्चैः	3	219
1195	शीलं सौख्यकरं प्रमोदजन	3	76	1223	श्रीपालस्तु तदा तस्मिन्	4	98
1196	शीलच्छेदेन लोकेऽत्र	5	83	1224	श्रीपालस्तु तदा प्राह	6	113
1197	शीललीला प्रवाहेण	5	159	1225	श्रीपालस्तु तदाकर्ण्य	5	23
1198	शुक्लाष्टमी समारभ्य	3	135	1226	श्रीपालस्तु महीनाथो	6	78
1199	शुद्धरत्नत्रयोपेतो यो	8	54	1227	श्रीपालोऽपि तदा प्राप्त	2	135
1200	शुभाशुभं भवत्युच्चैर्भो	2	120	1228	श्रीपालोऽपि तदा प्राह	5	156

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1229	श्रीपालोऽपि दयालुत्वात्	4	86	1257	षट्त्रिंशदङ्गुलं वस्त्रं	3	86
1230	श्रीपालोऽपि सुधीस्तत्र	5	25	1258	षडावश्यकमावासं दृढं	9	92
1231	श्रीपालोऽपि स्वपुण्येन	4	145	1259	स खलो धवलो मूढो	5	85
1232	श्रीमज्जिनागमे प्रोक्तं	5	12	1260	स तत्रस्थसुधाकुण्डे	8	198
1233	श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां	5	160	1261	स तस्थौ पालयन्प्रीत्या	1	87
1234	श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां	6	153	1262	स धर्मविजयी राजा श्री	9	32
1235	श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तं	9	29	1263	स निर्गत्य सभायाश्च	5	111
1236	श्रीमती जिनसद्धर्मसंसक्ता	8	125	1264	स बभौ भूपतिर्नित्यं	1	70
1237	श्रीमती सा निदानेन	8	211	1265	स राजाऽपि तदा तस्मै	6	11
1238	श्रीमत्या स्ववने रन्तुं	8	112	1266	स श्रीकान्तो महाराजो	8	189
1239	श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रस्य	6	70	1267	स श्रीपालः प्रभुः श्रुत्वा	8	102
1240	श्रीसर्वज्ञमुखाम्भोज	1	17	1268	स श्रीपालस्तदा धीमांस्तद्	5	183
1241	श्रीसुपार्श्वं जिनाधीशं	1	5	1269	स श्रीपालस्तदा मार्गे	4	49
1242	शृणु त्वं भो महाभाग!	4	128	1270	स श्रीपालो लसत्भालो	3	176
1243	श्रुत्वा जनैश्च तां वार्तां	4	81	1271	स श्रेष्ठी धवलाख्यस्तु	4	53
1244	श्रुत्वा तद्धनपालोऽपि	5	53	1272	स समुद्रं समुत्तीर्य	5	28
1245	श्रुत्वा मदनमञ्जूषा	5	139	1273	संख्यां विना न संतोषो	3	78
1246	श्रुत्वा वीरजिनेन्द्रस्य	1	155	1274	संज्ञानं लोचनप्रायः	3	39
1247	श्रूयतां भो प्रभो! लोके	8	141	1275	संतोषेण भवेन्नित्यं	3	79
1248	श्रूयतां भो! कृपां कृत्वा	3	14	1276	संभ्रमेण समुत्थाय	6	111
1249	श्रूयते परचक्रञ्च समायातं	6	97	1277	संवरोऽपि भवेन्नित्यं	9	62
1250	श्रूयते श्वसुरस्यैव	4	6	1278	संविभागो भवेत् त्याग	3	104
1251	शृणोतिस्म सती तत्र	2	70	1279	संसारसागरान्नूनं	8	22
1252	शृण्वन्तु सुधियो भव्या	1	31	1280	संसारे संसरन्नित्यम	1	135
1253	श्रेयो जिन जगच्छ्रेयः	1	7	1281	संसारे सन्ति भो राजन्!	6	131
1254	श्रेष्ठिनं सद्धनैः पूर्णं	5	75	1282	संसारो दुःसहो ज्ञेय	9	46
1255	श्रेष्ठिनो धवलस्यास्य	5	136	1283	संसिद्धो मे समाराध्यो	9	116
1256	श्रोतुमिच्छामि भो नाथ!	1	160	1284	संस्तुतिञ्च तथा जाप्यं	8	68

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1285	संस्तुवे सन्मतिं देवं	1	14	1313	सत्येन शीततां याति	3	64
1286	संस्थितो मुनिना दत्त	8	15	1314	सत्सम्पत्प्रमदाप्रमोदजननी	3	61
1287	सज्जनं वीक्ष्य दुष्टात्मा	5	110	1315	सदया दानिनो वोच्चै	8	7
1288	सज्जनैः संयुतो धीमान्	6	73	1316	सदा जैनेश्वरीं वाणीं	2	40
1289	सञ्जगाद महादेवि! कथं	8	128	1317	सदृष्टिर्बन्धनिर्मुक्तो	3	34
1290	सञ्जगाद सुतं पुत्र!	4	40	1318	सदैव सज्जनैर्भुक्त्वा	2	33
1291	सञ्जातो भो महाभव्याः	5	168	1319	सद्गतिः स्वयमायाति	5	38
1292	सती मदनमञ्जूषा	5	144	1320	सद्ज्ञानशून्यैर्बहुभिस्तपोभि	3	43
1293	सती मदनमञ्जूषा	5	186	1321	सन्ति दुष्टा नराः केचित्	2	128
1294	सतीं मदनमञ्जूषां	4	140	1322	सन्तो यत्र जनाः सर्वे	1	56
1295	सत्यं जयो भवेन्नित्यं	7	48	1323	सन्धिविग्रहयानाख्यमासनं	1	73
1296	सत्यं ते पुण्यकर्मात्र	3	216	1324	सन्मार्गं वा मुनेर्मेधा	6	102
1297	सत्यं त्वं क्षत्रियोत्पन्नो	4	68	1325	सप्तमी ब्रह्मचर्याख्या	8	74
1298	सत्यं त्वं नरके घोरे	5	90	1326	सप्तरज्जुरधोभागे मध्ये	9	67
1299	सत्यं दिवाकरेणामा	9	85	1327	सप्तश्वभ्रेषु पापेन पच्यन्ते	9	71
1300	सत्यं दुरात्मनश्चित्ते	5	6	1328	समता सर्वजीवेषु	3	99
1301	सत्यं पञ्चनमस्कार	5	30	1329	समभ्यर्च्य जिनाधीशान्	3	2
1302	सत्यं पुण्यवतां पुंसां	4	144	1330	समवादिसृतिं वीक्ष्य	1	110
1303	सत्यं शर्मशतप्रदं शुभकरं	3	66	1331	समस्याः पूरयिष्यामि	6	34
1304	सत्यं श्रीमज्जिनेन्द्राणां	9	12	1332	समस्यापूरणात्तत्र	6	45
1305	सत्यं स एव पूतात्मा	5	52	1333	समाकर्ण्य तदा सर्वं	3	203
1306	सत्यं सतां भवेदुच्चैरापदा	7	64	1334	समागत्य प्रभुस्तत्र	6	86
1307	सत्यं सतां मतिः पूर्वं	5	102	1335	समानीय पुरं रम्यं	5	166
1308	सत्यं सतां महापुण्य	5	59	1336	समायाते महापात्रे सन्तुष्ट	8	48
1309	सत्यं सत्सङ्गतिर्लोके	3	181	1337	समाराध्यो मया सत्यं	8	133
1310	सत्यं हितं मितं पथ्यं	3	62	1338	समुत्तीर्य समुद्रं त्वं पारे	8	219
1311	सत्येन परमानन्दो	3	65	1339	समुत्पन्नमहानादैर्गर्जिता	1	118
1312	सत्येन विमलाकीर्तिः	3	63	1340	समुद्रे पतिते तस्मिन्	5	62

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1341	सम्पूर्णाहारपर्यन्तं भक्तिं	8	47	1369	सर्वान् शीलगुणानुच्चैः	9	94
1342	सम्प्राप्ते मरणे घोरे	9	43	1370	सर्वाश्चतुरशीतिस्ताः	6	25
1343	सम्मान्य सरसैर्वाक्यैः	3	222	1371	सर्वासां सारकन्यानां	6	32
1344	सम्यक्त्वघातिकाः	9	96	1372	सर्वे ते भूभुजा सार्धं	8	230
1345	सम्यक्त्वज्ञानचारित्र	6	38	1373	सर्वेषां कुष्ठिनां तेषां	2	98
1346	सम्यक्त्वज्ञानवृत्तानि	3	25	1374	सर्वेषां मण्डनं शीलं	5	80
1347	सम्यक्त्वपूर्वकं पुत्रि!	3	20	1375	सहस्रशिखराबद्ध	4	100
1348	सम्यक्त्वशालिनी साह	6	116	1376	सहायः साधनोपायो	1	76
1349	सम्यक्त्वादि गुणौघ	3	152	1377	सा जगाद सती प्रोच्चै	3	194
1350	सम्यक्त्वेन युतो जीव	3	33	1378	सा जगौ रे दुराचार	5	89
1351	सम्यग्दृष्टिर्जिनेन्द्राणां	8	56	1379	सा प्रोवाच सती तत्र	3	17
1352	सम्वत्सार्द्धसहस्रे	9	135	1380	सा मे सर्वं विजानाति	5	137
1353	सर्वं क्षमस्व मे देवि	5	101	1381	सा श्रीमती चरीदेवी	8	213
1354	सर्वथा नो भवेच्छक्तिस्तदा	8	183	1382	सा श्वश्रूश्च मुदा प्राह	3	190
1355	सर्वदा च सतां त्याज्यं	8	33	1383	साऽपि श्रीमज्जिनाधीश	5	105
1356	सर्वदा भव्यसन्दोह	1	51	1384	साधयित्वा बहून् देशान्	6	122
1357	सर्वदा सर्वयत्नेन	4	42	1385	साधिकाष्टसहस्रोरु	6	152
1358	सर्वपापापहं सारं	6	64	1386	साधिके च व्यये जाते	8	52
1359	सर्वविज्ञानसम्पन्नः	6	9	1387	साधूनां सङ्गतिः सत्यं	2	74
1360	सर्वविज्ञानसम्पन्नाः	6	30	1388	सापि भर्तुः समाकर्ण्य	4	152
1361	सर्वव्रतक्रियासारदान	8	28	1389	सामायिकं त्रिसन्ध्यं	8	86
1362	सर्वशास्त्रमुखप्रायः	2	65	1390	सामायिकं व्रतं पर्व	3	98
1363	सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः	8	5	1391	सामायिकं व्रतं पूतं पालन	8	38
1364	सर्वसज्जनसंसेव्यो	7	68	1392	सारदेवेन्द्रचक्र्यादि	3	130
1365	सर्वसन्देहविध्वंसि दिव्यध्व	1	115	1393	सारपञ्चनमस्काराः	7	34
1366	सर्वसिद्धिं च तं पूतं	9	124	1394	सारभोगशतान्युच्चैः	9	28
1367	सर्वाणि यानपात्राणि	5	184	1395	साररत्नत्रयं कृत्वा	9	87
1368	सर्वान् देशान् समासाद्य	7	15	1396	साररत्नत्रयोपेतो	8	24

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1397	सारश्रृङ्गारभार्याभिः	7	8	1425	सोऽपि संसारिको द्वेधा	1	136
1398	सारसद्रत्नमाणिक्य	9	26	1426	सोऽस्माकं पतिरित्युच्चै	6	7
1399	सार्धं तत्र समागत्य	5	153	1427	सोपवासादिकं सर्वं	9	5
1400	सार्धं मदनसुन्दर्या	9	15	1428	सोमाख्या पञ्चमी पुत्री	6	29
1401	सावद्यारम्भकेषूच्चैः	8	93	1429	सौभाग्यसुन्दरीनाम	2	45
1402	सिंहनादं विधायोच्चै	4	82	1430	सौराष्ट्रदेशभूमीश	6	74
1403	सिंहव्याघ्रादयः क्रूराः	5	33	1431	सौवर्णं पञ्चधारत्न	4	99
1404	सिंहव्याघ्रादिकाश्लोषे	8	221	1432	सौवर्णं राजतं ताम्रं	3	140
1405	सिंहस्याऽपि सुधीरस्ति	6	132	1433	स्तुतिं श्रीसिद्धचक्रस्य	8	159
1406	सिंहस्याग्रे मृगस्येव	9	44	1434	स्तुत्वा नत्वा पुनर्बाला	2	61
1407	सिद्धचक्रप्रसादेन	6	112	1435	स्तुत्वा नत्वा महास्तोत्रै	6	72
1408	सिद्धचक्रमहायन्त्रं	3	139	1436	स्तेयं पापप्रदं ज्ञेयं हेयं	3	67
1409	सिद्धचक्रस्य पूजायाः	3	180	1437	स्तेयं पापशतप्रदं	3	71
1410	सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि	5	32	1438	स्तोकश्चापि कृतो धर्मः	8	182
1411	सिद्धे कार्ये च युष्मभ्यं	5	118	1439	स्थातव्यं च भवद्भिर्भो	2	115
1412	सिद्धेभ्योऽपि पुनर्नत्वा	4	62	1440	स्थापयामास तत्तीरे	8	119
1413	सुधीः सञ्चिन्तयामास	9	35	1441	स्थापयित्वा जिनेन्द्राणां	8	151
1414	सुधीः सम्मानयामास	6	56	1442	स्थापितं पतितं चापि	3	68
1415	सुधीर्जग्राह भव्यात्मा	8	227	1443	स्मरन्–पञ्चनमस्कारान्	4	50
1416	सुन्दरं ध्वजमालाद्यै	8	136	1444	स्मर्तव्या जननी नित्यं	4	28
1417	सुरादि सुन्दरी प्राह	2	77	1445	स्रग्वी स्वभावनिर्दोषो	8	194
1418	सुरादि सुन्दरीपुत्री	2	47	1446	स्वगृहे विनयेनोच्चै	5	179
1419	सेवन्ते त्वत्समाः सर्वे	7	24	1447	स्वचित्ते चिन्तयामास	4	2
1420	सेवाकृष्यादिवाणिज्यं	8	91	1448	स्वच्छतोयभृताखाता	2	27
1421	सेवागतत्रिधाचन्द्रा	1	114	1449	स्वच्छतोयाविभान्ति	1	39
1422	सोऽपि गत्वा द्रुतं वीरदमन	7	14	1450	स्वभर्तुर्दर्शनं कृत्वा	5	92
1423	सोऽपि पापी दुराचारी	5	21	1451	स्वयं स्नात्वा पवित्रात्मा	3	168
1424	सोऽपि श्रीवरदत्ताख्यो	8	140	1452	स्वयं स्वगृहमागत्य	2	106

क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.	क्रम	श्लोक	अधिकार	श्लोक क्र.
1453	स्वयं स्वपुण्यपाकेन	5	185	1464	स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश	1	72
1454	स्वयम्भूतिलकं नाम	2	59	1465	हलाजीवस्य वेषेण	6	126
1455	स्वर्गागतैर्जनैर्यत्र	1	42	1466	हस्तावलम्बनं देव!	3	13
1456	स्वर्णकुम्भध्वजव्रातै	2	16	1467	हस्त्यश्वरथपादाति	1	67
1457	स्वर्णपात्रे पुनः कृत्वा	8	158	1468	हा नाथ! क्व गतोसि	5	66
1458	स्वर्णसिंहासने तुङ्गे	7	71	1469	हा मया मुनिं सन्तापः	5	70
1459	स्वर्णादि विहिते पात्रे	3	138	1470	हाऽहं स्वामिन्! क्व	5	68
1460	स्वशक्त्या चेति जानाति	9	55	1471	हालाहलादिकं दुःखं	8	222
1461	स्वामिंस्तावत्तमस्तोमो	1	126	1472	हिंसादिपञ्चपापानां	3	47
1462	स्वामिन् धर्मो भवेत्कीदृक्	8	18	1473	हिरण्यगर्भनामादि	6	26
1463	स्वामी श्री वरदत्ताख्यो	8	145				

4. पाण्डुलिपि छायाचित्र

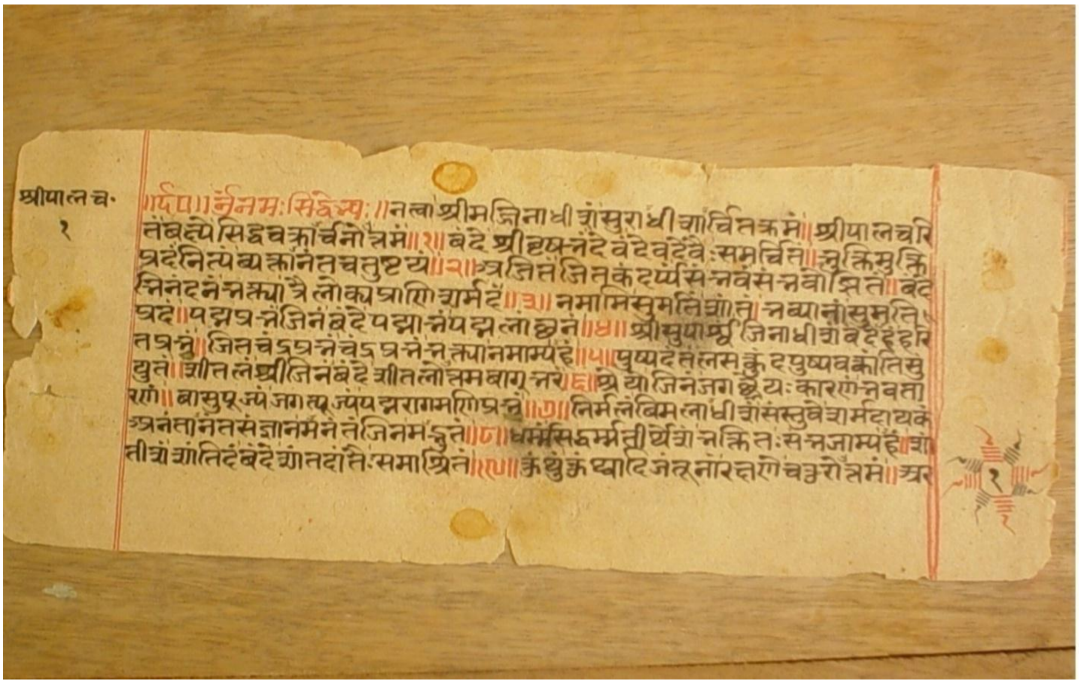

क प्रति प्रथम पृष्ठ

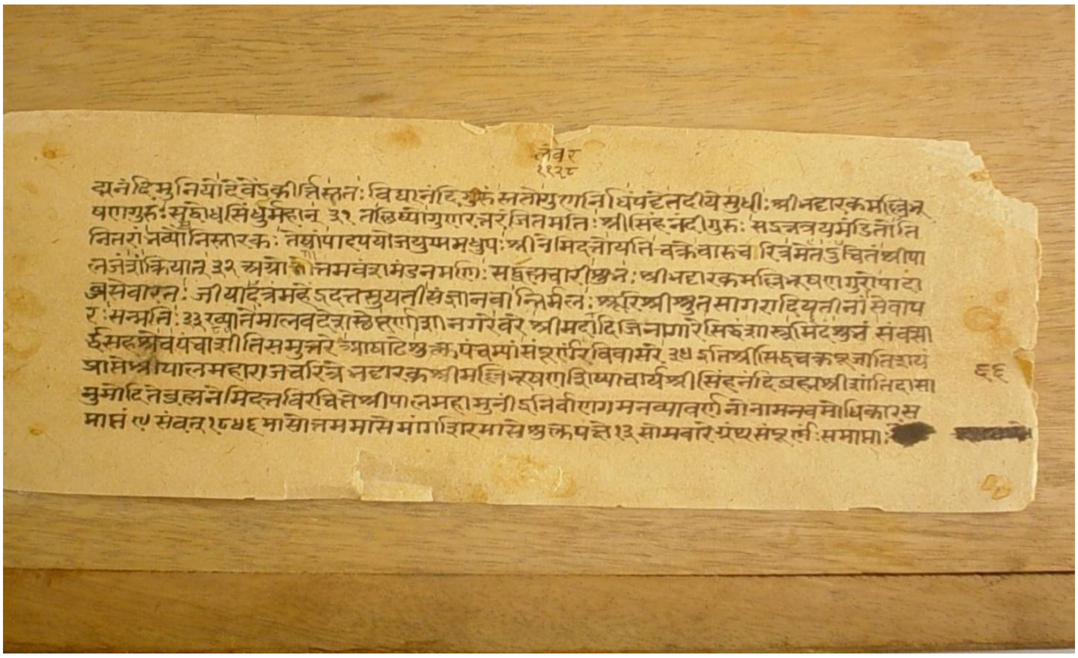

क प्रति अन्तिम पृष्ठ

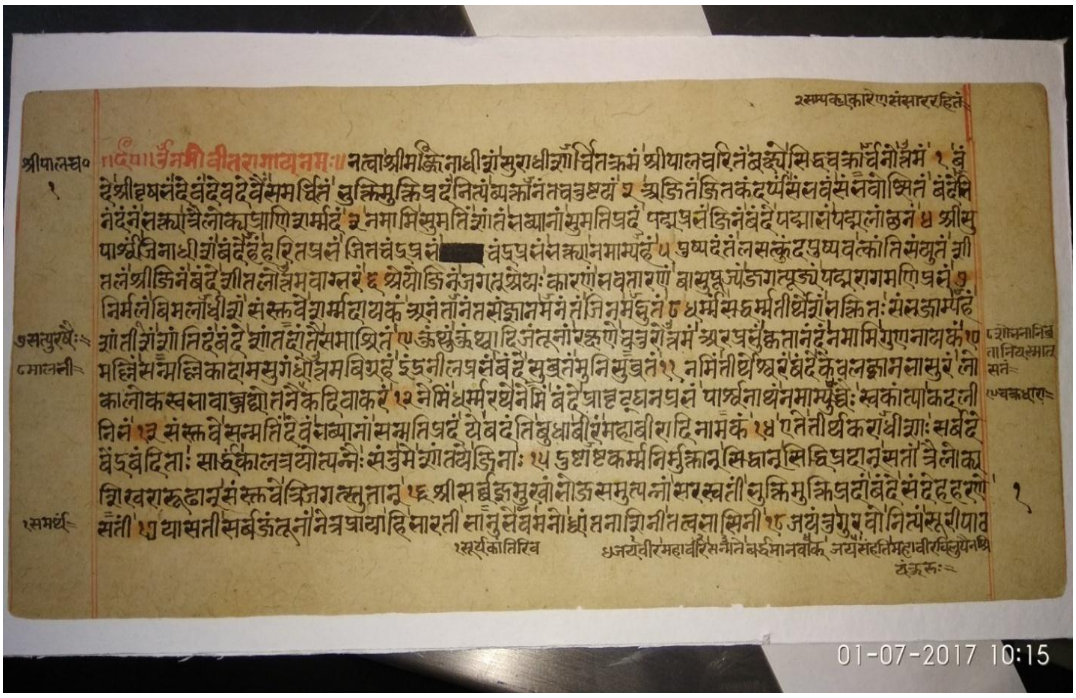

ख प्रति प्रथम पृष्ठ

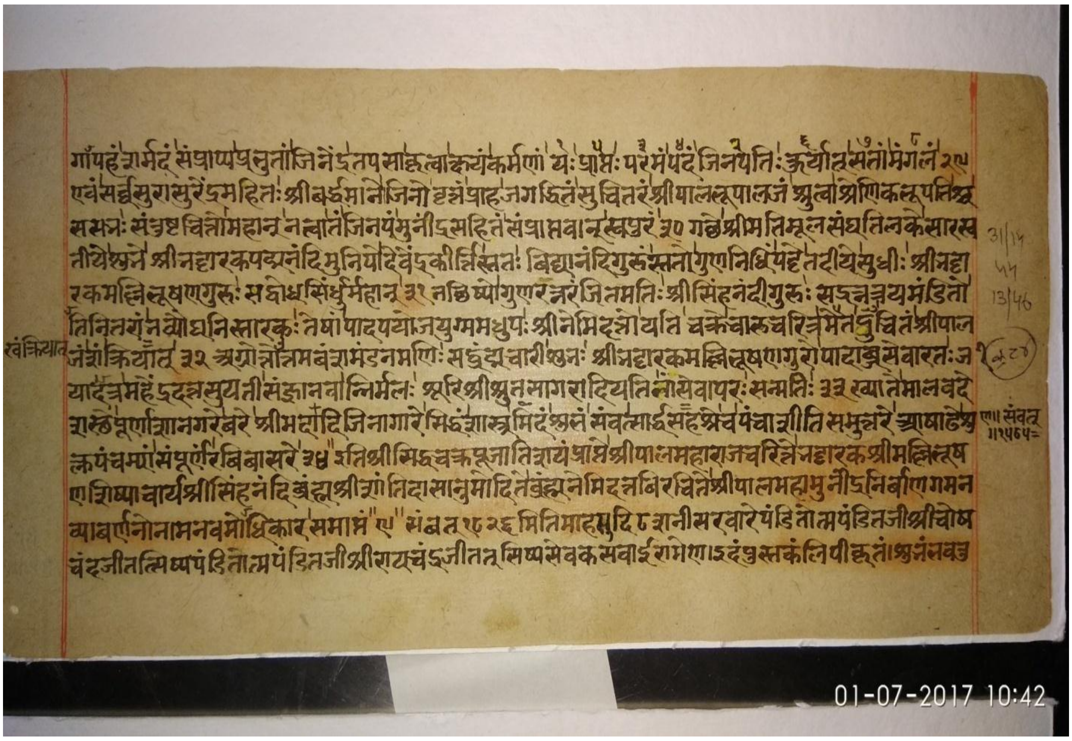

ख प्रति अन्तिम पृष्ठ

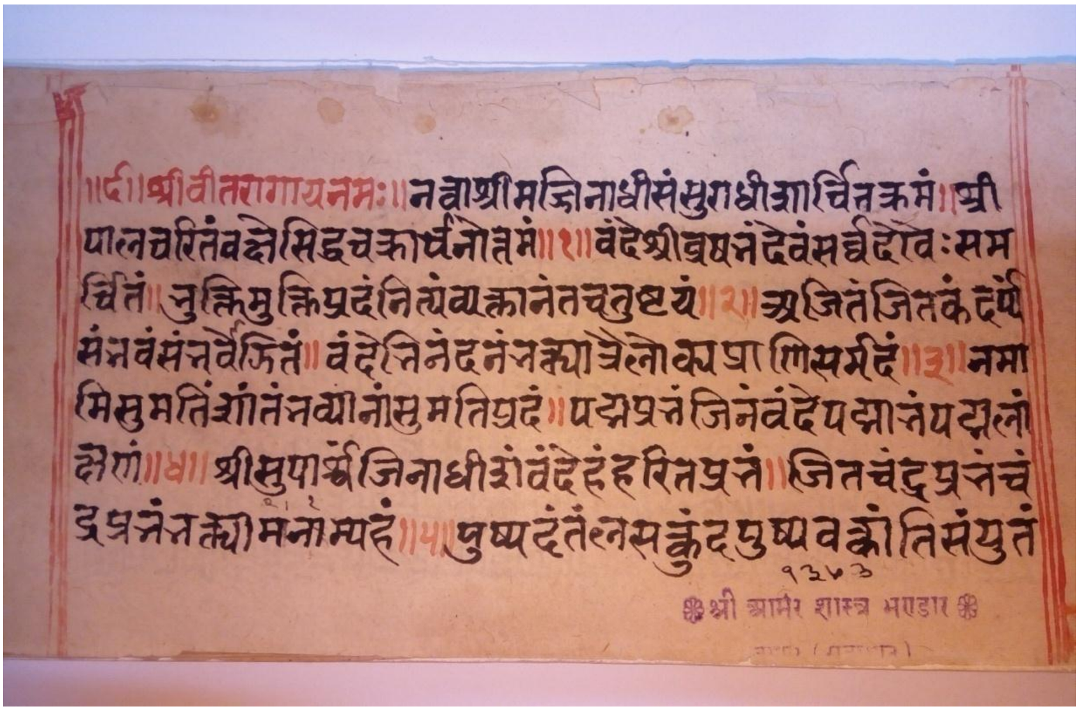

ग प्रति प्रथम पृष्ठ

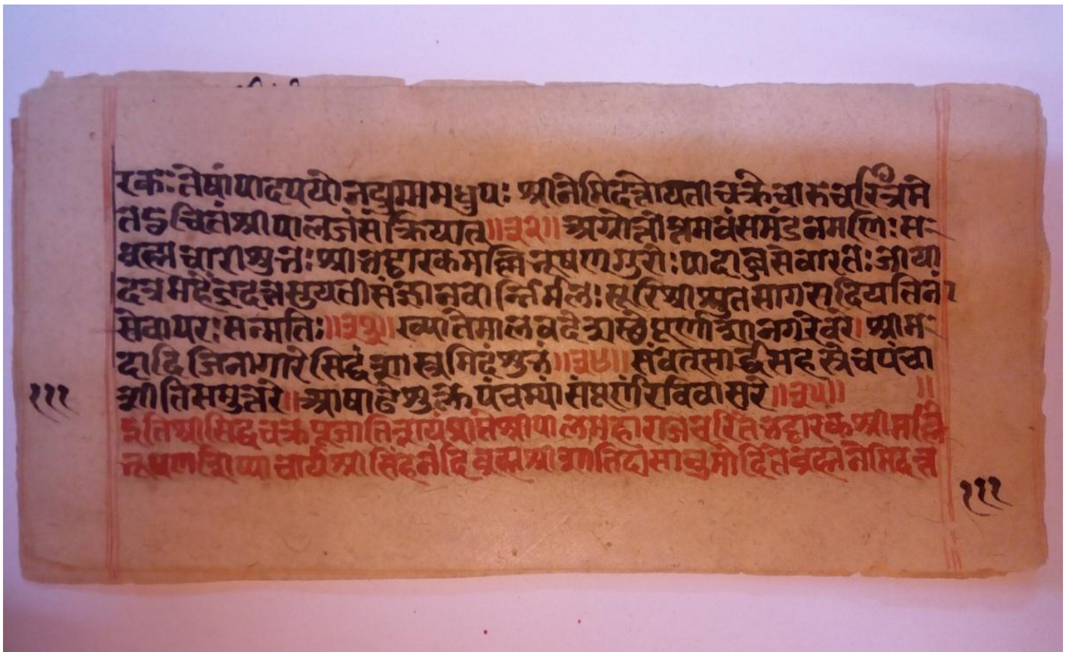

ग प्रति अन्तिम पृष्ठ (ग्रन्थकार पुष्पिका)

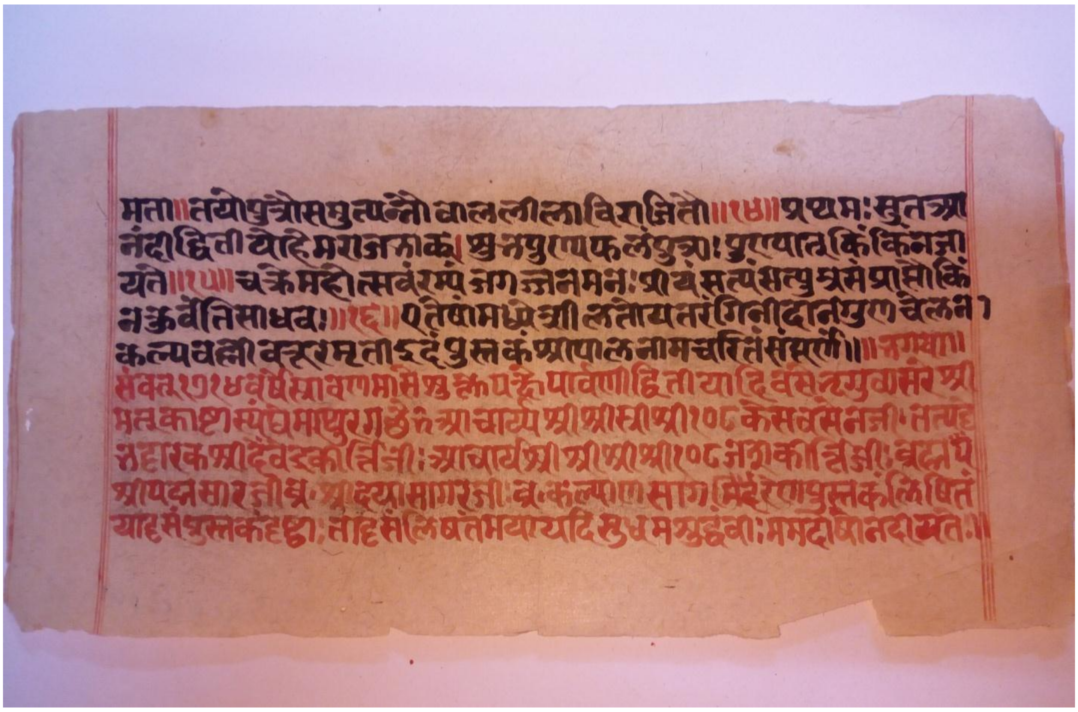

ग प्रति अन्तिम पृष्ठ (प्रतिलिपिकार पुष्पिका)